

अध्यापक

(टीचर)

सिल्विया एश्टन-वॉरनर

हिंदी अनुवाद: पूर्वा कुशवाहा याज्ञिक

यह पुस्तक न्यूजीलैंड के माओरी बच्चों की शिक्षा को समर्पित एक अध्यापिका के जीवनानुभवों का निचोड़ और बालकेंद्रित शिक्षण पद्धति का सर्जनात्मक दस्तावेज़ है। इसे ही लेखिका ने 'सह शिक्षण' कहा है। इस शिक्षण विधि में बच्चों को केंद्र में रखकर उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर शिक्षा पद्धति का तानाबाना तैयार किया गया है। बालकेंद्रित शिक्षण पद्धति की वकालत करनेवाली यह पुस्तक स्कूल की व्यवस्था या उसकी प्रणाली की आलोचना नहीं करती है, बल्कि इनको चुनौती के रूप में स्वीकार कर, इसी प्रणाली और व्यवस्था के बीच खड़े होकर सीखने वालों का चरित्र, व्यवहार और काम का तरीका सब कुछ बदल देने के संकल्प का आदर्श प्रस्तुत करती है।

बच्चों को केंद्र में रखकर शिक्षा देना बहुत कठिन काम है। अगर अध्यापक में कल्पना, संवेदनशीलता और आनंद पैदा करने की क्षमता नहीं है तो वह अपनी कक्षा को जीवंत नहीं बना सकता और आनंदरहित शिक्षण बच्चों के लिए दंड है और अध्यापक की असफलता का द्योतक भी।

प्रस्तुत पुस्तक में सीखने-सीखाने के सारे अनुभव, कार्य, नवाचार और पयोग सर्जनात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इसको पढ़ते समय पाठक ऐसा महसूस करेगा कि यह शिक्षा की पुस्तक न होकर बच्चों और जनजातियों के बीच आनंद की अनेक घटनाओं की कहानी है।

बच्चों के लिए सीखने का अर्थ खेलना है, स्वप्न देखना है और उस स्वप्न के अर्थ खोजना है। इस पुस्तक में लेखिका ने ऐसे अनेक स्वप्नों के शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं। इसमें जिन बातों को रेखांकित किया गया है, वे हैं: बच्चों का संगीत से लगाव, अपने परिचित शब्दों से लगाव तथा अपनी कहानी और अपने वातावरण से लगाव।

शिक्षा में दिलचस्पी रखने वाले हर व्यक्ति को यह पुस्तक नई दृष्टि प्रदान करेगी।

अध्यापक

(टीचर)

सिल्विया एश्टन-वॉरनर

हिंदी अनुवाद: पूर्वा कुशवाहा याज्ञिक

प्रस्तावना

बच्चों की शिक्षा के बारे में बीसवीं सदी में लिखी गई पुस्तकों में सिल्विया एश्टन-वॉरनर की इस पुस्तक की हैसियत कुछ अलग ही है। हिंदी में इसका प्रकाशन निश्चय ही एक घटना है यद्यपि यह कहना भी सही होगा कि इस घटना के पहचाने जाने लायक परिस्थितियां हिंदी क्षेत्र क्या, समूचे देश में नहीं हैं। हमारे समाज में शिक्षा की चट्टानी जड़ता इतनी गहरे तक गई है कि रचनात्मक विचारों की कद्र और उनके संवर्धन की संभावना अक्सर चार लोगों का स्वप्न साबित होती है। फिर भी यह याद रखना जरूरी है कि बीज-घटनाएं छोटे-छोटे वैचारिक समुदायों में ही प्रस्फुटित होती हैं। रचनात्मक विचार का जन्म और विकास एक रहस्य से कम नहीं होता-सिल्विया एश्टन-वॉरनर के इस कथन की सचाई का प्रमाण पुस्तक के कई पाठक अंतिम पन्ने तक पहुंचने के काफी पहले महसूस करेंगे।

कहने को यह किताब एक शैक्षणिक प्रयोग की कहानी है और इसी रूप में पश्चिम के देशों में प्रचारित रही है। पाठक स्वयं देखेंगे कि यह किताब कहानी के रूप में नहीं लिखी गई है और रिपोर्ट या दस्तावेज तो एकदम ही नहीं है। सिर्फ एक विचार के इर्दगिर्द लेखिका ने अपनी कक्षा के पाठक्रम को दुनिया से अलग बुनावट किस तरह दी, इस प्रश्न का उत्तर कहीं छोटी-छोटी टिप्पणियों तो कहीं डायरी और कहीं संवादों की शक्ति में यह पुस्तक देती है। सिल्विया जैसी संवेदनशील शिक्षक की शैली-काम करने की भी और लिखने की भी-शायद कई पाठकों को चौंकाएगी, विशेषकर उन पाठकों को जो किसी न किसी रूप में शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हैं।

हमारे समाज में बच्चों का शिक्षक बौद्धिक रूप से परतंत्र होकर काम करता है। पाठ्यक्रम और पाठ्य-सामग्री के निर्धारण में, स्कूल के लिए सामग्री की खरीद में, यहां तक कि स्कूल का दैनिक कार्यक्रम तय करने में हमारे देश का अध्यापक पराए निर्णयों का मोहताज रहता है। ये निर्णय प्रत्यक्षतः अध्यापक के सिर पर नियुक्त अधिकारियों द्वारा लिये जाते हैं, किंतु वास्तव में ये निर्णय एक प्राचीन लिपि की तरह शिक्षण व्यवस्था की जड़ और इसलिए अपरिवर्तनीय रीति-नीति में दर्ज रहते हैं। बहुत मामूली संशोधनों के साथ ये निर्णय साल-दर-साल, दशक-दर-दशक एक क्रूर नियतिचक्र की भांति करोड़ों बच्चों और उनको दीक्षा के लिए तैनात शिक्षकों के जीवन को चलाते चले जाते हैं।

इस पृष्ठभूमि में छोटे बच्चों को पढ़ना सिखाने जैसा बुनियादी शैक्षणिक काम भी एक रसहीन कर्मकांड बन जाता है। सिल्विया एश्टन-वॉरनर के शिक्षणशास्त्र का केंद्र दरअसल पढ़ना सिखाना ही था। न्यूजीलैंड की माओरी जनजाति के बच्चों को पढ़ना

सिखाने का रोमांचक अनुभव पढ़ते-पढ़ते हम अचानक इस सत्य से टकराते हैं कि पढ़ना-लिखना यानी साक्षरता कितनी सहज और आत्मीय हो सकती है। वर्णमाला सिखाने से शुरू होने वाली लंबी पारंपरिक विधियों में समाई बच्चे के व्यक्तित्व की अवहेलना हमारे सामने मूर्तिमान हो उठती है और प्रशिक्षण महाविद्यालयों का वितंडावाद आने आप उजागर हो रहता है। यह दुःखद सचाई भी इस पुस्तक को पढ़कर हमारे लिए स्पष्ट हो जाती है कि अधूरी और विकृत शिक्षा मनुष्य और उसकी वर्तमान सभ्यता के लिए कितना बड़ा अभिशाप है। सिल्विया एश्टन-वॉरनर के अनुसार विध्वंस और रचना मनुष्य की ऊर्जा की अभिव्यक्ति के दो रास्ते हैं। जो ऊर्जा रचना का रास्ता नहीं प्राप्त कर पाती, यह विध्वंस के बीच यह चुनाव बचपन के वर्षों में अनेक निर्णायक दौर से गुजरता है। पढ़ना सिखाने की एक बेहद सहज और ऊर्जावान विधि सिल्विया के रचनामुखी पाठ्यक्रम की धूरी थी।

अंगरेजी मूल में यह किताब कोई तैंतीस साल पहले छपे थी। लेखिका के अपने देश न्यूजीलैंड में भले इस पुस्तक का स्वागत न हुआ हो, किंतु अमरीका और इंग्लैंड में उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला। पढ़ना सिखाने की रूढ़ विधियों को उखाड़ने में मदद देने के अलावा सिल्विया एश्टन-वारनर की छोटे बच्चों से संवाद स्थापित करने की क्षमता हजारों शिक्षकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी। बच्चे का विश्वास जीते बिना कोई शिक्षा नहीं दी जा सकती, यह सिद्धांत और बच्चे का विश्वास जीतने का तरीका इस किताब के दो सबसे बड़े आकर्षण हैं। इन आकर्षणों की टोह आज हमें अपने संदर्भ में भले एक स्वप्नयात्रा लगे, कुछ हाथों में वह अवश्य कल का यथार्थ बनेगी।

दिल्ली विश्वविद्यालय
7 जनवरी, 1996

कृष्ण कुमार

भूमिका

यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है—इतिहास में आज की तारीख में कोई पुस्तक जितनी हो सकती है उतनी ही महत्वपूर्ण। सुश्री एश्टन-वारनर का विश्वास है उन्होंने अध्यापन की ऐसी पद्धति खोज निकाली है जो मानव को स्वाभाविक और स्वतःस्फूर्त ढंग से शांतिप्रेमी बनाएगी। आक्रामकता वह 'सहजवृत्ति' है जिसके बिना युद्धों का आरंभ और संचालन संभव नहीं है, और यह नाम हम शिशु की दाय में मिली वृत्तियों—अर्थात् आत्मरक्षा और यौन-संतुष्टि की वृत्तियों के कुंठित होने से उत्पन्न मानसिक या भावात्मक प्रतिक्रियाओं को देते हैं। दुनियाभर में सामान्यतः जिस तरह शिक्षा दी जा रही है, वह इन प्रमुख हितों की उपेक्षा करती है। शिशु में उनकी उपस्थिति स्वीकार करके बल्कि उस का स्वागत करके और उन्हें एक 'सहज' अध्यापन-पद्धति का आधार बनाकर इन हितों की अभिव्यक्ति संभव बनाई जा सकती है और साथ ही उन्हें रचनात्मक आनंद के सांचों में ढाला जा सकता है। मानव-जीवन में विध्वंसकता और रचनाशीलता परस्पर विरोधी शक्तियां होती हैं। रचना का अर्थ है निर्माण करना, और सहयोगपूर्वक निर्माण करने का मतलब है एक शांतिसंपन्न समुदाय की बुनियादें रखना।

हमारी सामाजिक कुरीतियों के निदान-रूप में ऐसे विचार कोई नए नहीं हैं। ये फ्रायड और युंग के मनोवैज्ञानिक परिणामों में निहित हैं, और उनके शिष्यों ने इसके इतने चिकित्सकीय साक्ष्य जमा किए हैं कि वे हमारी सभ्यता पर अकाट्य अभियोगपत्र जैसे बन गए हैं। लेकिन इस सार्वभौम मनस्ताप से अपना इलाज कैसे करें ? प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका के पास इसका उत्तर है : इसका आरंभ शिशुओं की कक्षाओं से कीजिए। (मैं तो कहूंगा कि और भी पहले शुरू कीजिए, लेकिन जब तक बच्चे का मन नम्य रहे, तब तक कोई देरी नहीं कही जा सकती।)

रचनात्मक शिक्षा के बहुत से दृष्टिकोण संभव हैं लेकिन वे सभी आमतौर पर इसलिए असफल रहते हैं कि बड़े जतन के साथ, बड़े आत्मचेतन ढंग से लागू किए जाते हैं। (और यह 'आत्म' अध्यापक का होता है।) सुश्री एश्टन-वारनर ने यह समझ लिया है कि अध्यापन एक आंतरिक प्रक्रिया है। वे अध्यापक से अपेक्षित दृष्टिकोण को परिभाषित करती हैं और अध्यापन की एक प्रभावी पद्धति का व्यावहारिक प्रदर्शन करती हैं। अध्यापक में 'नकारात्मक क्षमता' होनी चाहिए या उसे विकसित करनी चाहिए; यह वही गुण है जिसे कीट्स ने शायर के लिए जरूरी माना था। उसे शिशुगृह में सिर्फ इसलिए मौजूद रहना चाहिए कि वह बच्चे की अपनी क्षमताओं को जगा सके; व्यवहार में इसका मतलब यह हुआ कि उसमें उनकी बातें सुनने, ध्यान देने और तब तक इंतजार करने का धीरज और बुद्धिमत्ता होनी चाहिए जब तक कि हर बच्चे की अपनी 'सोचने की तर्ज' सामने न आ जाए। हो सकता है यह 'तर्ज' टेढ़ी हो—शुरू के बरसों में बच्चा

उतने ही स्वाभाविक ढंग से एक अपराध-बोध विकसित कर लेता है जिस तरह अपने माता-पिता के शारीरिक लक्षण प्राप्त करता है। लेकिन ये अवचेतन शक्तियां उसकी रुचियों की तीव्रता का निर्धारण करती हैं, और अधिगम अगर ऐसे किसी गतिशील आधार पर हो तो पहले से बेहद आसान हो जाता है। वास्तव में तब यह लेखिका के शब्दों में 'भौतिकी के किसी नियम' जितने ही अपरिहार्य रूप में व्यक्तित्व के साकार हो रहे सांचे का अंग बन जाता है।

इस तरह अध्यापक का कर्तव्य सिर्फ उस रचनात्मक ढर्रे को सामने रखना है जिस पर फिर ये शक्तियां स्वाभाविक रूप से चलेंगी। निश्चित ही यह कोई नया विचार नहीं है, बल्कि अफलातून जितना पुराना है। लेकिन मानवजाति के पास कभी ऐसी इच्छा या बुद्धि नहीं रही कि इस अंतःदृष्टि को शिक्षा-प्रक्रिया पर लागू कर सके। फिर भी इसे लागू किया जा सकता है और प्रस्तुत पुस्तक दिखाती है कि किस तरह इसे एक-एक चरण करके एक विशेष समुदाय के अंदर लागू किया गया।

सुश्री एश्टन-वारनर जिन मावरी बच्चों को पढ़ाती रही हैं उनमें से किसी से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त तो नहीं हुआ, मगर वे पुस्तक के दूसरे हिस्से में जो कहानियां कहती हैं उनमें वे हमारे सामने जीते-जागते आ खड़े होते हैं। लेखिका के पास वर्णन की एक अद्भुत शक्ति है जिसे वे पहले ही अपने कामयाब उपन्यास *स्प्रिंस्टर* में दिखा चुकी हैं। यहां भी वह शक्ति दिखाई देती है। लेकिन -

लेकिन उनकी रपटें तथ्यात्मक हैं, और यह नई पुस्तक एक शिक्षाशास्त्रीय प्रबंध नहीं बल्कि समाजशास्त्रीय दस्तावेज हैं। फिर यह अत्यंत मार्मिक है और सर्वत्र अध्यापन कर्म पर इसका लाभकारी प्रभाव पड़ेगा। मैंने 'शिक्षा' की बजाय 'अध्यापन' की बात कही है क्योंकि शिक्षा का सही अर्थ तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। (ठीक उसी की पैरवी सुश्री एश्टन-वारनर करती हैं, अर्थात् किसी और के मन से कुछ निकालकर सामने लाने की।) लेखिका के शब्दों में विद्यालय की परिकल्पना 'एक ऐसे शिशुगृह जैसी होनी चाहिए जहां प्राणियों को बदलना अभी भी संभव है', और जहां रचनात्मक कार्यकलाप इस परिवर्तन के साधन हों। अगर हम चाहते हैं कि मानवता का एक-किसी भी प्रकार का- भविष्य हो तो यह नियम सिर्फ इसी बात की है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह पुस्तक चाहे जितनी गैर-पेशेवर और गैर-अकादमिक लगे, मूलभूत महत्व की पुस्तक है। बिना किसी अतिशयोक्ति के हम कह सकते हैं कि लेखिका ने मानवता को आत्मविनाश से बचाने का एक रास्ता ढूंढ निकाला है। उनकी पद्धति इस कदर सीधे-सादी, इस कदर दिखावे से मुक्त है, सिर्फ इसी कारण हमें उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मानवता के भविष्य संबंधी महान परिवर्तन सिर्फ शिशुओं के मन में उत्पन्न किए जा सकते हैं।

हरबर्ट रीड

प्राक्कथन

पहले विश्वयुद्ध में अधिकांश राष्ट्र और खास तौर पर सभ्य कहलाने वाले राष्ट्र तो निश्चित रूप से संलग्न थे, इसके बाद एक दौर निराशा और आत्मपरीक्षा का आया। जो लोग 1914 तक यह समझते थे कि उनके अपने समाज में सब कुछ ठीक चल रहा था और यह कि सब कुछ बेहतर से और बेहतर होने की प्रक्रिया में था, खुद से यह पूछे बिना नहीं रह सके कि आखिर कहां क्या गलती हुई थी जो इतना भयानक विध्वंस सामने आया। फिर पैदा हुई पछतावे और आशावाद की मनःस्थिति, 'सुरमाओं के उस योग्य भूमि' को रचने के संकल्प की मनःस्थिति जिसके सपने युद्ध के दिनों में देखे गए थे।

स्वभाविक रूप से बहुत से विद्वान इसकी पड़ताल में लग गए कि परंपरागत शिक्षा में क्या कमी हो सकती है। दा विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में जब सरकारों ने अपनी-अपनी प्रबुद्धता के अनुसार शिक्षा में कमोबेश योगदान देना शुरू किया तो नई शिक्षा के आंदोलन का प्रसार शुरू हुआ। इस दिशा में पहले से जो कार्यरत थे उनके कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा, और अधिकाधिक संख्या में अग्रदूतों ने उनका अनुसरण शुरू किया जो जरूरी नहीं कि अनुकरण रहा हो। तीसरे दशक के बाद के वर्षों में उनमें से एक अर्थात् न्यूजीलैंड की सिल्विया एश्टन वारनर एक उल्लेखनीय और अकेली प्रतिभा के रूप में उभरकर सामने आती हैं। अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान और सम्मेलनों के बावजूद शिक्षाशास्त्र के ये अग्रदूत एक-दूसरे के प्रयासों के बारे में बहुत कम जानते थे। फिर भी मेरा अनुमान यह है कि न्यूजीलैंड सरकार की मावरी स्कूलों की योजना के पीछे 'न्यू एजुकेशन फेलोशिप' की प्रेरणा थी जो अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र वाला आंदोलन था; यह वही आंदोलन था जिसमें सिल्विया और उनके पति कीथ हैंडरसन ने 1937 में अपना रचनात्मक शैक्षिक कार्य शुरू किया था। उनका खयाल है कि इसमें शिशुदलों के साथ उन्होंने 24 वर्ष तक काम किया था। लेकिन इसका वर्णन करनेवाली उनकी पुस्तक 'टीचर' को 1963 तक कोई प्रकाशक नहीं मिला, और मिला भी तो अपने देश में नहीं, बल्कि अमरीका में। अंतर्राष्ट्रीय संपर्क और समझ विकसित करना प्रगतिशील शिक्षाशास्त्रियों के लिए जिला मुश्किल रहा हो, उनको मान्यता पाने में सबसे अधिक कठिनाई अगर हुई तो अपनी संस्कृतियों में हुई।

सिल्विया एश्टन-वारनर का बचपन गरीबी में बीता। अपंग पिता बेसहाय व्हीलचेयर या बिस्तर में होते थे और माता नौ बच्चों को जनम देने की प्रक्रिया में एक के बाद एक करके अनगिनत स्कूलों में पढ़ाती रहीं। इस तरह छोटे बड़े बेटे-बेटियां भी उनके

पीछे-पीछे घिसटते रहे—एकजुट परिवार की तरह, बिना किसी जलन के, परेशानियों और घरेलू कामों के बोझ को मिलाकर उठाते हुए। लगता है कि बजाने के लिए एक प्याना हमेशा तैयार रहता था; यह वह कौशल था जिसे मां भी सराहती थीं और सिल्विया भी प्राथमिकता देती थीं। संगीत, चित्रकला और लेखन सिल्विया के प्रिय कार्यकलाप बन गए, शिक्षक बनने के विचार से चिढ़ होती थी। फिर भी लगता है कि यही वह अकेली जीवनवृत्ति थी जो सामाजिक व्यवस्था और उनकी शिक्षा के कारण उनके भाग्य में लिखी थी।

19 साल की उम्र में 1928 में, अध्यापक-प्रशिक्षण की समाप्ति पर भी, जबकि ऊर्जा और आकांक्षाओं से भरी हुई थीं, उन्हें आशा थी कि संभवतः विवाह उन्हें इस अप्रिय दशा से निकाल ले। उन्होंने पुरुषों से मेलजोल बढ़ाए, मगर आखिर को यही पता चला कि विवाह उनमें से सबका इरादा नहीं होता, और यह कि एक अध्यापिका से विवाह के विचार से ही पुरुष किसी न किसी प्रकार भाग खड़े होते हैं। आखिरकार उन्होंने इसी पेशे से नाता जोड़ लिया।

इस काल में उनकी छवि एक गतिशील व्यक्तित्व की थी जो खुद में काफी-कुछ खोया हुआ हो, जिसमें विश्वयुद्धों के बीच के दिनों वाले अनेक प्रकार के असंतोष हिलोरें ले रहे हों। जैसे—जो लोग खुद को कुछ बनाने के लिए प्रयत्नशील थे उनके लिए अवसर के अभाव; अपनी परंपरागत स्थिति के प्रति महिलाओं का बढ़ता विद्रोह, बल्कि सत्ता और परंपरा पर आधारित हरेक चीज से मोहभंग। घटनाओं के कुछ वर्ष बाद लिखे गए वृत्तांतों से पहली नजर में यह पता कर सकना आसान नहीं है कि वे कौन से प्रभाव थे जिन्होंने आखिरकार सिल्विया में अध्यापन के रचनात्मक होने की भावना जगाई, जिसमें उन्होंने अपनी बेपनाह शक्ति लगा दी। इसमें शक नहीं कि उनके बच्चे इसका पहला कारण थे। लेकिन मुआमला न्यूजीलैंड का हो या अमरीका का, जिन बच्चों की अपनी आंतरिक क्षमताएं शैशवकाल के मशीनी खिलौनों से लेकर फिल्मों और रेडियो से 'डब्बाबंद जीवन की खरीद' जैसे बाहरी तामझाम पर निर्भरता के कारण क्षीण हो चुकी हों, उनके बारे में सिल्विया के वर्णन तीस के बाद के दशक की बजाए साठोत्तरी दशक के लिए अधिक प्रासंगिक लगते हैं। मुझे इसमें शक नहीं कि मुझे या शिक्षा में शिशुओं की मुक्ति के प्रयास करनेवाले दूसरे लोगों के लिए यह प्रवृत्ति जिस तरह स्पष्ट थी, उसी तरह सिल्विया के लिए भी आरंभ से ही स्पष्ट थी।

व तोल्स्तोय के विद्यालय का उल्लेख करती हैं, और अपनी रूसों की 'खोज' का जो हम सभी शैक्षिक प्रवर्तकों के प्रथम प्रेरणा-स्रोत हैं। लेकिन विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में लगभग समस्त प्रगतिशील चिंतन के पीछे फ्रायड का तथा डा. एरिक फ्रॉम और बरट्रेंड रसेल का जिज्ञासुता करती हैं; उन्होंने ए. एस. नील के विद्यालय के बारे में भी थोड़ा

सा सुन रखा था; हरवर्ट रीड ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना लिखी है, मगर उनकी पुस्तक *एजुकेशन थ्रू आर्ट* का पहला प्रकाशन 1943 में ही हो सका।

मैं 1927 से 1943 तक, और इनमें से पहले पांच वर्ष तो बरट्रेंड रसेल के साथ, शिशुओं की ऐसी तर्ज पर शिक्षा देने में लगी रही जिसे 'सहज' (आर्गेनिक) कहा जा सकता है; शैशवकालीन शिक्षा के प्रति अपने दृष्टिकोण को सिल्विया एश्टन-वारनर ने यही नाम दिया है। हमारे दृष्टिकोण की समानता न तो नक्काली है और न आकस्मिक; इसकी एक बुनियादी और दिलचस्प अहमियत है। हालात के कारण सिल्विया एश्टन-वारनर समान उद्देश्य और आदर्श रखने वाले हम इंग्लैंडवासियों से कुछ बेहतर-हाल रहीं। अध्यापन के लिए मावरी स्कूलों में अपने पति की और अपनी नियुक्ति के कारण वे सार्वजनिक सेवा में रहीं जबकि इंग्लैंड में प्रगतिशील शिक्षाशास्त्रियों को अपना बोझ खुद उठाना पड़ता था। फिर मावरी विद्यालयों की दूरदराज और अकसर खतरनाक स्थिति के बावजूद एक रूढ़िवादी गोरे प्रशासन के अंतर्गत मावरी जाति के लोगों को पढ़ाना संस्कृतियों के फौरी टकराव का कारण था और एक अन्वेषण प्रेमी मन को चुनौतियाँ दे सकता था।

गैर-गोरे जनगणों या कबीलों को अपने में आत्मसात करने के प्रयास करनेवाले प्रभुत्वशाली गोरों के समाज, उन पर अपने धर्म और रिवाज लादते थे, उन्हें अपना खुद का इतिहास पढ़ाते थे और दंभ के साथ यह विश्वास पाले रहते थे कि 'कानून से वंचित इन हीन प्राणियों' के अतीत में उनके मुकाबले का ऐसा कुछ भी नहीं जो वे दे सकें। उन्हें पता था कि उनसे आशा की जाती थी कि वे अपनी कक्षा में प्रवेश करने वाले कबीलाई कच्चे माल को गढ़कर न्यूजीलैंड के व्यवस्था-प्रेमी नागरिक पैदा करेंगी। लेकिन अपनी खुद की सभ्यता के प्रचलित जीवन मूल्यों में उन्हें पूरा-पूरा यकीन भी नहीं था। अपने कार्यभार के बारे में वे लिखती हैं :

गोरे और काले सचमुच कभी घुले-मिलेंगे, मुझे उम्मीद नहीं है। मैं तो सिर्फ आपसी समझ की दुआएं मांग रही हूँ। ऐसा नहीं कि किसी आध्यात्मिक, बौद्धिक या शारीरिक स्तर पर वे घुलमिल नहीं सकते। मैंने खुद ऐसा किया है। उनमें अंतर है तो हितों को लेकर, पिछली सदियों के अलगाव के कारण हर नस्ल के अलग विकसित हितों को लेकर। मावरी आम तौर पर भोजन और आध्यात्मिक बातों पर जोर देनेवाले कबीलाई जमावड़ों से प्रेम करते हैं। दूसरी ओर बुद्धि का दिखावा करने वाले हम लोग हमेशा के लिए अलगाव का शिकार होते जा रहे हैं। लेकिन यह सब सिर्फ आम तौर पर। खास तौर पर, मेरे श्रेष्ठतम संपर्क एक ऐसे व्यक्ति से रहे हैं जो काला था। (पृ. 115)

और शिशुमाला में नए मावरी बच्चों के आने का मतलब क्या होता था, इसके बारे में वे कहती हैं :

पांच साल के मावरी बच्चों का झुंड आया है, और बच्चों की देखभाल करनेवाली आयाएं ही जानती हैं कि मैं आजकल शाम को थकी-थकी क्यों रहती हूँ। उनके बूट एक-एक टन के होते हैं, वे ज्यादा से ज्यादा दस मिनट तक किसी बात पर ध्यान देते हैं, उनकी आवाज जंगली भैंसों जैसी हैं, और उन्हें पढ़ाना एक रंगीला अनुभव होता है। अतीत का मावरी योद्धा कैसा होता था, आज के युग में जबकि उन पर यूरोपीय अनुशासन लाद दिया गया है, यह जानने के एकमात्र वास्तविक सूत्र ये बच्चे ही हैं। निश्चित ही वे सभी इस श्रेणी में नहीं आते। (पृ. 116)

वे अपना काम कैसे निपटाती हैं, इसे समझने के लिए जरूरी है कि उन्हें विस्तार से पढ़ा जाए। जैसा कि कोई भी प्रगतिशील अध्यापक जानता है, सभी शिशु बछड़ों जैसे होते हैं—जीवनशक्ति और ऊर्जा से भरे हुए; उनकी पांच ज्ञानेन्द्रियां जो कुछ उनके सामने लाती हैं उनके बारे में जिज्ञासा से परिपूर्ण; उन चीजों को छूने, जानने, उनके बारे में दूसरों को बताने के इच्छुक। सिल्विया लिखती हैं कि 'पांच साल की उम्र के स्तर पर मन पूरी तरह प्रतिमानबद्ध नहीं होता, और यह विचार ही उत्तेजक है।' इन्हीं उच्छृंखल योद्धाओं के हाथों में वे मिट्टी, श्यामपट और खड़िया थमाती हैं ताकि वे अपनी कल्पनाओं को सामने ला सकें :

शिशुओं के कक्ष में युद्ध और शांति लाजमी तौर पर इंतजार में होते हैं, इंतजार और आपस में होड़ करते हैं। यह सही है कि खिलौनों की दुकानें बंदूकों से भरी हुई हैं; बच्चों के हाथों में टैंक और लड़ाकू जहाज हैं, जबकि श्यामपट, मिट्टी के तख्ते और टिकटियां युद्ध-क्रीड़ा से भरपूर हैं। लेकिन मुझे कोई चिंता नहीं। मेरा सरोकार रचनात्मक वृत्ति को विकसित करना है क्योंकि इस शिशुगृह में जहां प्राणियों को अभी बदला जा सकता है, जरूरी है कि रचनाशीलता अंततः विध्वंस की क्षमता को अगर नष्ट न कर सके तो उसे शिकस्त जरूर दे।

उनके बच्चे चीजें बनाते हैं, सिलाई-बुनाई करते हैं, धुलाई और इस्तरी करते हैं, गाते और नाचते हैं, बास्केटबॉल खेलते हैं, चित्र और मॉडल बनाते और रंगते हैं, प्यानो बजाते हैं, ओर हर गतिविधि के लिए समय-सीमा का धुंधला सा एहसास भर होता है।

लगता है गोया वे एकाएक हरकत में आ जाते हों।

लेकिन क्या उन्होंने निर्धारित मानदंडों तक पढ़ना-लिखना सीखा ? इस सिलसिले में उनकी 'सहज' पद्धति सर्वथा मौलिक है। कोई फुर्तीला बच्चा आखिर पढ़ना क्यों सीखें ? माता-पिता और अध्यापक आम तौर पर आसान सी किताबों में या तस्वीरों वाले कार्डों पर लिखे अक्षर या आसान से शब्द सामने रखते हैं। बच्चे के मन में जो कुछ है उससे इन सबका क्या ताल्लुक है, इसे सचमुच नहीं जानते। सिल्विया का कायदा यह था कि वे हर रोज हर बच्चे या बच्ची से पूछती थीं कि उसे कार्ड पर कौन सा शब्द लिखा जाना पसंद है। ये चयन बच्चे की 'अंतर्दृष्टि' की उपज होते थे, वह तो जो कुछ सोचता था या सोचती थी उससे जुड़े होते थे, घर पर मम्मी या डैडी के साथ जो कुछ सुखद या दुखद घटित होता था उससे संबंधित होते थे। बच्चे इस तरह चुने गए शब्दों को हमेशा मनन करते और आसानी से याद रखते थे। इससे भी बड़ी बात यह कि इनमें उनकी भावनाओं का सुराग मिलता था—सबसे प्रबल भावनाएं भय और यौन की थीं; वे बार-बार 'भूत' और 'चुंबन' शब्दों का प्रयोग करते थे; और 'पिए हुए' से अक्सर माता-पिता के आचरण का संकेत मिलता था। शब्द-भंडार बढ़ने पर जल्दी ही वाक्य बनाए जाने लगे और लिखने का काम शुरू हुआ। बाहर से आरोपित पठन-क्रिया को वे 'असहज' समझती हैं; यह 'एकीकरण में बाधक है और हर चीज का निर्माण एक अखंड व्यक्तित्व पर ही होता है। हम अंतर से बाहर की सुंदर गति का सूत्र खो चुके हैं—किसी भी नस्ल के बच्चे के लिए एक साझा संपर्कसूत्र होता है और वह किसी भी दूसरे सूत्र की अपेक्षा अधिक स्थाई होता है : यह संपर्कसूत्र आंतरिक जगत से बाहर की ओर ले जाता है। और इसी को कहते हैं सहज अध्यापन—इसके अभाव में हमें यही एक ढर्रे पर दौड़ता मानस दिखाई देता है' जो उन्हें न्यूजीलैंड और अमरीका में आज बहुत ही व्यापक दिखाई देता है। मावरी पाठ्यपुस्तकों को आधि कारिक तौर पर स्वीकृत और प्रकाशित कराने की उनकी योजना सफल नहीं हुई। 'जेनेट और जान' पाठ्यपुस्तकों की अवास्तविकता आज भी दोनों नस्लों के बच्चों की पहलकदमी का दम घोंटती दिखाई दे रही है।

उनकी पुस्तक भावमय और अव्यवस्थित दिखाई देती है, ठीक उसी तरह जैसे उनकी कक्षा रही होगी। यहां तक कि उनकी चलताऊ टिप्पणियां भी घटनाओं के मर्म को छूने लगती हैं। मिसाल के लिए जब वे बच्चों द्वारा श्यामपटों और खड़ियों के प्रयोग पैरवी करती हैं जिनकी बनाई तस्वीरें और खींची हुई रेखाएं चलनेवाली नहीं हैं तो वहीं वे सावधानी से तैयार की गई शिक्षा-सामग्री के ढेर जमा करने की आलोचना भी करती हैं और सुझाव देती हैं कि इस ढेर को रद्द करके नए सिरे से काम शुरू किया जाए। जीना सीखना ज्ञान प्राप्त करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है।

किसी बच्चे के मन को युद्ध के लिए तैयार किया जाएगा या शांति के लिए, इसके बारे में सिल्विया एश्टन-वारनर जिस प्रकार की शिक्षा की पैरवी करती हैं उसके निर्णायक प्रभाव के बारे में सर हरबर्ट रीड ने अपनी भूमिका में उनसे पूरी सहमति व्यक्त की है। ऐसी ही आशा बर्ट्रेंड रसेल के मन में भी है कि सुखद कार्यकलापों और स्वतंत्रता के वातावरण में शिक्षा पानेवाले बच्चे ही 'इस भावनात्मक साधन के बल पर लड़ाई, उत्पीड़न, आर्थिक अन्याय, मुक्त संभाषण और मुक्त अन्वेषण की भयानकताओं और अंधविश्वासों पर आधारित नैतिक नियमों से युक्त हमारी समाजव्यवस्था का अंत कर सकेंगे।'

इन दो यशस्वी समर्थकों के ये शब्द भावना और बुद्धि, दोनों की उपज है। जैसा कि मैं समझती हूँ, सिल्विया एश्टन-वारनर और मैं ऐसी वस्तु से प्रेरित रही हैं जो अधिक आदिम है, जो अधिकांश प्रजातियों का मूलतत्त्व है—माता जिन शिशुओं को जन्म देती है उनके विकास में बाधक बननेवाली बुद्धि पर नहीं, उसके दुरुपयोग पर हमला है। जैविक बंधनों से मुक्त होने के संकल्प के कारण पुरुष यथासंभव अपने पाशविक मूल से अधिक से अधिक असंबद्ध क्षमताओं के सहारे जीने का प्रयास करते रहे हैं। (और जब स्त्रियों ने पुरुषों का अनुकरण करना तय किया या अनुकरण करने के लिए बाध्य की गई तो उन्होंने भी ऐसा ही किया है।) दुर्भाग्य से काया से यह पलायन एक ऐसे आंतरिक द्वंद्व को जन्म देता है जिसमें मनुष्य खुद को खुद से और अपनी ही प्रजाति से संघर्षरत पाता है; यह वह गलती है जो इस पृथ्वी पर रहनेवाले और सहजवृत्ति से अधिक संचालित होनेवाले दूसरे प्राणियों ने नहीं की है। इससे भी बड़ी बात यह है कि मनुष्य इस बात में भी दूसरे प्राणियों से भिन्न हो जाता है कि उसकी संतान की रचनात्मक देखभाल उसका प्रमुख सरोकार नहीं रह जाती।

हमारी पाशविक प्रकृति से उत्पन्न प्रेरणाओं को हमेशा ही बुराईयों की जड़ कहा गया है। इसके विपरीत हमारे कुछ बेहतरीन गुण इस प्रकृति से उपजे हैं, जैसे परमार्थवृत्ति, सामाजिक एकजुटता के रूप, विध्वंसक की बजाए रचनात्मक भावनाएं। आक्रमण का सामना करने के लिए जानवरों के अपने तरीके होते हैं। सिल्विया एश्टन-वारनर की तरह जो लोग जनता को यंत्रमानव की बजाए प्राणियों के रूप में शिक्षा देने में विश्वास रखते हैं, वे यह भी समझ लेंगे कि ऐसा कोई उद्देश्य और निर्णय, ऐसे दर्शन उपजने चाहिए जो हरेक को बसेरा और जीविका प्रदान करनेवाली धरती के समस्त दूसरे प्राणियों के सापेक्ष मानव-जीवन को अपना आधार बनाता है।

डोरा रसेल

कार्नवल, 1980

कितना खतरनाक काम है यह पढ़ना ओर पढ़ाना। ऊपर से यों विदेशी मुलम्मा चढ़ाते जाना। आखिर इस लीपा-पोती की जरूरत ही क्या है, जब भीतर पहले से ही काफी कुछ मौजूद है, बंद और अवरूद्ध ? काश, वह सब बाहर निकाल पाती। कच्चे माल की तरह उसका ही इस्तेमाल कर पाती। अगर मेरे स्पर्श में कोमलता होती तो जरूर वह सब अपनी ही ज्वालामुखी-ताकत से बाहर फूट आता। आज सुबह ही तो बिस्तर में लेटे-लेटे पढ़ा था कि मन की ताकत दुनिया की किसी भी दूसरी ताकत से बड़ी होती है। कितनी उत्तेजक और डरावनी बात है न यह। और अभी भी, जितना भी रिस-रिस कर बाहर आ पा रहा है, वह भी तो कम आश्चर्यजनक नहीं है। आंखों के पीछे छिपी उस निरापद दुनिया में, जहां कोई निरीक्षक की छाया झांक तक नहीं पाती, मैं शिशुशाला को, बराबर बढ़ते हुए एक ज्वालामुखी के रूप में ही देखती हूं। वहां चारों तरफ विस्फोटक रचनात्मकता का शोर सुनती हूं। हर विषय को रचनात्मक रोशनदान में खड़ा पाती हूं। कैसी अद्भुत बनावट है वहां-मनोदशा और गति की। रेशमी बादलों का सा, कैसा सुंदर खेल।

एकदम सहज बनावट है यह, बढ़ती-बदलती और जीवंत बनावट। सहज स्वाभाविक और स्वस्थ बनावट। कितनी अभावुक, कितनी निष्ठुर और दहशत की सीमा तक सुंदर।

स्पिंस्टर* (अविवाहिता)

* स्पिंस्टर (अविवाहिता) सिल्विया एश्टन-वारनर की एक पुस्तक का नाम।

सात सालों बाद : एक परिचय

ना, इन सात वर्षों के अंतराल के बावजूद “मैं शांत मन से वह सब याद नहीं कर रही।”

सोचा तो जरूर था कि अब अपने काम को मैं अत्यंत सौम्य तरीके से देख सकूंगी; और यह न भी कर पाऊं तो कम से कम अपने परिप्रेक्ष्य में उसे स्थिर और मजबूत तो पाऊंगी ही। लगा था, मुझे अपनी तमाम गलतियां दिखेंगी और मन में सब कुछ बदलने की इच्छा जगेगी। पर आश्चर्य, ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा है। न तो मैं अपने आपको सौम्य शांत पा रही हूं और न ही मेरे पास परिप्रेक्ष्य ही है। मुझे तो फिर से वही उन्माद जकड़े ले रहा है, मैं तो फिर उसी नाटक में खिंची जा रही हूं। एक ऐसे नाटक में जहां सभी पात्र जिंदा हैं, सचमुच के हैं, उसमें वयस्क भी हैं, और बच्चे भी।

पर इन अगले पन्नों में कुछ छूटा जरूर है : मैंने कहीं भी अनुशासन की बात की ही नहीं है। शिशुशाला में हुए काम के इस वर्णन को पढ़ने वाले शिक्षकों को लग सकता है कि जहां आवाजाही की इतनी छूट हो, जहां बच्चे सतत बोलते-बतियाते रहते हों, वहां निपट अव्यवस्था के सिवा होगा ही क्या। पर सच, अव्यवस्था की जो अपनी विशेषता होती है उसकी तो अनुमति तक हम पढ़ाने की प्रक्रिया में नहीं देते, असल में नियंत्रण का न होना, बंधनों की जकड़न का न होना ही तो अव्यवस्था है। सच-सच बताऊं तो मेरा भी पहला ध्येय नियंत्रण ही था। और नियंत्रण क्या है भला? उस समय एक निरीक्षक महोदय ने उसे परिभाषित करते हुए कहा था “नियंत्रण का अर्थ है, जब जरूरत हो तब दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर पाना।”

मुझे भी बच्चों का ध्यान अपनी ओर खींचने की जरूरत अकसर पड़ती थी। उसके लिए जो उपाय मैंने निकाला था वह भी शायद बहुत नया उपाय न था। सभी शिक्षक कोई न कोई सरल-सा उपाय खोज ही तो निकालते हैं; कोई घंटी का इस्तेमाल करता है; कोई फुटाफट्टी ही ठकठकाता है, पर अधिकांश शिक्षक अपनी आवाज का ही इस्तेमाल करते हैं। पर जिस कमरे में सीखने और जीने की आवाजों पर कोई बंधन न हो वहां तो बच्चों को अपनी आवाज सुनाने के लिए उसे बेहद ऊंची और तीखी बनानी पड़ेगी; ऐसे में वह एक कोमल शिक्षक की आवाज कहां रह पाएगी? यही कारण था कि मैंने पियानो के स्वरों का इस्तेमाल शुरू किया। झकझोरने वाली कोई धुन या तार सप्तक के तीखे स्वरों का नहीं, बल्कि एक प्रसिद्ध संगीत गुरु की रची आठ कोमल

स्वरों की छोटी-सी स्वर-लहरी का। बीथोवन* की रची पांचवी सिंफनी के प्रारंभिक आठ स्वर। जो उनके लिए पर्याप्त था, वह मेरे लिए पर्याप्त क्यों न होता? आखिर वे भी हजारों-हजार श्रोताओं का ध्यान अपनी सिंफनी की ओर ही खींच रहे थे न। और मैं, मुझे तो मेरे बच्चों का ध्यान एकाधा वाक्यों की ओर ही खींचना होता था।

मैंने बाकायदा उन बच्चों को सिखाया कि इन स्वरों को सुनते ही वे जो कुछ भी कर रहे हों उसे छोड़कर मेरी ओर देखें। इस प्रशिक्षण की शुरुआत तो महज एक जरूरत से हुई, पर बाद में ये ही स्वर मुझे बार-बार आनंद से भरते रहे। और शिशुशाला में बिताए उन सारे वर्षों में मैं इन स्वरों को बजाने पर एकाएक फ़ैलती उस चुप्पी से हर बार चौंकती रही। शोर कुछ इस प्रकार कमरे से बाहर निकल जाता था मानो कोई चेहरा रक्त निचुड़ जाने पर जर्द पड़ने लगा हो। और चुप्पी भर ही तो नहीं फ़ैलती थी। एक स्तब्धता थी जो हर ओर छा जाती थी। हर आंख मेरे चेहरे पर टिकी होती थी, हर हाथ मेरा कहा करने को तत्पर लगता था। एक ऐसा गहरा सन्नाटा छाता था हर ओर, जो सिर्फ शोरगुल से ही पदा हो सकता हो!

ताकि मैं बोल सकूँ और सब सुन सकें।

कोई छोटा सा निर्देश, कोई जरूरी सुझाव, निस्संदेह हरेक के कानों तक पहुंचाता था।

कैसे-कैसे मांजा था इस उपकरण को मैंने। कितना अनिवार्य था मेरा यह उपकरण।

क्योंकि जो कुछ कहा जा रहा हो उससे कहीं महत्वपूर्ण होता है अपनी बात कहने का तरीका। आप कितनी ही जरूरी बात क्यों न कहें, अगर आपकी बात कोई सुने नहीं, महसूस ही न करे, तो उसे कहने का फायदा ही क्या? किसी के कहे को सुनने के लिए, उसे महसूस करने के लिए, पूरा ध्यान केंद्रित करने की जरूरत होती है। और वही मिलता था मुझे उस महान संगीतज्ञ के स्वरों द्वारा-पूरा ध्यान। आप पूछ सकते हैं कि “आवाजाही और बातचीत के शोर से भरे किसी कमरे के दूसरे छोर पर बैठा कोई बच्चा उन आठ कोमल स्वरों को भला कैसे सुनता होगा?” इस सवाल का जवाब तो कोई भी शिक्षक दे सकता है। ये स्वर सुन तो वे बच्चे ही पाते थे जो पियानो के बिल्कुल पास खड़े हों, और तब उनका स्पर्श दूसरों को आगाह करता था। पर कुछ ही क्षणों में तेजी से फ़ैलती वह खामोशी ही बोलने लगती थी। और जब तक आखिरी स्वर की गूंज खत्म होती सभी बच्चे शांत हो चुके होते थे। वे खामोशियां, वे सन्नाटे याद रहेंगे मुझे ... सात क्या उसके भी कई-कई सालों बाद भी।

* बीथोवन : उन्नीसवीं सदी के विख्यात जर्मन संगीतकार जिन्होंने कई वाद्यवृद्धों (सिंफनीज) की रचना की। उनकी पांचवी सिंफनी विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

अब शायद मुझे उन सभी शिक्षकों के लिए पत्रों को और उनकी यात्राओं को भी याद कर लेना चाहिए। समुद्र पार के उन विश्वविद्यालयों को भी, उन सबको जिन्होंने मेरे काम में रुचि ली थी। उन सबको मैं धन्यवाद देती हूँ। काश! मैं अपनी शिशुमाला को ही प्रशिक्षण का केंद्र बना पाती, और आप सबको कुछ बता पाती। अपनी बेलगाम कल्पना में तो मैं यह चाहती भी थी कि आप सब आएँ, छोटे-छोटे दलों में आएँ, हमारे छोटे से जिले में साथ रहें, हर दिन हमारी शाला में आएँ। पर बेलगाम इच्छाओं की भी सीमाएं होती हैं, ऐसा कभी संभव नहीं हो पाया। पर बलवती इच्छाएं जल्दी मरती नहीं हैं; वे सात साल बाद, आज भी, ज्यों की त्यों बनी हुई हैं।

मैंने रचनात्मक शिक्षण योजना को फिर से पढ़ा नहीं है।

अगर ऐसा करने का जोखिम उठती तो पुनर्चना, पुनर्संगठन, पुनर्लेखन और शायद पुनर्चिंतन की जरूरत पड़ती। पर ऐसा कुछ भी मैं करना नहीं चाहती हूँ। जब यह सब मैंने लिखा था, किया था, तब मुझे यह इसी रूप में ठीक लगा था।

और फिर किसी स्मृति को कोई कैसे छेड़ सकता है ... काल के उस क्षण की मोहकता को कैसे कोई बदल सकता है? और अतीत की उन्मत्त उमंग को फिर से कौन जिलाना चाहेगा भला? उन्हें याद कर लेना भर ही काफी है। एक जीवंत शिक्षक तो बस पढ़ाता और तब आगे बढ़ जाता है न। ठीक वैसे ही तो जैसे :

चलती उंगलियां लिखती हैं और लिख चुकने के बाद भी
चलती रहती हैं। तुम्हारी समूची पवित्रता समूची बुद्धि
उस लिखे हुए की आधी पंक्ति भी निरस्त नहीं कर सकती
न तुम्हारे सारे आंसू एक शब्द को भी धो सकते हैं।

सिल्विया एश्टन-वारनर

एक पत्र, अमरीकी संपादक के नाम

प्रिय बॉब,

आज सुबह ही मिला था तुम्हारा वह पत्र जिसमें तुमने पुस्तक के आमुख को बढ़ाने की बात लिखी है। यह तो मैं कर ही नहीं सकती। तीन कारण हैं इसके। यह आमुख तो इस उम्मीद में लिखा गया था कि यह पुस्तक मेरे अपने देश न्यूजीलैंड में प्रकाशित होगी। पूरे उमंग, पूरे उत्साह के साथ...पर वह चेष्टा तो विफल ही रही। अब तुम्हारे देश के पाठकों के लिए आमुख, वह तो बिल्कुल ही दूसरी बात होगी न। जब कोई कलाकार किसी कृति में जुटा होता है तब उसके विचार तपे और तरल होते हैं ... तब उन विचारों में अनुकूलता होती है, सामंजस्य की ताकत होती है और गरमी भी। ब्रह्माण्डीय गैस का मानिंद होते हैं वे, जो दबाव डालने वाली शक्तियों के अनुरूप आकार पा लें। पर जब कालांतर में उनका एक रूप, एक आकार बन चुकता है, . .. खगोलीय गैस एक ठंडे तारे का रूप ग्रहण कर चुकती होती है, उसके बाद उनका आकार थोड़े ही बदलता है ... वह आकार तो चिरकालिक बन जाता है। और आखिरी कारण तो बेहद साधारण सा है, बिल्कुल भौतिक। मैं यह कर ही नहीं सकती क्योंकि मुझे यह सब बेहद रुलाता है।

पर तुम्हारे कुछ सवालों का जवाब मैं जरूर दे सकती हूं। तुमने अपने अमरीकी पाठकों के लिए कुछ “ठंडे और ठोस तथ्य” चाहे हैं। तुम्हारा पहला सवाल तो यही है कि “घटना की तिथि क्या थी?”

कब शुरू हुआ था यह सब? तब जब मैं अपनी भरी जवानी में माओरी बच्चों की शिशुशाला में पहली बार शिक्षिका के रूप में पहुंची। जरा याद करने दो, ... चार आठ ... चार और आठ यानी बारह ... और चार, यानी सोलह ... तब फिर एक चार और यानी बीस ... और चार कुल मिलाकर हुए चौबीस, हां चौबीस बरस पहले ? सच, क्या इतना समय गुजर चुका है ? और आज से सात बरस पहले वह सब शेष हुआ था। तब, जब मैं मूल शब्दावली (की वोकेब्यूलरी) के विचार तक पहुंची थी। या यह कहूं कि वह विचार ही मुझ तक पहुंचा था? कैसी चकाचौंध के साथ प्रकट हुआ था मुझ पर वह विचार ... बिल्कुल बिजली की दमक की तरह। उसके सफेद प्रकाश में मैं

शिशुशाला के दाग-धब्बों से भरी मेजों को, उघरे लकड़ी के फर्श को, देख पाई थी।

तुमने यह भी जानना चाहा है कि मेरी परिस्थिति उस समय क्या थी ? इसका बयान तो यहां है ही। मेरी डायरी के आखिरी पन्नों में अपने प्रश्न का उत्तर तुम पाओगे।

कितना समय लगा? यह भी पूछा है तुमने। और मैं भी बता ही चुकी हूँ-चौबीस साल। बच्चे कितने थे? शुरू में शायद नौ-दस ही थे। पर बाद में बढ़ते-बढ़ते एक बसंत में तो शायद सत्तर तक पहुंचे थे। पर जब मैंने मूल शब्दावली को देखा था, उस समय उनकी संख्या पचास से कुछ ही कम थी।

तुमने आगे लिखा है “अगर संभव हो तो अपने विचारों के विकास का कुछ वर्णन करो। यह बताओ कि न्यूजीलैंड में शिक्षा के क्षेत्र पर उनका क्या प्रभाव पड़ा? यह अमरीकी पाठकों के लिए आवश्यक है सो कृपया ना, न करना। (तुम्हारे विचारों का न्यूजीलैंड में कैसा स्वागत हुआ यह बताओ)?” बॉब, प्रशांत महासागर के उस पार क्या तुम मेरी इस ठंडी सांस को सुन पा रहे हो?

मेरे विचार कैसे विकसित हुए? सच, मैं नहीं जानती। बल्कि मैं तो यह मानती भी नहीं कि विचार सच में बढ़ते या विकसित होते भी हैं। वे तो कौंधते हैं, अचानक प्रकट हो जाते हैं। हम केवल उन पर आश्चर्य कर सकते हैं, कृतज्ञता का अनुभव कर सकते हैं। इस बारे में तो इतना भर ही कह सकती हूँ। रहा तुम्हारे सवाल का दूसरा भाग, न्यूजीलैंड में इसका कैसा स्वागत हुआ ...।

एक परिवार है। एक छोटा देश परिवार ही तो होता है। और न्यूजीलैंड में तो हम दूसरे छोटे देशों की तुलना में भी एक निकट और परस्पर जुड़े हुए परिवार की तरह हैं। कारण शायद यह है कि हम चौतरफा दक्षिणी समुद्रों से घिरे हुए हैं, और पूरी तरह दुनिया के पैरों तले धरे हैं-बल्कि शायद यह भी कहा जा सकता है कि जूतों तले। सभी सच्चे परिवारों में निष्ठा होती है, सदस्यों में एक दूसरे के प्रति वफादारी होती है। कुछ परिवार झगड़ते हैं, कुछ नहीं भी झगड़ते हैं, कुछ नहीं भी झगड़ते, पर हरेक परिवार का एक कानून जरूर होता है, लिखित भी, मौखिक भी। वह यह कि परिवार का कोई भी सदस्य परिवार के बाहर पारिवारिक मामलों पर नहीं बोलेगा; यह बात मर्यादा की भी है निष्ठा की भी।

एक बार एक महिला ने मुझे सगर्व कहा था कि “मेरा परिवार कभी झगड़ता नहीं।” उस समय मैं जवान थी और हमारे बच्चे भी छोटे थे। तब मैंने सोचा था “वाह, क्या बात है! काश, मैं भी अपने परिवार के बारे में ऐसा ही कह सकती।” पर अब तो मैं जवान नहीं रही और न ही उतनी नादान ही। अब जब भी मैं पलट कर उस न झगड़ने वाले परिवार को देखती हूँ। तब मुझे उनकी जड़ता ही याद आती है; और याद आती

है उनकी बुझी-बुझी आंखें, मां-बाप के सपाट चेहरे जिनमें आंसुओं से दरारें तक नहीं बन पाई थी। जब मैं यह जानती हूँ कि लड़ने-झगड़ने के लिए आवेग और ऊर्जा की जरूरत होती है ... साधारण नहीं, भव्य ऊर्जा, भव्य आवेग, भव्य झगड़े, भव्य मिलाप, भावनाओं का भव्य उतार-चढ़ाव!

न्यूजीलैंड में हम सब लड़ते-झगड़ते हैं। यह तुम बिलकुल साफ-साफ समझ लो। सुबह-शाम, दिन-रात लड़ते हैं हम। दाएं से बाएं और बाएं से दाएं; आगे से पीछे और पीछे से आगे तक हम झगड़ते हैं; ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक लड़ते हैं; हम इस किनारे से उस किनारे तक, देश के के कोनों कोनों तक लड़ते हैं। हमारा पूरा देश एक बेहद पेचीदा, दुर्बोध और थका देने वाले जाल में उलझा हुआ है। बहसों हमारी दक्ष होती हैं और हमारे झगड़े अनंत। और हम तब तक ऐसे ही बने रहेंगे जब तक हमारे सुर्ख-तपे हुए पायोनियर रक्ताणु किसी तरह मंद और शांत नहीं हो जाते। क्योंकि यहां आवेग है, ऊर्जा है, वैभव और शौर्य है, जो हर सुबह (दैनिक पत्रिका की सी नियमितता के साथ) साधारणता और सामान्यता को ललकारता है, उसे बेधता है। इससे तमाम सनसनीखेज विचार उपजते हैं। ये आपस में टकराते हैं, उसे बेधता है। इससे तमाम सनसनीखेज विचार उपजते हैं। ये आपस में टकराते हैं और तब विस्फोट होता है। ठीक वैसा विस्फोट जैसा आकाशगंगाओं में होता है ... जैसा दक्षिणी तारों की आकाशगंगाओं में होता है।

बेहद लड़ते हैं हम, बॉब। सच कहूँ तो मैं ऐसे किसी दूसरे देश की कल्पना तक नहीं कर सकती जो इतनी सारी गलतियों को इतने दृढ़ आत्मविश्वास के साथ जीता रहा हो। और हमारी निष्ठा, वह तो कालातीत ही है। और हम सभी कालातीत नियम-कानूनों को भी मानते हैं। जाहिर है कि तुम्हारे कुछ सवालों के उत्तर मैं दे नहीं सकती।

यह सच है कि पिछले सात वर्षों में मैं रचनात्मक शिक्षण योजना को अपने देश में छपवाने की कोशिश में लगी रही हूँ। सात सालों तक मैं चेष्टा करती रही, आशा करती रही, इंतजार करती रही क्योंकि पारिवारिक निष्ठा ने मुझे अपंग बनाए रखा था। मैं डिटाई के साथ बराबर यह चाहती रही कि मेरी पुस्तक मेरे ही देश में छपे, मेरे ही जीवनकाल में छपे ... मेरे बाद नहीं। मैं उसे देखना चाहती रही, स्वार्थ और अभिमान से भरी, उसे छपा देखना चाहती रही। मैं यह भी चाहती रही कि मैं खुद शिक्षकों को प्रशिक्षण दे सकूँ। आतुरता के साथ मैं उस दिन का इंतजार करती रही जिस दिन न्यूजीलैंड के सबसे अच्छे शिक्षक इन विचारों से परिचित हों, उन्हें अपने काम में उतारें ... ठंडे दिमाग से, पूरी तसल्ली से बिना उस रचनात्मक ज्वर के जो मुझे जकड़े रहा था; पूरी कुशलता से, बिना मेरे सामने आई बाधाओं और संकटों के। ऐसा नहीं था कि न्यूजीलैंड के शिक्षक इन विचारों को जानना न चाहते हों। रचनात्मक शिक्षण के मूल

सिद्धान्तों से तो उनका संक्षिप्त और आंशिक परिचय मेरी पुस्तक “स्पिंस्टर” के माध्यम से हुआ ही था। बल्कि देश भर में उन विचारों का इस्तेमाल भी किया गया था, और इसका तो मैंने बराबर अहसान माना ही है। पर एक प्रकाशक महोदय ने कहा मेरी शैली नहीं चलेगी, मुझे पूरी पुस्तक को बाकायदा परंपरागत रूप देना पड़ेगा; यानी अ, ब, स, वाला रूप; जहां पहली बात पहले और तब आगे की बात हो। वे मुझे मर्यादित नीरसता में बांधना चाहते थे। दूसरे प्रकाशक महाशय ने कहा था, तुम मानो या न मानो, लिखित रूप में दिया था उन्होंने “मैं ... यह पुस्तक नहीं छाप सकता ... यह अपने समय के पहले है।”

तीसरे साहब पाण्डुलिपि को साल भर रखे बैठे रहे, कोई जवाब ही नहीं दिया उन्होंने। और मैंने पाण्डुलिपि वापस मांगी तो उनका प्रतिवाद यह था कि मैंने उन्हें पढ़ने का मौका ही नहीं दिया। उन्होंने जानना चाहा “क्या आप इस साप्ताहिक तक नहीं छोड़ सकतीं?” एक और सज्जन थे जिन्होंने कहा कि इसे छापना उनके सामर्थ्य से बाहर है। हां, इसी दौरान ... शायद बिलकुल शुरू में ही, मैंने पाण्डुलिपि शिक्षा विभाग में भी भेजी थी। जब तीन महीनों तक उनकी कोई प्रतिक्रिया न आई और मैंने पाण्डुलिपि वापस चाही तो पता चला कि पाण्डुलिपि के साथ कोई पत्र नत्थी नहीं किया गया है; (जबकि पत्र तो भेजा ही गया था)। उन महाशय का कहना था कि उन्हें पाण्डुलिपि ‘रोचक लगी’, उन्होंने यह आशा भी व्यक्त की कि पाण्डुलिपि मुझ तक “सकुशल पहुंचेगी”। अब यह सब लिखते हुए मुझे बेहद हंसी आ रही है। क्योंकि ठीक ऐसी ही कहानियां तो मैं अपने नन्हे-मन्नों को गढ़कर सुनाया करती थी। और अपने उस मित्र के प्रयास का क्या जिक्र करूं जिसने मुझे खुश करने के लिए किताब खुद ही छापने का निर्णय ले डाला। उस छापेखाने में किताब की एक ही प्रति छपी होगी कि पूरा छपाखाना ही भावनात्मक और आर्थिक दबाव से भरभरा कर टूट गया। और जब छापेखाने में से सब कुछ समेटा-निकाला जा रहा था उस समय किताब का टाइप-सेट भी गुम हो गया। और जब इतना सब हो गया उसी समय मैंने अपनी पारिवारिक निष्ठा पर फिर से गौर किया।

जहां तक तुम्हारे अगले प्रश्न का सवाल है कि न्यूजीलैंड की शिक्षा ने इन विचारों का कैसा स्वागत किया, ... प्रयोग के वर्षों के दौरान मुझसे कैसा व्यवहार होता रहा, ... जब मैं विचारों को काम का रूप देने लगी तो क्या-क्या हुआ ... तब मेरे प्रति व्यवहार कैसा था ... और बाद में जब स्पिंस्टर छपी तब ...।

ना, यह आरोप मैं नहीं लगाना चाहती कि न्यूजीलैंड का वातावरण कला को प्रोत्साहित करने वाला नहीं है। और फिर इस नीले गगन तले शायद ही कोई ऐसी जगह हो जिसके लिए यह कह सकें कि यहां स्थितियां पूरी तरह कला के अनुकूल हैं। कला

या तो विस्फोटक रूप में सामने आती है या फिर मर ही जाती है। मैं भी इसी प्रकार जबरन आई, पर विश्वास करो बिना घावों के ह संभव नहीं हुआ था। हम जीवन से जो कुछ चाहें वह ले तो सकते हैं, पर अपने खून से उसकी कीमत चुकाने के बाद ही। मैंने जो चाहा वह लिया ... जाहिर है कीमत भी चुकाई। पर वह सब तो एक परिवारिक-स्वदेशी नाटक था जिसके बारे में मैं अपने देश में या उसके बाहर, तुम्हारे देश में या उसके बाहर, कहीं भी, कुछ भी नहीं कहूंगी, ना कहना चाहूंगी, जब तक न्यूजीलैंड में मेरी कब्र मुझे शांत न कर दे। और तब मेरी रूह उठेगी। उन्हें सताएगी और अकथनीय का बयान करेगी। जो मैं कह रही हूँ वह याद रखना तुम।

सो मेरा काम अब तुम्हारे देश में है; मेरे पूरे जीवन का काम तुम्हारे पाठकों के सामने है। मैं उन शिक्षकों के लिए यह भेज रही हूँ जिन्होंने मुझे पत्र लिखे हैं। उन महिलाओं, पत्रकारों, समीक्षकों और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के लिए, मेरी सारी सुसंस्कृत अविवाहितों के लिए भी। इन सब लोगों ने अपने पत्रों में अपना श्रेष्ठ मुझे दिया। और अब मैं उन्हें अपना श्रेष्ठ अर्पित करती हूँ। उनमें से कुछ मुझसे सहमत होंगे, कुछ असहमत भी। मेरा अनुभव बताता है कि वे मेरे काम की आलोचना विवेकपूर्ण औदार्य के साथ करेंगे। ध्यान दो, यहां मैं औदार्य पर जोर दे रही हूँ। तुम्हारे देश में मेरी कई बार तीखी आलोचना भी हो चुकी है। पर कभी भी उसके लहजे से मेरे खून का बहाव रुका नहीं। मुझे तो हर कलम औदार्य में भीगी ही मिली।

‘रचनात्मक शिक्षण योजना’ मैं अपने देश से तुम्हारे देश में भेज रही हूँ। बॉब, क्योंकि मैं इसे महत्वपूर्ण मानती हूँ। जैसा कि स्पिंस्टर में अन्ना ओरोन्तोसोव ने कहा था कि “वह तो मुझे करना ही है, जिसमें मेरा विश्वास है, और जो कुछ मैं करूँ उसमें विश्वास भी होना चाहिए; आखिर इसके अलावा दूसरा कुछ भी करने के लिए तो उम्र ही छोटी है।” मुझे विश्वास है कि मेरा काम सार्वभौमिक है। काली हों या गोरी, पीली हो या भूरी, सभी नस्ल के लोगों के लिए है यह काम। क्योंकि जातीय अल्पसंख्यक तो हर जगह ही होते हैं न, जिन्हें एक दूसरी संस्कृति से परिचित होने पर, उसे जानने सीखने पर बाध्य होना पड़ता है।

एक सवाल और भी है जिसे तुमने उठाया नहीं है। उन किताबों का, उन पाठशालाओं का आखिर क्या हुआ जो मैंने अपने हाथों से बनाई थीं और जिनका उल्लेख इस पुस्तक में मैंने बारबार किया है? चौबीस साल पहले, शिशुशाला में जाने के पहले ही सप्ताह से उन्हें बनाना शुरू कर दिया था मैंने। मैं लिखती थी, चित्र बनाती थी, परीक्षण करती थी। तब संशोधन करती थी, फिर जांचती थी, फिर सुधारती थी, फिर चित्र आंकती थी। काटती-छांटती बदलती; सतत परीक्षण, संशोधन, फिर परीक्षण और फिर संशोधन। असंख्य चित्र बनाए थे मैंने, सैकड़ों बार रंगा था उन्हें। मैं बारबार

यह करती रही थी और यह सिलसिला कुल सात साल पहले ही तो थमा था। तब इन किताबों को लेकर एक जिल्दसाज के पास गई थी। उसने मजबूत पुट्टों से उन्हें बेहद सुंदर संवार दिया था।

पहली किताब पीली बनी थी, दूसरी नीली, तीसरी हरी, और चौथी लाल; हरेक का ऊपरी कोना एक चटकीले माओरी अल्पना से सजा था; हरेक के मुखपृष्ठ के बीचों-बीच किताबों के मुख्य पात्र—एक माओरी बच्चे के अलग-अलग मुद्राओं में चित्र थे। पन्ने कड़क व्हिटमैन कागज के थे, जिन पर असंख्य जलरंगों से रंगे चित्र थे। उनका लिखित भाग बच्चों के मोटे टाइप में टंकित था। उस समय लगा था... पर अब नहीं लगता... कि एक सुदूर सपने के साकार होने के बहुत ही पास पहुंच गई हूँ मैं, कम से कम शुरूआत करने के लिए मेरे पास कुछ तो है। मैंने उन्हें 'संक्रमण पाठमाला' (ट्रांजिशनल रीडर्स) का नाम दिया था। पर इसके बाद एक और पारिवारिक नाटक हुआ जिसकी बात बाहर नहीं की जा सकती। और तब उस दिन पता चला कि वे जला दी गई हैं। भूल से ... पर मेरी भूल से नहीं।

मैंने फिर से काम शुरू किया, शायद तत्काल ही, और शायद दो किताबें बना भी डालीं ... पर वे वैसी न बन पड़ी जैसी पहले वाली थीं। सो, मैंने उन्हें बनाना बंद कर दिया। न तो अपनी रुचि पहले सी पाई मैंने, न ही अपने हाथों की पकड़ उतनी सूक्ष्म.. और सच कहती हूँ इन बातों का मेरी उम्र से कोई संबंध नहीं था। पर फिर भी उन्हें एक प्रकाशक को दिखाया था, ... इस्तीफा देने के बाद...। पर जाहिर था कि मैंने देरों रंगों को इस्तेमाल किया था। उन्होंने सुझाया कि मैं रंगों की संख्या कम कर दूँ, उन्हें केवल दो तक ले आऊँ। और यह न कर पाऊँ तो कम से कम केवल प्राथमिक रंगों को ही काम में लूँ। बात ठीक ही थी, अक्लमंदी की थी ... पर मैं तो हरदम विवेकशील नहीं रह पाती हूँ न। उन्होंने काफी समय लगाया, देर तक सोचा-विचारा, विदेश में उन पृष्ठों की छपाई पर आने वाले खर्च का अनुमान तक लगवाया। पता चला हर पृष्ठ का खर्चा करीब पैंसठ पाऊँड आएगा। इसके आगे वे भी कुछ न कर पाए। और तब से ये किताबें जिसमें जोसेफ के कोट से भी अधिक रंगों के पैबंद थे... प्रतिध्वनियों की गूँजों से भरी ये किताबें...मेरी टांड पर धरी हुई हैं। शायद कहना चाहिए कि वे घात लगाए बैठी हैं। खैर, आखिर मैं कोई प्रतिभाशाली चित्रकार भी कहां थी।

तुमने कुछ 'ठंडे और ठोस तथ्य' चाहे थे...। पर मैं तो यह जानती ही नहीं कि मुझमें कोई ठंडा तथ्य है भी। या कहूँ कि मेरे अंदर कुछ भी ठंडक लिए है। मेरे पास तो रचनात्मक शिक्षण के बारे में केवल गरम तथ्य ही है। इतने गरम कि वे मुझे, मेरे अंतस को, और इस कागज तक को जला डालें।

मैं आज शाम खुद को निपट अकेली पा, अलाव के पास बैठी, पेंसिल से तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ। मन में यह सदिच्छा जरूर है कि इसे सुधारूंगी, बदलूंगी, बेहतर बनाऊंगी, टाइप करूंगी, इसे संक्षिप्त कर डालूंगी ... कल ही। पर मैं जानती हूँ कि मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूंगी। मैं कॉपी में से इन पन्नों को फाड़ूंगी, एक लिफाफे में डालूंगी और कल की डाक से प्रशांत पार रवाना कर दूंगी... ताकि फिर इसे न पढ़ूं। यह सोचकर डरना या झिझकना नहीं कि यह पत्र कठोर है; बेतरतीब और उलट-पुलट है। विरामचिह्नों के साथ हो या उनके बिना, मेरे पाठक मेरा आशय खुद ही समझ लेंगे।

मेरी शुभकामनाएं और धन्यवाद स्वीकारो। मुझे खुशी है कि कम से कम यह खत्म तो हुआ। इसके बाद फिर कभी इतना कठिन काम करने को मुझे न कहना। पर सच, अब कितना हल्का और अच्छा लग रहा है... जैसा चौबीस बरस पहले यह सब शुरू करते समय लगा करता था, वैसा ही। लग रहा है कि मेरा यह पत्र प्रेस में छपने दिए गए मेरे कथनों में सबसे कठोर है। ... 'रचनात्मक शिक्षण योजना' को पाठकों तक पहुंचाने के साथ मेरे जीवन भर का काम समाप्त हुआ। और मैं यह जानती हूँ कि विश्रांति किसे कहते हैं।

सस्नेह,
सिल्विया

रचनात्मक शिक्षण

नया नहीं है सहज पठन

सहज पठन का सिद्धांत कोई आज की नई बात नहीं है। प्राचीन मिश्र की चित्रलिपि भी तो अपने आप में एक शब्द वाले वाक्य ही थे। और हेलन केलर* का पहला शब्द 'पानी' उसके लिए एक शब्दावली पुस्तक थी। सहज पठन का सूत्र तोल्सतोय को भी अपनी ग्रामशाला में मिला था, और आज यूनेस्को के क्षेत्र में हर जगह पढ़ाने के लिए इसका ही उपयोग होता है। क्योंकि आखिर यही अकेला विवेकपूर्ण रास्ता जो है अविकसित लोगों को लिखित भला 'फसल' 'माटी' 'भूख' और 'खाद' जैसे शब्दों के बिना पढ़ाई की शुरूआत करने की बात सोच सकता है?

ऐसा भी नहीं है कि सहज (ऑरगेनिक) पठन केवल निरक्षर या अविकसित नस्लों के लिए ही हो। सच तो यह है कि इसके बिना हम किसी भी बच्चे को एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति की ओर ले ही नहीं जा सकते। खासकर न्यूजीलैंड में, जहां माओरी बच्चों को काफी कच्ची उम्र में ही यह संक्रमण यात्रा करनी पड़ती है। सच्चाई तो यह है कि यह सिद्धांत ही सार्वभौमिक है। पहले शब्द, पहले चित्रों की तरह ही होते हैं—अंतर केवल माध्यम का ही है। न्यूजीलैंड में लड़कों के पहले चित्र गतिशील वस्तुओं के हुआ करते हैं, अगर बच्चा धनी आबादी वाले क्षेत्रों में रहता हो तो वह ट्रक, ट्रेन, हवाई जहाज के चित्र बनाता है और अगर वह बीहड़ों में रहता हो तो घोड़ों के। पर न्यूजीलैंड की नन्हीं लड़कियां अपने घरों के चित्र बनाती हैं। एक बार मैंने इन्हीं दोनों विषयों पर पाठमालाओं का एक पूरा सेट बनाया था। पर टौगेन नस्ल के नन्हें-मुन्ने पेड़ों को उकरते हैं; सामोआ के पांच साल के नन्हें चर्च बनाते हैं, और चीनी बच्चे फूल!

कैसी जादू सा असर करने वाली कथा है यह!

फिर इतना सब जानते-बूझते हुए भला कोई इन नन्हें-मुन्नों को किसी पूर्वनिर्धारित पुस्तक से कैसे शुरू करवा सकता है... चाहे वह किताब कितनी भी अच्छी क्यों न हो? और कोई भी किताब, तुलना में, उस किताब से क्या अच्छी होगी भला जो बच्चों ने खुद ही रची हो? हां, यह मैं जरूर कहूंगी कि पढ़ने की इतनी भर सामग्री नाकाफी है। पर हम बात केवल प्रारंभ की कर रहे हैं। सेतु तो यही है।

* जन्मांध गूंगी महिला जिसने विकलांग होने के बावजूद पढ़ना-लिखना सीखा था।

यही तो वह सेतु है जो जाने-पहचाने को अनजाने से जोड़ता है; एक सहज प्राकृत संस्कृति को एक नई संस्कृति से जोड़ता है; यही बात और सार्वभौमिक रूप में कहे तो कह सकते हैं कि मानव के भीतर की दुनिया को बाहरी दुनिया से जोड़ता है।

नया नहीं है सहज (ऑर्गेनिक)* पठन का सिद्धांत; पहले शब्द तो सदा से ही पहली जरूरतों की पहचान कराते रहे हैं। तोलस्तोय ने कहा था 'एक देश बने, उसके पहले यह जरूरी होता है कि उसकी भाषा तय कर ली जाए।' मानव ने जो पहली ध्वनियां निकाली होंगी वे निश्चय ही उसकी आवश्यकताओं को ही मुखरित करने वाली रही होंगी, और उसके पहले मुहावरे जरूर एकाक्षरी ही रहे होंगे...।

जिन देशों में प्राचीन भाषाएं अभी भी बची रह गई हैं वहां हम साधारण और परिचित चीजों को ही, जो इंद्रियों के लिए नई न हों, एकाक्षरों में अभिव्यक्त होता पाते हैं। चीनी भाषा का आधार आज तक एकाक्षर ही बना हुआ है।

'चाल्डिया के लोग बड़े लंबे समय तक अपने अनुभवों और कानूनों को चित्रलिपि में ईंटों पर अंकित करते रहे थे; बोलते चित्र हुआ करते थे ये ...। जो कुछ उन्हें कहना होता था, संप्रेषित करना होता था उसे आंकते थे वे... कालांतर में लेखन प्रतीकात्मक हो चला; तीर का अर्थ हुआ युद्ध, आंख देवत्व के रूप में रूढ़ हो चली।'

जुलाई, 1857 में तोलस्तोय ने अपनी डायरी में लिखा था : "...एक बेहद जरूरी बात: मुझे यह स्पष्ट प्रतीति हुई कि इस पूरे क्षेत्र के लिए ही एक पाठशाला खोलनी चाहिए।"

दो ही साल में, 1859 के पतझर में तोलस्तोय अपने सपने को साकार रूप देने के निकट पहुंच चुके थे। जिस आवेग के साथ उन्होंने तमाम दूसरे काम किए उसी आवेग के साथ उन्होंने शिक्षण भी किया। ऐसी निष्ठा के साथ कि उनकी तमाम दूसरी रुचियां दरकिनार हो चलीं। जीवन के तीन वर्ष उन्होंने ग्रामीण बालकों को समर्पित किए। पर उनके काम का किसी भी मर्यादित शिक्षण पद्धति के साथ कोई भी साम्य न था। तोलस्तोय ने लिखा था कि अपनी पाठशाला के लिए उनके मन में अथाह प्यार था। उनके मार्गदर्शन में उन सभी नौजवानों के मन में भी, "जो तोलस्तोय की सहायता के लिए आगे बढ़े थे, ठीक वैसा ही स्नेह जग सका।"

यह तो जाहिर है कि उन्होंने हर लीक को नकारा, तत्कालीन प्रचलित सभी शिक्षण पद्धतियों को अस्वीकारा। उन्हें तो सबसे पहले उस ग्रामीण बालक के मन में ही झांकना था। दण्ड के हर रूप को बहिष्कृत करने के बाद उन्होंने उन बालकों को ही यह सिखाने का अवसर दिया कि आखिर कला कहते किसे हैं। उनकी पाठशाला में बालक अपने

* सहज (ऑर्गेनिक) शब्द का इस्तेमाल लेखिका ने एक विशेष अर्थ में किया है। इसमें बच्चों की भावना, संवेदन और आंतरिक लगाव एक साथ गुंथे हुए हैं।

विषय खुद ही चुन सकते थे। वे स्वयं यह भी तय कर सकते थे कि कितना काम उन्हें करना है। उस स्कूल में हरेक शिक्षक अपना एक ही दायित्व स्वीकारता था—ज्ञान की सतत शोध में बालक की सहायता करना। हरेक बालक की निजी जरूरत के अनुसार वहां के शिक्षक पढ़ाने-समझाने के तरीके बदलते थे। वे बराबर यह जानने की चेष्टा करते रहते थे कि बच्चों के लिए सबसे बेहतर तरीका कौन सा होगा।

तोल्स्तोय की ये पाठशालाएं—जहां पाठ्यक्रम न थे, जहां सजा न थी, कायदे-कानून के बंधन न थे, जहां बच्चों को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध कुछ भी करने पर बाध्य न होना पड़ता था—बेहद सफल पाठशालाएं थीं। बच्चे वहां पूरा-पूरा दिन गुजारते थे और शाम होने पर भी घर लौटने की उनकी इच्छा न होती थी।

इस सबके पचास साल बाद बेसिल बोरोसोव ने, जो उन ग्रामीण बालकों में एक था, कहा था 'घंटों मिनटों में गुजर जाया करते थे। सच अगर पूरा जीवन वैसे ही उल्लास से गुजरता तो उसके बीतने का पता ही न लगता। अपनी खुशी, अपने उल्लास और अपनी प्रगति में हम सब काऊंट के साथी बन चले थे। काऊंट आसपास न होते तो हमें उदासी आ घेरती, हमारे बिना काऊंट भी उदास रहते। हमारे बीच दूरियां थी ही नहीं, रात ही हमें बिछुड़ने पर मजबूर करती थी...। हमारे वार्तालाप अनंत हुआ करते थे। क्या कुछ नहीं बताते हम उन्हें, जादूगरों की बात, जंगल में छुपे शैतानों की बात ...।'

अल्जीरिया के पहाड़ों पर बसे काव्यलिआ का एक अंतर्राष्ट्रीय स्वयंसेवक लिखता है:

'कोई बीसेक बच्चे रहे होंगे। वे अपनी शिक्षिका के सामने बैठे थे। शिक्षिका ने एक बड़े से कागज पर उनके गांव का नाम लिखा था। वे सब सामुहिक स्वर में उसे पढ़ रहे थे। किस कदर स्वाभिमान से भरे थे वे; बार-बार उन्होंने यह शब्द हमें पढ़कर सुनाया।'

'अगली शाम तीन वयस्क हमारे पास आए। वे चाहते थे कि हम उन्हें उनके नाम लिखना सिखाएं।'

—'क्यों लिखना चाहते हैं आप लोग अपना-अपना नाम?'

'ताकि डाकखाने में दस्तखत कर सकें' एक ने समझाया।' अगर रजिस्ट्री पाने पर मैं खुद अपने दस्तखत कर सकूंगा तो मुझे एक गवाह को पैसे नहीं देने पड़ेंगे।'

'क्या अकसर आपके पास ऐसी चिट्ठियां आती हैं?'

'ना, पर कभी-कभी जरूर आती हैं। फ्रांस में मेरा बेटा है न, उसके पास से।'

'और हम उन्हें लिखना सिखाने लगे। शाम पड़े मसहरी में दुबक कर आराम करने का विचार छू मंतर हो गया। बुनियादी शिक्षा के ज्वर में हम जकड़ गए।'

पढ़ना शुरू करने वालों के लिए सहज पठन से शुरूआत करना कोई नई बात नहीं है। नया अगर कुछ है तो केवल हमारा उसे नकारना, उसे अस्वीकारना।

आधारभूत शब्दावली

माओरी बच्चों की शिशुविद्यालय में किसी भी विषय को पढ़ाने के तरीके को हम उस पुलिया के एक पट्टे के रूप में देख सकते हैं, अंततः जिससे होकर बच्चा एक दूसरी संस्कृति तक पहुंचता है। जितना यह सेतु मजबूत होगा उतना ही वह माओरी बालक अपनी बाद की जिंदगी में सफल हो सकेगा।

अक्सर माओरी बच्चे इस संक्रमण, इस परिवर्तन में असफल हो जाते हैं। वे निहायत कच्ची उम्र में अपनी संस्कृति से उखाड़े जाते हैं और एक अपरिचित संस्कृति में धकेले जाते हैं। इस आकस्मिक कटाव के दृश्य या अदृश्य आघात से उनमें से कई कभी उबर नहीं पाते। यह बात शिक्षित माओरियों की संख्या पर तो असर डालती ही है, साथ ही यही वह कारण है जिससे हम कई उच्च शिक्षित माओरियों को मानसिक रोगियों सा पाते हैं। और यही वजह है कि कई माओरी बच्चे शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं।

इस सामाजिक असफलता का एक और कारण भी है। वह है उनका जरूरत से ज्यादा समय शिशुशालाओं में बिताना। शिशुशाला में उन्हें एक ओर तो भाषा की समस्या का सामना करना पड़ता है, दूसरी ओर उन पर अपरिचित संस्कृति लाद दी जाती है। फल यह होता है कि उन्हें एक सामान्य बच्चे से कहीं अधिक समय वहां बिताना पड़ता है। जब तक वे माध्यमिक शाला तक पहुंचते हैं, वे काफी बड़े हो जाते हैं। और किसी भी यूरोपीय समूह में घुल-मिल पाने में स्वयं को असमर्थ पा, वे हिम्मत ही हार बैठते हैं। किसी अच्छी नौकरी को पाने के लिए उनके पास कौशल नहीं होता, उम्र भी कम होती है, फलतः वे फसादों में उलझते हैं। यानी यूरोपीय मानदंडों के अनुसार वे पूरी तरह असफल करार दिए जाते हैं। और जब तक वे वयस्क होते हैं वे अपनी आखिरी और सबसे कीमती धरोहर सामाजिक स्थायित्व से भी हाथ धो बैठते हैं।

इसी पृष्ठभूमि को मन में रख, मैं माओरी शिशुशाला के हर विषय को, माओरी से यूरोपीय संस्कृति तक जाने वाले सेतु की एक पट्टी मानती हूँ, खासकर पठन को।

माओरी शिशुशाला के लिए पठन सामग्री बनाते समय एक शिक्षक को दो नस्लों के बीच के फासले को कम करने की चेष्टा करनी होती है, ताकि बच्चों को वहां समय जाया न करना पड़े।

दो दृष्टियां होती हैं बच्चों की, भीतरी और बाहरी। इनमें आंतरिक दृष्टि ही अधिकांश क पैनी होती है।

सुना है, दूसरी शिशुशालाओं में पांच साला बच्चों का प्रारंभिक शब्दावली से परिचय करवाने के लिए सचित्र सामग्री काम में लेते हैं। पर वे सारे चित्र भी तो वयस्क शिक्षाशास्त्रियों द्वारा ही चुने हुए होते हैं। चित्रों का उपयोग मैं भी करती हूँ पर ये सारे के सारे चित्र बच्चों की अंतःदृष्टि से उपजे होते हैं। इन चित्रों के शीर्षक भी वे खुद देते हैं। यह सच है कि वयस्कों द्वारा बाहरी दुनिया से चुने हुए चित्र भी अर्थपूर्ण हो सकते हैं और बच्चों को आनंद भी देते हैं; पर जो उनके मानस चित्र होते हैं, उनके ही शीर्षकों में शक्ति होती है वे ही प्रकाश से भरे होते हैं। बाहरी दृष्टि के बनाए चित्र रोचक भले ही हों पर अंतःदृष्टि के चित्र ही सहज होते हैं। उन्हीं चित्रों के शीर्षकों को मैं मूल शब्दावली कहती हूँ।

एक पांच साल के बच्चे का मस्तिष्क मुझे द्विमुखी ज्वालामुखी सा लगता है—ध्वंसात्मक भी, रचनात्मक भी। जिस सीमा तक हम किसी बच्चे की रचनात्मक सारणी को पुष्ट कर पाते हैं, ठीक उसी सीमा तक हम उसकी ध्वंसात्मक सारणी को सुखा डालते हैं। यही कारण है कि मैं इसे रचनात्मक पठन के रूप में देखती हूँ और उसकी गिनती भी कलाओं में करती हूँ।

पहले शब्दों का बच्चों के लिए विशेष अर्थ होना ही चाहिए।

पहले शब्दों का बच्चों के लिए गहरा अर्थ होना चाहिए। बल्कि उन्हें तो उसके मानस का ही हिस्सा होना चाहिए।

पढ़ने के लिए प्यार पर कितना कुछ निर्भर करता है। किताब थामने की, उठा लेने की स्वाभाविक ललक। यही तो चाहिए। इस प्रारंभिक विकास काल में ही किताब की ओर हाथ बढ़ाकर एक सहज प्रतिक्रिया बन जानी चाहिए। और इस स्थिति तक पहुंचने के लिए सुखद और कोमल शब्द नहीं चलेंगे। हमें ऐसे शब्दों की जरूरत होगी जो सहज हों। जो बच्चे के गतिशील जीवन से ही जन्में हों।

जाहिर है कि ये वे ही शब्द हो सकते हैं जो किसी बच्चे के मानस का हिस्सा बन चुके हों। अमरीका से हाल ही में छपी एक किताब कहती है कि शिक्षक बच्चे का यह अहसास करा सकते हैं कि पुस्तक के पात्र 'जैनेट' और "जॉन" उन्हीं के साथी हैं। पर उन दो निपट अपरिचितों के मित्र होने का विश्वास दिलाने या अहसास कराने की हमें क्या जरूरत है भला? बच्चे के खुद के भी तो साथी हैं जिनके लिए उनके मन में आवेग भरी भावनाएं हैं, तो फिर इन सच्चे साथियों के साथ क्या कुछ भी नहीं किया जा सकता है? इस महत्वपूर्ण चरण को अनदेखा करना मेरी नजर में असहज

होगा; यह सहज और प्राकृतिक प्रक्रिया के विपरीत होगा। मैं इसे कला के प्रति अपराध मानती हूँ। एरिक फ्रॉम* जिस प्राकृतिक विस्तार की बात करते हैं ऐसा करना उसमें बाधक होगा। जरा कल्पना कर देखिए कि अगर न्यूजीलैंड के नन्हों की पठन सामग्री अफ्रीकी अश्वेतों के जीवन पर आधारित की जाए तो उनका विकास कैसा हो? यह चाहना कि माओरी बच्चों की किताबें उनकी ही संस्कृति से उपजी हों, उनका ही रंग लिए हों, तो यह नाजायज मांग तो नहीं होगी न। यही तो चरित्र निर्माण का वह समय है जब बच्चों की आदतें पड़ती हैं और पुष्ट होती हैं। लिखित शब्द के प्रति अरुचि भी एक आदत ही है, जिसे मैंने स्वयं अपनी आंखों से शिशुशाला में जन्मते और पनपते देखा है।

किसी बच्चे के मस्तिष्क के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध कर उस पर एक बाहरी संस्कृति का खांचा बांधना तो सौंदर्य नहीं कहला सकता। शैशव के विकास को दिशा देने के, उस पर कलम बांधने के भी कुछ तौर-तरीके होते हैं। सौंदर्य की सच्ची अवधारणा तो स्वाभाविक जीवन के अनुकूल ही हो सकती है। पर इस स्वाभाविक विकास पर आंच तब आती है जब बच्चा एक दूसरी संस्कृति की ओर ले जाया जाता है। यह संक्रमण अगर उस समय होता जब वह कुछ बड़ा हो जाता और अपने आपको अधिक आश्वस्त पाता तो शायद इतनी एहतियात बरतने की जरूरत भी न होती, पर हमारे देश में तो यह संक्रमण कोमल अवस्था में ही सामने उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि हमें पूरी तरह सचेत और संवेदनशील होना पड़ता है।

अब फिर पहले शब्दों की ओर लौट चलें। पहली किताबों पर गौर करें। पहले शब्द तो उसी माटी के बने होने चाहिए जिस माटी के बच्चे खुद हों। मैं तो हाथ बढ़ाकर बच्चे के ही दिमाग में से मुट्ठीभर शब्द निकाल लेती हूँ और उनका ही पहले-पहल इस्तेमाल करती हूँ। फिर चाहे ये शब्द अच्छे हों या बुरे, उग्र हो या शांत, रंगीन हों या फीके। ताकि प्रारंभ टूटन से न हो, कटाव से न हो। और इस जीवंत और गतिशील सामग्री में, इस परिचित वातावरण के आश्वासन में, माओरी बच्चे अर्थों की नई गहराइयां पाते हैं जिससे पढ़ने के लिए केवल प्रेम जन्मता है। जितनी ही अधिक समय वह सहज और स्वाभाविक पठन में लगाता है, उतना ही दृढ़ होता चलता है यह प्रेम। और इसके बाद जब वह नई और अपरिचित संस्कृति की किताबों तक आता है तब वह नए आनंद के रूप में उनका स्वागत कर पाता है। एक अवांछित बोझा नहीं मानता वह तब उन्हें। यह मैं सच में जानती हूँ क्योंकि यह सब मैं कर चुकी हूँ।

पहले शब्दों का बच्चे के लिए गहरा अर्थ होना चाहिए।

पहले शब्द तो गतिमान जीवन के ही होने चाहिए।

* जर्मन मनोविश्लेषक और दार्शनिक जो बाद में अमरीका चले गए थे।

पहली किताबें तो उसी माटी की बनी होनी चाहिए जिससे वह बच्चा बना है। चाहे वह बच्चा कोई भी क्यों न हो, कहीं भी क्यों न हो।

जो शब्द मैं अपने बच्चों को मजबूत कार्डों पर लिखकर देती हूँ वे एक-दृष्टि-शब्द (वन-लुक-वर्ड) हो सकते हैं, बशर्ते उनका सही चुनाव किया गया हो। शब्दों का पता संवाद से लगता है। बच्चों के साथ बतियाना बेहद जरूरी होता है। पर अगर ऐसा न हो सके तो एक दूसरा रास्ता भी है। सृजनात्मक घंटों (क्रिएटिव-पीरियड) में जो कुछ आंकते बनाते हैं उनसे भी ऐसे शब्दों के संकेत मिलने की संभावना होती है। पर अगर इतना करने पर भी हम किसी बच्चे की मूल शब्दावली तक न पहुंच सकें तो हम सामान्य मूल-शब्दावली से भी शुरूआत कर सकते हैं। ये वे शब्द हैं जो प्रयोगों और बच्चों के ही रचनात्मक लेखन से स्पष्टतः उनकी अंदरूनी दुनिया से स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए पाए गए हैं : मां, बाबा (डैडी), चुम्मी (किस), डर, भूत।

“मोही!” मैं एक पांच वर्षीय, अनुशासनहीन माओरी बच्चे से पूछती हूँ “तुम्हें कौन सा शब्द चाहिए?”

“जेट!”

मैं मुस्करा कर शब्द एक मजबूत कार्ड पर लिखकर उसे थमाती हूँ। “फिर से बताओ तो यह क्या लिखा है मैंने?”

“जेट !”

“यह कार्ड कल सुबह लेते आना। गे, तुम्हें क्या चाहिए?”

गे, अपनी दबंग और संभ्रांत मां की शिकार है, एक अति-अनुशासित बच्ची है।

“घर” वह फुसफुसाती है। मैं यही लिखकर उसे थमाती हूँ।

“और तुम क्या लोगे सेवन?” सेवेन एक बेहद हिंसक माओरी है।

“बम, बम ! मुझे बम चाहिए!”

सो, सेवेन को उसका ‘बम’ मिलता है। वह हरेक को चुनौती देता है, कोई उसका बम उससे छीनकर तो दिखाए!

यही सिलसिला हरेक बच्चे के साथ जारी रहता है। हर दिन वे एक नए शब्द की मांग करते हैं। और ये वे शब्द होते हैं जिन्हें दूसरी बार लिखकर मुझे बताने नहीं पड़ते। दूसरे दिन जब वे पिछले दिन वाले कार्ड वापस लाते हैं, तब उन पर एक नजर डालते ही आप समझ जाएंगे कि मैं मजबूत कार्ड इस्तेमाल करने की बात क्यों करती हूँ।

कुछ ही दिनों में हरेक बच्चे के पास शब्दों का एक केन्द्र तैयार हो जाता है। इस बीच वे जांच-परख कर मुझे भी स्वीकार कर चुके होते हैं। तब मैं कोई भी एक शब्द उठाकर उन्हें दिखाती हूँ। ‘डर’, तुरंत हर बच्चा उस वस्तु का बयान करने लगता है जिससे वह बेहद डरता है। बच्चा जिससे डरता है, वह नस्ल और संस्कृति से जुड़ी बात

होती है। माओरी बच्चे प्रायः कहते हैं 'भूत' और यूरोपीय बच्चे किसी ऐसे जानवर का नाम लेते हैं जिसे उन्होंने कभी देखा न हो—'बाघ' या 'मगरमच्छ'। प्रतीकात्मक रूप से अगर देखें तो यह अपरिचित के प्रति ही भय है जो हम सब में छुपा बैठा होता है।

"मैं किसी से नहीं डरता!" भविष्य का हत्यारा नन्हा सेवेन चीखता है।

"डरते ही नहीं हो?"

"न, मैं चाकू घोंप देता हूँ।"

"बाघों को!" यह शब्द आमतौर पर यूरोपीय बच्चे ही इस्तेमाल करते हैं, पर अब अचानक एक माओरी को उसे काम में लेता पाती हूँ। मैं उसे 'बाघ' लिखकर देती हूँ। शब्द मुझे कभी दोहराना नहीं पड़ता है। अगली सुबह जब वह मुझे अपना कार्ड लौटाता है तो मैं उसे गंदा और फटा हुआ पाती हूँ। उसका पूरे आवेश से इस्तेमाल किया गया है।

"अंदर आ जाओ" बच्चे खटखटाहट सुनकर जोर से पुकारते हैं। पर कोई अंदर आता नहीं। हम सभी बाहर निकलते हैं। स्वाभाविक गरिमा से मंडित, गोदानों से गुर्दा, एक माओरी महिला को बाहर नंगे पैर खड़ी पाते हैं।

"मेरा नन्हा सेवेन है?" वह कहती है।

"सेवेन आपका बेटा है?"

"हमने पाला था। अब पांच साल का हो गया। उसके असली परिवार में पढ़ाई के लिए ले आई। नन्हा सेवेन है?"

बच्चे आतुरता से सेवेन को सामने धकिया देते हैं। और अब स्कूल के अहाते में, संवेदनशील भूरी और नीली आंखों के घेरे में, पुनर्मिलन होता है।

"कहाँ पाला था इसे आपने?" मैं बच्चों की खोपड़ियों के ऊपर से पूछती हूँ।

"उधर, उन पहाड़ियों में। बिलकुल अकेले।"

"अपनी पुरानी माई की याद है न तुमको?" वह सेवेन से चिरौरी करती है।

मैं देख रही हूँ।

बाद में सेवेन बोर्ड पर चॉक घिसकर उसे चूर-चूर कर रहा है। मुझे अब कुछ और समझ में आ रहा है। "सेवेन तुम्हें कौन चाहिए। तुम्हारी नई मां या तुम्हारी पुरानी मां?"

"पुरानी मां।"

"तुम्हारे भाई क्या करते हैं?"

"सब मारते हैं।"

और अब 'पुरानी मां' 'नई मां' 'मारना' और 'भाई' भी उसकी एक-दृष्टि शब्दावली में जुड़ जाते हैं। चाक के ध्वंस के पीछे एक आकार को रूप लेता पाती हूँ। काश मैं इसकी एक सुंदर कहानी बना पाती। जहाँ अंत में यह कह पाती कि सेवेन अब हिंसक बच्चा नहीं रहा ...।

“कौन रो रहा है ?” मैं एक मंजे हुए युद्ध-अश्व की तरह अपनी नाक उठा कर पूछती हूँ।

“सेवेन गे की गरदन मरोड़े दे रहा है।”

अपनी सहायिका से कहती हूँ कि वह सुंदर कहानी फिलहाल ताक में उठा कर धर देनी होगी। पर शब्द सीखे रहा है सेवेन, तेजी से।

डेनिस एक संभ्रांत, संपन्न, अच्छे कपड़े-गहनों से सजी मां का शिकार है। वह उसे पीटती भी है। पांच साल की उम्र में ही वह अपना पहला मानसिक विभंग (नर्वस ब्रेकडाउन) भोग चुका है। “मैं भी किसी चीज से नहीं डरता” वह जोर से कहता है।

“डेनिस क्या किसी चीज से डरता है ?” बड़ी सी गाड़ी में बैठी मैं उसकी सुंदर मां से पूछती हूँ।

“डेनिस ? वह तो एक चूजे तक को पास फटकने नहीं देता ।”

“क्या तुमने कोई सपना देखा ?” दोपहर आराम कर जब बच्चे उठते हैं तब मैं डेनिस से पूछती हूँ।

“हां।”

“तो ठीक है। ... चॉक और तख्ती कहां है ?”

उसके चले जाने पर मैं उसकी तख्ती पर एक भयानक भूग दैत्य बना पाती हूँ। बैंगनी आंखों वाला। वह दैत्य सड़क पर पड़े एक लाल मगरमच्छ के सामने खड़ा है। मैं डेनिस से हारी हूँ। उसके डर से संबंधित शब्द मैं अब तक ढूँढ नहीं पाई हूँ। असल में उसकी मां ने हराया है मुझे। सुबह जब बाकी बच्चे, रंगते, मिट्टी के खिलौने बनाते, नाचते, लड़ते, गाते, चित्र बनाते, बतियाते, लिखते या गढ़ते होते हैं, तब मैं डेनिस को फर्श पर बिखरी चीजें समेटते, चटाइयां ठीक करते पाती हूँ। उसके जीवन की कल्पना करती हूँ। एक और मनोरोगी जो अज्ञात भय से त्रस्त है—मेरी कल्पना मुझे आश्चर्य नहीं करती।

मारे अब तक लिखित शब्दों को पढ़ने का प्रतिवाद करता रहा है। एक सुबह सब बच्चे एक साथ अपने-अपने डर की बात कर रहे थे तब वह अचानक कहता है ‘मैंने बुलडॉग को गोली मारी !’ गे भी कुत्तों से डरती है। क्या हम जानते हैं कि छोटे बच्चे कुत्तों से कितना डरते हैं ?

पर साथ वाले कमरे में ही कुछ बेहद शैतान और गंदे बच्चे हैं, जो भय से अटके हुए नहीं हैं। उनकी मूल शब्दावली ‘डैडी’ ‘चुम्मी’ से शुरू हो ‘ट्रक’ ‘पहाड़’ ‘मां’, ‘प्यारी’ और ‘रेलगाड़ी’ तक पहुंचती है। कितने भय हैं मेरे ये गंदे और शैतान बच्चे।

अपने आप बाहर निकलते हैं ये शब्द और कुछ बेतरतीब समूहों में बंट जाते हैं। सभी लड़कों को वाहनों के शब्दों की जरूरत होती है—‘हवाई जहाज’ ‘ट्रेक्टर’ ‘जेट’। और लड़कियां घरेलू शब्द पसंद करती हैं ‘घर’ ‘मां’, ‘गुड़िया’। तब आते हैं भय से जुड़े

शब्द 'भूत', 'बाघ', 'कंकाल', 'मगरमच्छ', 'बुलडॉग', 'जंगली सूअर', 'पुलिस' ।

कुछ यौन शब्द भी हैं, 'चुम्मी', 'प्यार', 'स्पर्श', 'हाका', (माओरी युद्ध नृत्य) जिनके कभी बना ही नहीं सकते। एक तो इसलिए कि हम उन्हें वैसे देखते ही नहीं। दूसरे, इसलिए कि इन जीवंत बिंबों का बाहर से चित्रण संभावना की सीमा से परे है। हम तो केवल उनके शीर्षक भर दे सकते हैं।

ये शब्द अपने आप ही, धकिया कर बाहर निकलते हैं और जब इन शब्दों से जुड़े डर को बच्चा शब्दों में बांधता है तो वे और अधिक सशक्त बन उठते हैं। पर शब्दों के बिंबों और उनकी ताकत में ढेरों चारित्रिक अंतर होते हैं। यह बात उस स्थिति में और खरी उतरती है जब बच्चों के चरित्र उन सामान्य सांचों में न ढल गए हों जो आरोपित शब्दावली के कारण 'न्यूजीलैंड के सांचे' कहला सकें। असल में ये विषय पर योजनाबद्ध चित्र श्रृंखलाएं ही हैं। मैं यह जानती हूँ। इसलिए कि वे मुझे उनके बारे में बताते हैं।

बह-बहकर बाहर आते हैं ये शब्द। कैसा सुंदर होता है उनका बहाव। तब मैं बच्चों की रचनात्मक सारणी को तरंगित होता पाती हूँ—मानो धमनियों में खून बह रहा हो। और जब इसके बाद धीरे-धीरे सब कुछ स्थिर होता है, तब, प्रकृति की किसी भी दूसरी सहज व्यवस्था की तरह, एक सुसंगत आकृति बनती है। इस आकृति में भय वाले शब्दों का प्रभुत्व होता है। साथ होते हैं कुछ यौन-शब्द, कुछ व्यक्तिगत रुचि वाले शब्द और कुछ ऐसे भी शब्द जो शताब्दी के ही मिजाज की ओर इंगित करते हैं। पिता, मां, भूत, बम, चुम्मी, भाई, कसाई का छुरा, जेल, प्यार, नाच, रोना, लडना, टोपी, बुलडॉग, स्पर्श, जंगली सूअर ...। सच बताइए, अगर आप खुद बच्चा होते तो आपको कौन सी शब्दावली पसंद आती ? आपकी अपनी या वह जो न्यूजीलैंड की शिशुशालाओं में काम में ली जाती है। 'आओ जॉन आओ। देखो जॉन देखो। आओ और देखो। नावों को देखो' (कम जॉन कम। लुक जॉन लुक। कम एण्ड लुक। सी द बोट्स) अंग्रेज मध्यवर्ग की शब्दावली—नीरस, द्विआयामी और संभ्रांत ?

ये जो शीर्षक बाहर को झपट आते हैं वे अंदरूनी बिंबों और चित्रों के एक-शब्दीय वर्णन हैं। कला कहें उन्हें ? या फिर रचना ? या कि पढ़ना ? मैं तो बस इतना ही जानती हूँ कि ये समग्रता लिए हुए होते हैं। सहज होते हैं, स्वभाविक होते हैं। और वे एक ऐसी पठन शब्दावली बनाते हैं जिससे बच्चे के लिए पढ़ना सरल बन जाता है। यही वह अचूक चाबी है जो मस्तिष्क के द्वार खोल डालती है और जुबान पर लगे ताले भी तोड़ती है। यही वह कुंजी है जो पढ़ने के प्रति प्रेम जगाती है। यह तो सहज-स्वाभाविक नींव है जो आजीवन पढ़ी जाने वाली पुस्तकों का आधार है। यही वह कुंजी है जिसका

मैं हर रोज मिट्टी, रंग और चॉक के साथ अपने गाते-झगड़ते पांच साल के नन्हों के लिए इस्तेमाल करती हूँ।

यह वह कुंजी है जिसे घुमाने पर बच्चे की निजता, उसका असली चरित्र एक असें तक बचा रह पाता है। यही मूल शब्दावली है।

कुछ नियम

माओरी शिशुओं के लिए पठन-सामग्री बनाते समय इन बातों का ध्यान रखें—

उनकी मूल शब्दावली दो मूल-वृत्तियों के इर्द-गिर्द बनी होती है—भय और यौन। स्थान और प्रजापति के अनुरूप मूल शब्दावली में अंतर मिलते हैं।

पिछड़े हुए बच्चों की भी व्यक्तिगत शब्दावली होती है। उसे दूढ़ पाने पर पिछड़े बच्चे भी अचानक पढ़ने लग जाते हैं।

कोई एक शब्द कितना सशक्त है इसका अहसास किसी सामान्य बच्चे के बजाय एक पिछड़े हुए बच्चे के साथ बेहतर हो पाता है।

पांच साल के बच्चों को उनके मूल शब्द देते समय चित्रों का लोभ त्यागना चाहिए। शब्द की लंबाई का उसकी शक्ति से कोई संबंध नहीं होता।

किसी भी माओरी शिशुशाला में दो मानक होते हैं, एक माओरी और दूसरा यूरोपीय।

व्यक्तिगत आधारभूत शब्दावलियां

मैंने पहले कहा था कि वयस्कों द्वारा चुने वे चित्र जिनकी मदद से हम पठन-सामग्री बच्चों को प्रस्तुत करते हैं, उन्हें सार्थक और आनंददायक लगते हैं। पर असली ताकत और प्रकाश तो उन्हीं चित्रों में होता है जो उनकी अंतर्दृष्टि से उपजे हों और जिनके शीर्षक भी उन्हीं के दिए हों। पर कुछ बच्चे अपवाद होते हैं। वे मानसिक रूप से इतने उलझे होते हैं कि वे अपने आंतरिक चित्रों को शीर्षक नहीं दे पाते।

रांगी एक पिछड़ा माओरी बच्चा है। आठ माओरी संज्ञाओं को पहचान लेने के बाद वह 'आओ', 'देखो', 'और' पर हफ्तों अटका रहा। आखिरकार मुझे सूझा कि मैं उससे पूछूँ कि वह किससे डरता है। उसने बताया कि उसे पुलिस से डर लगता है। क्यों? पूछने पर उसका जवाब था कि पुलिस वाले दमकल पर बैठाकर उसे जेल ले जाएंगे। और तब कसाइयों वाले बड़े से छुरे से उसकी बोटी-बोटी काट डाली जाएगी और शरीर के बचेखुचे हिस्से को लटका दिया जाएगा। जब मैंने हेडमास्टर साब से पूछा तो पता चला कि रांगी का पिता एक छोटे होटल में जूआघर चलाता है ताकि वह परिवार भी पाल

ले और अपनी दारू का जुगाड़ भी बैठा ले। सो, पूरा का पूरा परिवार पुलिस से सहमा रहता है। संभव है कि पुलिस का डर बच्चों के मन में जानबूझ कर बैठाया गया हो जिससे वे कोई ऐसी-वैसी बातें न उगल दें।

जब मैंने रांगी को 'पुलिस', 'कसाई का छुरा', 'मारना', 'जेल', 'हाथ' और 'दमकल' दिए तो वे सभी बस 'एक निगाह में सीखने वाले' शब्द सिद्ध हुए। जबकि यही बच्चा 'आओ' 'देखो' पर चार महीनों से अटका हुआ था। मैंने रांगी को इन सभी शब्दों के कार्ड बना दिए। आखिरकार रांगी भी पढ़ने वाले बच्चों में आ गया।

पुकी का परिवार चतुर है। पर मां-बाप लड़ते हैं। अकसर रात को हाथापाई तक होती है। सोते बच्चे चौंक कर जाग जाते हैं, सहम कर रोने लगते हैं (उनकी बहस में मैं खुद भी सुन चुकी हूँ)। छह महीनों में केवल दो शब्द सीखने के बाद वह अचानक, कुछ शब्दों की मदद से पढ़ने लगा ? डैडी, मां, पुकी, लड़ाई, चीख, मारना, डर, झाड़ू।

शायद अब बच्चों की व्यक्तिगत मूल शब्दावलियों और 'जेनेट एंड जॉन' वाली पुस्तक के प्रारंभिक शब्दों के बीच भावनात्मक अंतर पर गौर कराना उचित होगा : जैनेट जॉन, आओ देखो, नावों को देखो, छोटा कुत्ता, दौड़ना, यहां, नीचे, ऊपर ...।

कई बार कुछ ऐसी विशेष स्थितियों का हमें सामना करना पड़ता है जो बच्चे के स्कूली जीवन पर असर डालती हैं। हम उन्हें जिस तरह निपटाते हैं, उस पर बच्चे के स्कूली जीवन की शुरूआत निर्भर करती है। यानी मूल शब्दावली की जितनी भी चर्चा हो, वह कम ही रहेगी क्योंकि आखिर यही तो वह कुंजी है जिससे वह अपने अंतस को खोल पाता है, जहां पढ़ने के कौशल का रहस्य छुपा रहता है। वह इसकी अनुभूति कर पाता है कि शब्दों के गहरे अर्थ होते हैं। अगर शब्दों का भावनात्मक महत्व न हो, कोई सहज अर्थ न हों, तो वे निरर्थक और आरोपित शब्द ही रह जाएंगे। उन्हें न सिखाना ही बेहतर होगा क्योंकि वे हानि पहुंचा सकते हैं। वे बच्चों को यह सिखा सकते हैं कि शब्द निरर्थक होते हैं और पढ़ना अवांछनीय।

अगर कुछ सामान्य बच्चे कुछ शब्दों को जीत लेते हैं, सीख लेते हैं, तो इससे उन शब्दों का औचित्य तो सिद्ध नहीं हो जाता। यह मानना ही तो भ्रम है। शब्द की सही कीमत, उसका सही वजन केवल किसी पिछड़े बच्चे से ही नापा जा सकता है। माओरी बच्चों में ढ़ेरो ऐसे हैं जो पढ़ने में पिछड़े हुए होते हैं। और उनके लिए 'आओ', 'देखो', 'और' जैसे शब्दों का उपयोग मुझे नए-नए प्रयोग करने को उकसाता है।

माओरी शिशुशाला में भय और यौन से जुड़ी आम शब्दावली के अलावा भी जो शब्द मूल शब्दावली में आते हैं, वे हर जीवंत वस्तु की तरह बराबर बदलते रहते हैं। इस सप्ताह जो नए बच्चे आए हैं, उनके ही शब्दों को एक नजर देखें। ये सभी बच्चे माओरी हैं।

मोही : भूत, जेट, जीप, कंकाल, साइकिल, हवाईजहाज, सॉसेज, दलिया, अंडा,

गाड़ी, बीयर, जर्सी, चुम्मी।

जोजो : रॉकेट का राजा, आदमी, इंडियन, फैंटम, सुपरमैन।

गिल्बर्ट : मेंढक, अखरोट, ट्रक, रॉकेट का राजा, आदमी, जेट, जीप, ट्रेक्टर, बम, घोड़ा।

मोरीन : मम्मी डैडी, टेप (कुत्ते का नाम), मेमना, चुम्मी।

पैनी : डैडी, मम्मी, घर, हवाईजहाज, कार।

रांगी : मूंगफली, केक, भूत, बिस्तर, चुम्मी, मौजे।

फिलिप : ट्रेन, मुक्केबाजी, ट्रक, मटर, बंदूक।

फिलिस : भालू, मिठाई, बस, प्रियतम, चुम्मी, भूत।

जब भी मैं इन बच्चों को उनके अपने शब्द कार्ड पर लिखकर देती हूँ वे आनंद और उत्तेजना से भर उठते हैं।

पिछले दो सालों में जितने भी माओरी बच्चे आए हैं, एक निगाह में जिन को बच्चे समझते हैं, उन शब्दों को हम कुछ यों बांट सकते हैं :

डर (सबसे सशक्त शब्द) : मम्मी, डैडी, भूत, डर, कंकाल, जंगली-सूअर, पुलिस, मकड़ी, कुत्ता, जेल, सांड, मारना, कसाई का छुरा, चीखना, घूंसा, कल्ल, लड़ना, बिजली, मगरमच्छर, रोना।

यौन : चुम्मी, प्यार, हाका, नाचना, प्रियतम, साथ-साथ, मैं और तुम, गाना।

वाहन : जेट, जीप, हवाईजहाज, ट्रेन, कार, ट्रक, ट्रेलर, बस।

अन्य : घर, स्कूल, मौजे, मेंढक, अखरोट, दलिया, चित्र, बीयर।

पिछले दो वर्षों के अनुभव ने बताया है कि हमारी शिशुमाला में हर स्थिति में सबसे सशक्त दो ही शब्द हैं : भूत और चुम्मी। दोनों अपनी-अपी तरह से दो प्रमुख मनोवृत्तियों के प्रतीक हैं। हर बच्चा, चाहे वह भूरा हो या गोरा, पहली ही बार इन्हें एक नजर देखने के बाद कभी भूलता नहीं।

पर तब भी क्या मैं इन दो शब्दों को अपनी पहली पाठमाला में शामिल करती हूँ ? ना, साहस की तो सीमा नहीं होती है पर धारा के विपरीत तैरने की शक्ति जरूर सीमित है। एक बार फिर से जैनेट और जॉन की प्रारंभिक शब्दावली को देखें :

जैनेट जॉन आओ, देखे नावें, कुत्ता भागा, यहां, नीचे-ऊपर, हवाईजहाज, मेरा, एक बिल्ली का बच्चा, एक दो तीन, खेलो कूदो जाओ, घोड़ा सवारी ...

इन शब्दों में और बच्चों की मूल शब्दावली में क्या कोई भावनात्मक अंतर है ? जो कुछ रचनात्मक सारणी से हो, स्वतः बाहर आता है और जो बाहर से लादा जाता है उसमें तो जमीन-आसमान का अंतर होता है ना। वही अंतर होता है सहज और

असहज शब्दावली में भी।

आधारभूत शब्दावली सिखाने के तरीके

मैं मूल शब्दावली सुबह के पहले ही घंटे में लेती हूँ। उसी समय तो बच्चों की ऊर्जा अपने चरम पर होती है न। और फिर यह गतिविधि भी तो रचनात्मक है। मैं मानती हूँ कि रचनात्मक गतिविधियाँ ही सबसे महत्वपूर्ण होती हैं। इसीलिए मैं सभी रचनात्मक माध्यमों को सुबह साढ़े नौ बजे से दस बजे के बीच ही लेती हूँ।

बच्चे कुछ दूसरा शुरू करें उसके पहले ही। जैसे ही वे अंदर आते हैं तुरंत ही शुरू करती हूँ। क्योंकि बाद में जब वे मिट्टी या दूसरे माध्यमों से खेलने-रचने लगे तो मुझे भी उन्हें बीच में रोकना-टोकना सुहाता नहीं। और फिर यह भी तो चाहती हूँ कि मैं उनकी ताजगी पकड़ सकूँ।

तैयारी कुछ विशेष नहीं करनी पड़ती है। केवल सस्ते ड्राइंग कागज के एक फीट लंबे और पांच इंच चौड़े कुछ कार्ड की जरूरत होती है, एक काली क्रेयान चॉक और कार्ड के आकार से कुछ बड़ा एक गत्ते का टुकड़ा। हाँ, साथ ही चटाई पर बिखरे उनके पुराने कार्ड।

तब मैं किसी भी एक को आवाज लगाती हूँ। पूछती हूँ उसे कौन-सा शब्द पसंद आएगा। पास आई बच्ची कुछ भी चाह सकती है। मान लीजिए वह कहती है 'मोजे'। तब मैं वही शब्द कार्ड पर लिखती हूँ और अपने लिए कार्ड के एक कोने पर बच्ची का नाम। बच्ची पहले तो मुझे वह शब्द लिखते देखती है। वह शब्द दोहराती भी है। मैं उसे कार्ड साथ ले जाने को कहती हूँ। चटाई पर बैठकर वह अक्षरों पर ऊंगली फिराती है, और बाद में पास में रखे लिफाफे में उसे डाल देती है। मैं बारी-बारी से हरेक को बुलाती हूँ ताकि हरेक एक नया शब्द सीखे।

उनके खुद के चुने शब्द एक डब्बे में इकट्ठे होते रहते हैं। सुबह प्रार्थना के बाद जब वे कमरे में घुसते हैं उसके पहले ही मैं डब्बे के सारे कार्ड चटाई के बीचों-बीच उलट देती हूँ। वे दौड़ते हुए आते हैं और उस ढेरी में से अपने-अपने शब्द चुनने लगते हैं। लड़ें-झगड़ें बिना, एकाग्रता के बिना या संतोष के अनुभव के बिना यह सब संभव नहीं हो पाता। अपने-अपने शब्दों को छांट लेने के बाद वे अपना एक साथी भी चुन लेते हैं। तब वे एक दूसरे को अपने-अपने शब्द सुनाते हैं, अपने साथी के शब्द सुनते हैं। समय लगता है इस सब में, शोरगुल भी होता है, चलना-फिरना भी होता है। पर साथ ही बच्चों के आपसी संबंध बनते हैं, पढ़ना भी होता है और होता है परस्पर संप्रेषण। और यही वह सबसे जरूरी प्रक्रिया है जिसे हम सभी स्कूलों की कक्षाओं में बाकायदा तोड़ते या काटते रहते हैं।

और जब वे यों बैठे एक दूसरे को पढ़ा-सिखा रहे होते हैं-इतनी अच्छी तरह,

जितनी अच्छी तरह शायद मैं कभी भी सिखा न पाऊं—तब मैं उन्हें एक-एक कर उस दिन के नए शब्द के लिए बुलाती हूँ।

हो सकता है कि 'मोजे' कहने वाली बच्ची अपने पुराने कार्ड भी साल ले आए, और मुझे पढ़कर सुनाने के बाद उन्हें मेरे पास रखे डब्बे में डाल दे। जिन शब्दों को वह याद न रख पाई हो उन्हें मैं फाड़ देती हूँ—क्योंकि वे असफल शब्द हैं। वे एक नजर में पकड़ आनेवाले शब्द नहीं बन पाए हैं। यानी वे उस बच्चे के लिए सच में जरूरी के शब्द नहीं होंगे। और मुझे तो ऐसे ही शब्दों की खोज है न, जो उसके लिए निहायत जरूरी हों। आखिर बच्चा महत्वपूर्ण शब्दों के माध्यम से यह भी सीखता है कि पढ़े हुए शब्द गहरे अर्थ रखते हैं। सो उसके लिए तो वे ही शब्द ढूँढ निकालने हैं न जो उसके अंतस की गहराइयों से निकले हों, जिन्हें उसे याद रखने के लिए केवल एक बार देखना पड़े।

मैं बच्ची से पूछती हूँ कि "आज तुम्हें कौन सा शब्द चाहिए?" किसी-किसी दिन उसके अंदर से शब्द उफन कर फूट निकलता है—'टोस्ट!' पर फिर किसी दूसरे दिन वह सोच में पड़ जाती है, इधर-उधर झाँकती है, पैरों की उंगलियाँ मरोड़ती है। तब कोई शब्द कहती है। ऐसे शब्दों पर मैं शंका करती हूँ। इधर-उधर ताकने-झाँकने के बाद अगर बच्ची कहे 'खिड़कियाँ' तो उसकी कितनी महत्ता होगी? और अकसर मैं बाद में जांच करने पर पाती हूँ कि वह बच्ची अपना शब्द पहचान नहीं सकती। तब मैं उससे देर तक बतियाती हूँ। तब तक, जब तक मुझे यह न पता चले कि वह मॉड के साथ सोती है, या कि उसके पिता भेड़ों का ऊन उतारने के लिए बाड़े में गए हैं। तब मैं उसे सुझाती हूँ कि क्या वह मॉड या बाड़ा नहीं पढ़ना चाहेगी? पर ऐसी घटनाएँ अकसर नहीं हुआ करती। यानी सामान्यतः मैं उन्हें उनका चाहा हुआ शब्द ही लिख देती हूँ। शब्द लिखने के बाद कार्ड बच्चे को थमा देती हूँ। चटाई पर बैठे बच्चा उसके अक्षरों पर ऊंगलियाँ फिराता है और तब उसे लिफाफे में डाल देता है।

कई बार शब्दों के चयन में भूल होती है मुझसे। नए आए बच्चों के चरित्र का अनुमान लगाने में समय लगता है। और फिर पांच साल के नन्हों के चरित्र में भी तो उतना ही वैविध्य होता है जितना प्रकृति में मिलता है। और भी कई बातें हैं जो सही शब्द के चुनाव में आड़े आ सकती हैं—नकल करने की प्रवृत्ति, बच्चे की मनोदशा, उसका दमन, और भय—जो उसे अपंग बना देता हो। ये सभी शब्द के सहज वस्फोट को रोकते हैं, अवरुद्ध करते हैं। पर शिक्षक जल्दी-जल्दी ही असली शब्दों को पहचानने लगता है। कुछ ही समय में उसे यह पता चलने लगता है कि कौन सा शब्द बच्चे के मानसिक चित्र का शीर्षक है।

हो सकता है कि आपको लगे कि यह सब करना कठिन है। पर सच पूछें तो बच्चों को पढ़ाने-सिखाने का मुझे यही तरीका सबसे आसान लगा है। इस तरीके में उन्हें कभी भी हांकना नहीं पड़ता। बल्कि मैं तो कुछ पढ़ाती तक नहीं हूँ। ब्लैक बोर्ड तक पर कुछ लिखने की जरूरत नहीं पड़ती। किसी दीवार पोथी (चार्ट) की सहायता नहीं लेनी पड़ती। बच्चों को ध्यान देने वाले एकाग्रचित समूह के रूप में व्यवस्थित तक नहीं करना पड़ता। वे तो आपस में ही पढ़ते-पढ़ाते हैं। ऐसे शिक्षकों से पढ़ते हैं वे, जिनसे उनके सहज-स्वाभाविक संबंध हैं। मैं तो केवल इतना भर देखती हूँ कि कार्ड और काली क्रेयोन चॉक है या नहीं। अपनी नजर केवल इस खेल पर रखती हूँ कि मेरा निशाना कहीं चूका तो नहीं। बच्चों के चरित्र का यों धीरे-धीरे शिक्षक के सामने खुलना, स्पष्ट होते जाना, भला किसी को क्या कभी उबाऊ लग सकता है?

सुबह मध्यांतर के बाद जिसे मैं निवेश (इनपुट) का घंटा कहती हूँ, उस घंटे में, सुबह के नए शब्द लिफाफे में से निकलते हैं। तब मैं यह जांचना चाहती हूँ कि कौन से शब्द याद कर लिए गए हैं। प्रायः सभी बच्चों को उनके अपने शब्द याद रहते हैं। पर जो याद नहीं हुए होते उन्हें मैं हटा देती हूँ। उनकी जगह उसी बच्चे के पहले के याद किए हुए शब्द डाल देती हूँ। ताकि बच्चे लिखने की कोशिश करें तो उनके पास केवल वे शब्द हों जिनके आंतरिक चित्र उसके मानस में हों। वे ही जिनकी व्युत्पत्ति सहज-स्वभाविक हो।

कुछ टिप्पणियां

इससे पहले कि बच्चा पहले से दूसरे चरण के समूह में जा सके, उसे कम से कम चालीस शब्द सीख लेने पड़ते हैं। दूसरे समूह में जाने का समय अब आ गया है, यह तय करते समय मैं उसके सीखे शब्दों की संख्या से कहीं अधिक इस बात पर नजर रखती हूँ कि शब्द सीखने की उसकी गति क्या रही है।

अगर बच्चा अपने शब्द को चुनते समय दूसरे बच्चे की नकल करता है तो वह उस शब्द को दूसरी बार कभी पहचान नहीं पाता।

नया बच्चा कितना भी शर्मीला या चुप-चुप क्यों न हो, वह हर सप्ताह एक न एक नया शब्द तो सीखता ही है। कुछ ही समय में वह यह भी समझने लगता है कि अक्षरों के आकार अलग-अलग होते हैं। और यह भी कि इन आकारों के भी कुछ अलग-अलग अर्थ होते हैं।

जिसे मैं परस्पर पढ़ाना कहती हूँ, वह असल में कुछ यों होता है : एक बच्चा एक

कार्ड उठाता है। मान लीजिए कि उस पर लिखा है—मोजे। तब वह अपने साथी से पूछता है, 'यह कौन सा शब्द है?' अगर दूसरा बच्चा शब्द नहीं जानता है तो उसका साथी उसे शब्द बताता है।

सहज लेखन

‘जीवन तो अपने आप में एक बेहद जटिल और उलझी हुई चीज है। उसके बारे में बच्चों को कुछ भी सिखा पाना टेढ़ी खीर ही है। जिस क्षण हम उसे छोटे टुकड़ों में काट डालते हैं तो संभव है कि बच्चे कुछ-कुछ समझने लगें। पर काटते समय यह संभावना भी रहती है कि हम उसे पूरी तरह मार डालें।

—सी. ई. बीबे

आधारभूत शब्दावली के बाद मेरे बच्चे, सुबह के ही घंटे में अभिव्यक्ति के दूसरे माध्यमों पर आते हैं।

रचनात्मक लेखन मूल शब्दावली के बाद के चरण के रूप में स्वतः आता है। जिस तरह मूल शब्दावली बच्चे के मानस चित्रों के एक शब्द वाले बिंब हैं ठीक उस ही तरह रचनात्मक लेखन उन्हीं मानस चित्रों के एक वाक्य वाले या एक कथा शीर्षक होते हैं। यानी इस चरण में बच्चे विषयात्मक-लेखन से बढ़कर वर्णनात्मक लेखन की ओर जाते हैं।

मेरे पांच साल के नन्हों के रचनात्मक लेखन का प्रयास उनके अपने ही मूल शब्दों को लिखने के साथ शुरू होता है। और चूंकि इस समय तक वे यह तो बखूबी समझ चुके होते हैं कि अक्षरों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के कुछ अर्थ भी होते हैं, इसलिए वे जो कुछ भी लिखते हैं, उसके बारे में वे मुझसे कहीं अधिक जानते-समझते हैं।

और तब वे उस समूह के साथ जा जुड़ते हैं जहां हर सुबह रचनात्मक लेखन का काम होता है। अगर इन बच्चों को कुछ दिनों तक देखा जाए तो यह बात समझ में आ सकती है कि आखिर लेखन शैली कहां जन्मती है। इन पांच साल के बच्चों की सुस्पष्ट लेखन-शैलियां होती हैं। वे एक ही तरह के वाक्य भिन्न-भिन्न विषयों पर इतनी बार लिखते और दोहराते हैं कि उन्हें अपने आप ही बारबार आने वाले शब्द याद होने लगते हैं। और साथ ही उनकी शैली भी पुष्ट होने लगती है। और सच, इसके लिए मुझे कुछ भी सिखाने की जरूरत नहीं होती। यानी वर्तनी, शब्द ज्ञान, शब्दों का चयन और लेखन का पूरा का पूरा सवाल रचनात्मक सारिणी की ओर स्वतः ही मुड़ जाता है।

उनकी अपनी चुनी शब्दावली शिशुकला में उनके आगे बढ़ते जाने के दौरान बराबर उनके साथ रहती है। इसलिए कि अब्बल तो ये शब्द लिखित आकारों में उतरने के कहीं पहले से ही उनके मन-मस्तिष्क का अंग तो होते ही हैं; और दूसरे इसलिए भी कि उन शब्दों को बड़े ही स्वाभाविक रूप से कई बार दोहराया जा चुका होता है। अब उन्हीं शब्दों में से चुनिंदा छटे हुए शब्द उसकी व्यक्तिगत शब्दावली में जुड़ते चले जाते हैं। ये छटे हुए शब्द बच्चे की कॉपी की अंतिम पृष्ठ पर लिख दिए जाते हैं ताकि कभी भी जरूरत पड़ने पर उन्हें देखा जा सके। सूची को बदला जा सके। और इस लेखन प्रक्रिया के बाद वे वर्तनी के जिस स्तर तक पहुंचते हैं वे उनके लिए सच में काफी होता है।

इस लेखन प्रक्रिया के दौरान एक और बात घटती है। वह यह कि पूरे समूह की एक सामान्य शब्दावली भी उभरने लगती है। यह वह शब्दावली होती है जिससे समूह का हरेक बच्चा देर-सबेर, कमोबेश परिचित हो ही जाता है। 'तब, और, रखना, जाना, ग्वाला (काउबॉय), ट्रक में, अंदर, बाहर, चित्र, मीठी गालियां, को, पर, जगह, मेरा, पिता, क्योंकि।'

कुछ समय बाद बच्चों की लेखन क्षमता इस सीमा तक विकसित हो जाती है कि वे दो पूरे वाक्य अपने या अपनी आसपास की जिंदगी के बारे में लिखने लगते हैं। इसके बाद तीन। छह साल की उम्र में करीब आधा पन्ना। और सात साल तक आते-आते वे एक पूरा पन्ना, या उसे भी कुछ अधिक, अपने-आप लिखने लगते हैं। मैं तो इस सबको सिखाना या शिक्षा तक नहीं कहती। इसे मैं रचना कहती हूं। क्योंकि आखिर यह पूरा प्रयास उनका अपना होता है। इसमें मेरा तो कुछ भी नहीं होता। और फिर इस चरण में वर्तनी और लेखन भी तो अलग-अलग सिखाए जाने वाले विषय नहीं रह जाते। वे तो एकमेक होकर अभिव्यक्ति का ही एक दूसरा माध्यम बन चुकते होते हैं।

ऐसे लेखन की नाटकीयता का वर्णन भला किसी खरीदी किताब में कहां मिलेगा हमें? चाहे किताब कितनी भी एहतियात और ईमानदारी से क्यों न तैयार की गई हो उसमें ऐसी जीवंत नाटकीयता को कहां बांधा जा सकता है भला ? आखिर कोई एक किताब शिशुमाला में हर सुबह सामूहिक रूप से उभर कर आने वाले विषयों के वैविध्य को भला कैसे पकड़ सकती है ? और फिर यह भी सोचिए कि जो कुछ वे पढ़ते हैं, वह सब उस भाषा में लिखा होता है जिसका वे स्वयं उपयोग करते हैं उनकी रची-लिखी ये किताबें, मेरी दृष्टि से गुजरे किसी भी पन्ने की तुलना में, कहीं अधिक नाटकीय, कारुणिक और रंगीन होती हैं।

पर यह सब बातें नितान्त गोपनीय होती हैं। शिक्षक को विश्वास में लेकर कही गई बातें होती हैं। हम उनकी विषयवस्तु की आलोचना नहीं कर सकते। चाहे हम यही क्यों

न लिखा देखें कि बच्चे को स्कूल से घृणा है, या यह कि मेरा घर जला दिया जाने वाला है, या कि कल रात 'पा' (माओरी गांव) में झगड़ा हुआ था। आलोचना हम इसलिए भी नहीं कर सकते कि हर लेखन में एक ही मुद्दा होता है : सवाल यहां यह नहीं है कि क्या कहा-लिखा जा रहा है, बल्कि यह है कि कहने-लिखने की स्वतंत्रता है या नहीं ?

मैंने कभी यह चेष्टा नहीं की कि पहले बच्चों को कुछ सिखाऊँ तब उनसे वही बात लिखवाऊँ। यह तो कला पर आरोपण होगा न। बच्चे का लेखन तो निहायत निजी बात होती है। यह तो एक करने (इन्टीग्रेशन) का ही अभ्यास है जिससे वह बेहतर सीखे, बेहतर काम कर सके। वह अपने लेखन का जितना सार्थक पाएगा उतना ही कीमती उसका लेखन उसके लिए बन सकेगा। सच तो यह है कि उसके लिए उसका लेखन ही सब कुछ है। क्योंकि आखिर उसका लेखन तो उसका ही अंग है। कोई भी व्यवस्थित विषय कभी इस अर्थ में बच्चे का अंग नहीं बन सकता क्योंकि यह कुछ निश्चित शब्दों के इर्द-गिर्द बने वाक्यों का कोई ऐसा पन्ना नहीं है जो कुछ कटे हुए तथ्यों को परोसता हो, जैसा कि अकसर हम बच्चों की किताबों में पाते हैं। यह तो उनके विचारों की वही अटूट कड़ी है जिसे हम वयस्क भी अपने लेखन या संवाद में बेहद सावधानी से सहजते हैं।

क्योंकि ऐसा रचनात्मक लेखन अभिव्यक्ति के दूसरे माध्यमों की तुलना में कहीं अधिक थकाने वाला होता है। मैं इसे सुबह ही सबसे पहले के उनके कार्य (आउटपुट) के घंटे में रखती हूँ। कई बार हम लिखने के बीच ही नाचते भी हैं। आखिर नृत्य भी तो शरीर की भाषा है, अंगों से बात करना है। यह तो मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि लिखने के बीच उठकर नाचना मेरे कई बच्चों को बेहद पसंद है। संभव है उन्हें लेखन में भी इससे मदद मिलती हो। पर इस बारे में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं जानती। रचनात्मक लेखन का पूरा अभ्यास, दिमाग की गहराइयों में उतर कर अपनी किसी बात को कहने का प्रयास, सहज विचार को पालता-पोसता है। अंत अंतःदृष्टि को निखारता है। बच्चों को उनके निजी संसाधनों पर आश्रित होने देना ही तो वह उपाय है जो उनके चरित्र को, उनकी निजता की पहचान को, कुछ अधिक समय तक बनाए रखने में सहायक होता है।

सहज लेखन की तरकीब

सुबह दस बजे का समय पीठ-दर्द का समय है। क्योंकि तब तक पूरा आधा घंटा बच्चों को छोटी-छोटी मेजों पर झुक कर उनके लेखन को देखते-झांकते बीत चुका होता है। पर दूसरा कोई विकल्प है ही नहीं। इस दौरान न केवल उनकी कॉपियों के

पीछे उनके चाहे नए शब्द लिखने हैं बल्कि भविष्य में चलकर उनको पढ़ने की बात को ध्यान में रखकर अक्षरों की सफाई और उनके बीच की दूरी का भी खयाल रखना है ताकि बाद में वे स्पष्ट पढ़े जा सकें। साथ ही व्याकरण पर ध्यान देना है। और सबसे जरूरी बात तो यह है कि उनके विचारों में संबद्धता को बचाना है, उसे पुष्ट करना है। और उनकी सारी गलतियां तब ही सुधारनी हैं जब वे लिख रहे हों। उसके बाद नहीं।

अपने मेज पर बैठे रह कर बच्चों की कतार अपने सामने बनने देने का कोई फायदा नहीं। आपको खुद को ही हिलना होगा। हरेक बच्चे के लिए उपलब्ध होना होगा। ऐसी दृष्टि विकसित करनी होगी आपको, जो हर समय, एक ही साथ, सब कुछ देख सके। मुझे तो लगता है कि रचनात्मक लेखन का घंटा कला के घंटे से भी कहीं अधिक शिक्षक को निचोड़ता है। कला के घंटे में बच्चों को चीजें बांटने से हुआ पीठ दर्द इस घंटे में झुकने से हुए पीठ दर्द के बराबर होता है।

रचनात्मक लेखन के लिए एक समूह में एक शिक्षक ज्यादा से ज्यादा बारह बच्चों को ही ले सकता है। असल में तो सही संख्या है करीब आठ की। जब दूसरे समूह के बच्चे विकास के घंटे (डेवेलपमेंट पीरियड) में स्वयं अपना काम कर रहे होते हैं तब मैं रचनात्मक लेखन समूह को लेती हूँ। शोरगुल से कोई बाधा नहीं पड़ती। आखिर लिखने वाले बच्चे भी उतना ही शोर करते हैं जितना दूसरे। मैं इसे रोकती नहीं। किसी भी सहज क्रियाकलाप में दमन की, ऊपरी शासन की, जगह ही कहां है ?

जब मेरे पास सहायिका थी तब हम दोनों काम बांट लेते थे। पर जब मदद को कोई दूसरा नहीं होता तो मैं दो बड़े बच्चों की मदद से सप्ताह भर के पाठ एक ही बार में लिखवाती थी। हां, व्याकरण और शब्दों के बीच की दूरी, वाक्यों की संबद्धता पर मुझे ही नजर रखनी पड़ती थी। हो सकता है कि आप में से कुछ पाठकों को अब तक यह पता ही न लगा हो कि शिशुओं में भी वैचारिक संबद्धता होती है।

पर इस तरह का काम करने पर कुछ ही समय में इस बात की पुष्टि हो जाती है। सहज लेखन के समय एक बड़ी कठिनाई अकसर आती है। वह यह कि बच्चा लिखते समय अपने साथी को अपने पूरे विचार बता देता है। और तब वह सब कुछ साफ-साफ लिखने की जरूरत को नजरअंदाज कर ऐसा कुछ कुछ लिख डालता है '... और तब मैं घर गया' जिससे पूरा विषय ही बंद हो जाता है। मैं ऐसे वाक्य उन्हें नहीं लिखने देती। कारण उन्हें नहीं बताती। जब वे लिखें 'मैं गांव गया' तो उसकी अगली कड़ी में यही लिखने को कहती हूँ कि वहां क्या हुआ या घटा। इस कठिनाई पर अगर दो-एक बार काबू पाया जाए तो संबद्धता अपने आप आ जाती है। पर यह समस्या कोई समस्या नहीं है।

मैं पहले सोचा करती थी कि यह बेहद जरूरी है कि बच्चे एक ही बैठक में अपना

लेखन पूरा कर लें। पर बाद में मैंने पाया कि लिखना अगर बीच में छूट भी गया तो कोई हानि नहीं होती। अगले दिन बच्चे जहां तक लिख चुके होते हैं उसके आगे आसानी से बढ़ जाते हैं। वे एक बार अपना पिछला लेखन पढ़ते हैं और तब आगे बढ़ जाते हैं। हां, यह जरूर संभव है कि इसके कारण उनके लेखन के लिए तय किया आध 1 घंटा और आगे खिंच जाए। एक दूसरी बात भी बच्चों की गति को प्रभावित करती है। वह यह कि आप स्वयं कितनी अच्छी तरह सब कुछ देख पा रहे हैं। और सबका काम अच्छी तरह देख पाना भी तो इस बात पर निर्भर होता कि रचनात्मक लेखन वाले समूह में कितने बच्चे हैं।

मेरे बच्चे लेखन की शुरुआत किसी औपचारिक विधि से नहीं करते। मूल शब्दावली के शब्दों से शुरू कर वे कुछ ही समय में दो या तीन शब्दों के वाक्यों के सहारे स्वतः ही लिखने लग जाते हैं। मैं फिर भी कभी-कभार उनसे यह पूछती हूँ कि 'तुम क्या कहना चाहते हो ?' पर मैं पाती हूँ कि इस सवाल को उठाने की जरूरत भी धीरे-धीरे कम होती चली जाती है। फिर भी अगर कोई बच्चा अटक ही जाए तो वही उपाय करना पड़ता है। जो शुरू से ही आप करते चले आए हैं यानी बच्चों से बातचीत और तब कुछ ही समय में बात उसकी मानसिक बाधाओं को लांघ कर बाहर निकल आती है।

इस पूरी चेष्टा के बाद भी कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब बच्चा शुरुआत ही नहीं कर पाता। कई बार उसका मानस ही नहीं बनता। हर बात उस समय कह डालना आखिर संभव भी तो नहीं होता जब उसे लिखने का समय आ जाए। हो सकता है किसी दिन बच्चा साफ-साफ यह ऐलान कर दे 'मैं लिखना नहीं चाहता'। तब कोशिश यह होनी चाहिए कि वह इतना ही लिखे कि 'मैं लिखना नहीं चाहता।' तब उससे यह पूछा जाए कि वह क्यों लिखना नहीं चाहता ? सवाल के जवाब में उसकी शिकायत या आपत्ति का कोई न कोई हवाला तो मिलता ही है। इससे भी, किसी दूसरे विचार की तरह, वह बात निकलवाई जा सकती है जो उस समय उसके दिमाग में खुदबुदा रही हो। इससे वह लेखन का अभ्यास तो करता ही है साथ ही वह उसमें भी लिपटा रहता है जो उसे उस क्षण दिलचस्प लग रहा हो।

आप कभी यह टिप्पणी नहीं करें कि लिखी गई बात अच्छी है या बुरी। क्योंकि लेखन से उसका कोई ताल्लुक ही नहीं है। और फिर दूसरे के दिमाग में क्या है, उसकी आलोचना का हमें अधिकार ही क्या है ? बच्चा अपना दिमाग स्वयं तो नहीं बनता। उसके पास तो वह बस होता ही है। हमारा काम तो महज यह देखना भर है कि उसके दिमाग में है क्या। जिस तरह की टिप्पणी की इस प्रक्रिया में अनुमति हो सकती है, उसका संबंध तो बच्चे के लेखन में सहज रुचि लेने भर से हो सकता है। जैसा किसी

संवाद में होता है। मैं उनकी कापियों में कोई निशान भी नहीं लगाती। गलतियां सुधारने के लिए कुछ शब्द मिटाने के अलावा कुछ काटती भी नहीं। कभी कोई ठप्पा नहीं लगाती। न ही खराब लेखनी की शिकायत करती हूँ। क्या हम किसी मित्र के आवेश भरे पत्र को पढ़कर उसकी लेखनी की शिकायत करते हैं भला ? उस समय हमारा ध्यान तो केवल उसी पर होता है न, जो लिखा गया हो।

उनके लेखन के बारे में मैं क्या सोचती हूँ, इसका संबंध उनके लेखन से तो है नहीं। सवाल तो यह है कि हम उनसे वह लिखवाएं जो उनके दिमाग में है। अगर बच्चे ऐसा नहीं कर पाते तो इससे शिक्षक की ही कमजोरी सिद्ध होती है। शिक्षक की ओर से देखें तो सारी बात इसमें सिमट आती है कि वह बातचीत करने में कितना माहिर है। दूसरों की बात सुनने का कौशल और विवेक उसमें कितना है। बच्चे के दिमाग में चल रहे विचारों की कड़ी वह संबद्ध रूप से बाहर निकलवा सकता है या नहीं। इन सभी बातों का संबंध असल में शिक्षक की ही प्रकृति या स्वभाव से है। मैंने पाया कि मेरे जो सहायक नम्र थे और अपने अहम् को भूला सकते थे वे ही सबसे अच्छे सिद्ध हुए। और खराब सहायिकाओं में एक वह लड़की थी जो अथक बातूनी थी। वह अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अपने बारे में हरेक को बता-बता कर थका डालती थी। उस साल का रिकार्ड बताता है कि रचनात्मक लेखन का स्तर उस सहायिका के रहते सबसे नीचा रहा।

दस बजे का समय पीठ दर्द का समय है। पर क्या कभी भी कोई फलदायी चेष्टा व्यक्ति को बिना झुकाए पूरी हुई है ? जिस श्रम के लिए हम उत्साहित हों, ललायित हों, उसमें दर्द की दवा भी तो स्वतः ही छुपी रहती है।

सहज पठन

बच्चे का ऊपर उठना, उसका आगे बढ़ना तो उसके विकास के निहायत निजी नियमों के द्वारा ही संचालित होता है।

—डा. बरो

शिशुओं के लिए तैयार की गई किसी भी पठन सामग्री को देखकर यह कहना कि वह—निश्चित रूप से मरी और बेजान शब्दावली है—अपने आप में बड़े दुख की बात ही होगी। पर यह मुझे बार-बार कहना पड़ा है। जीवन की पहली विशेषता तो है बदलाव। पर क्या कभी इन पाठ्यपुस्तकों की शब्दावली बदली भी है ? मौसम क्या गर्म हो या सर्द, लोग भूरे हों या गोरे, बच्चे दुखी हों या प्रफुल्ल, वही एक सी नीरस और शांत शब्दावली सामने आती है जिसका उस समूह से, वर्तमान वातावरण और मिजाज से कोई सरोकार नहीं होता।

मैंने शिशु कक्षा के वातावरण और बच्चों पर लादी गई पठन-सामग्री के बीच की इसी दूरी को पाटने के लिए एक बार तात्कालिक सामग्री का उपयोग कर पुस्तकों का सेट बनाया था। पर मैंने पाया कि अंततः मेरे हाथ भी एक मरी और बेजान शब्दावली ही आई। अंग्रेज मध्यवर्ग के लिए लिखी पुस्तकों की तुलना में इन किताबों की शब्दावली माओरी बच्चों के जीवन से कहीं अधिक निकट जरूर थी, फिर भी वह स्थिर और गतिहीन थी। यानी, मेरी लिखी किताबों में भी उस सवाल का जवाब नहीं था जो मुझे वर्षों से त्रस्त करता रहा था। सवाल मेरा यह था कि आखिर सहज पठन की शब्दावली है क्या ? और अब अंततः प्रश्न का उत्तर मेरे पास है। बच्चे पहले-पहल वही पढ़ें जो उनका खुद का लिखा हो। उनकी अपनी, निज की रची किताबें।

हर सुबह शिशु कक्षा के बच्चे सहज लेखन के काम में जुटते हैं। उन्हीं के लेखन का मैं कमोबेश इस्तेमाल करती हूँ। उसी पर आधारित करती हूँ मैं उस दिन का पाठ। मेरे बच्चे जब मूल शब्दावली के स्तर से आगे बढ़ जाते हैं तब वे दो शब्दों की कहानियों से शुरू कर एक पूरा पन्ना तक हर दिन लिखते हैं। यानी हर दिन हमारे पास ताजा स्तर क्रम में (ग्रेडेड) कहानियों का एक सेट तैयार हो जाता है। इसकी हर कहानी बच्चों की निजी जीवन स्थितियों से जन्मी होती है, जिसके अतूलनीय चित्र पहले से ही उनके मन-मस्तिष्क में अंकित होते हैं।

जिन शब्दों को सुबह बच्चों ने चाहा था, और जो बाद में उनकी कॉपियों के पीछे लिख दिए गए थे, उन्हें वे हर सुबह बोर्ड पर भी लिखते हैं। शब्दों की संख्या कभी एक दो ही होती है, कभी दस तक भी। सुबह के मध्यांतर के बाद जब वे निवेश (इन्टेक) कक्षा के लिए लौटते हैं तब वे इन शब्दों पर फिर से सोचते विचारते हैं। करीब दसके मिनट वे इन शब्दों को फिर से पढ़ते हैं, उनकी वर्तनी पर गौर करते हैं। मेरे लिए यह कतई जरूरी नहीं है कि बच्चे हरेक शब्द को सीख लें या उनकी वर्तनी याद कर लें। अगर शब्दों का बच्चों के लिए कोई मूल्य है तो वे उनके मन में जरूर बसेंगे, फिर चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों। उन शब्दों की छंटनी करना भी मेरे जिम्मे नहीं है। मैं तो कभी यह भी नहीं कहती कि “बताओ तो चित्र शब्द के हिज्जे क्या हैं ?” बल्कि मैं तो यह कहती हूँ कि “पैरी अपने शब्दों में से किसी एक शब्द के हिज्जे तो करके बताओ।” और तब मुझे अपने आप ही सही शब्द भी मिलते हैं और सही हिज्जे भी। यानी मैं उन्हें यह मौका जरूर देती हूँ कि वे एक-दूसरे को शब्दों की सही वर्तनी बोलते सुनें। कभी-कभार हम दोपहर का खाना खाने के पहले इन शब्दों को एक बार फिर देख जाते हैं ताकि यह मालूम पड़ जाए कि उन्होंने सुबह लेखन के बाद और सहज लेखन को पढ़ने के बाद किन शब्दों को चुन लिया है। सच, अकसर नए सीखे गए शब्दों की संख्या और उनकी दुरुहता को देख अचंभा होता है।

हर दोपहर सभी शब्द, चाहे वे सीख लिए गए हों या नहीं, बड़े बोर्ड पर से मिटा दिए जाते हैं, और हर सुबह नए शब्द उस पर लिखे जाते हैं। यह हम सबको उत्तेजित करता है क्योंकि यह किसी को भी पहले से मालूम ही नहीं रहता कि बोर्ड पर कौन से शब्द उस दिन लिखे जाने वाले हैं। अकसर आश्चर्यजनक शब्द उभरते हैं : हेलीकॉप्टर, महिलाओं की जगह, काउबॉय, खराब कान, मछली और तले आलू, गंदगी, कैंप्टन, कंचे, मम्पस्, सुपरमैन, रॉकेट का राजा। ऐसे शब्द जो कक्षा की वर्तमान मनोदशा के अनुरूप हों। शब्द, जो कभी तांगी (माओरी दाह संस्कार) को प्रतिध्वनित करते हैं, तो कभी पिछली रात को देखे चलचित्र को और कभी बंद दरवाजों के पीछे घटे पारिवारिक नाटकों को।

और यही दिन का मुख्य पाठ होता है। वे पहले अपनी कहानियों पर विजय पाते हैं, तब दूसरों की लिखी कथाओं से जूझते हैं। अपनी कहानियों को न केवल पढ़ने का मौका उन्हें मिलता है बल्कि उन्हें सुनने का भी। और सबसे बड़ी उपलब्धि इस प्रक्रिया की यह है कि इससे संवाद भी जन्मता है। हरेक कहानी की पृष्ठभूमि रो वे सब परिचित तो होते ही हैं यानी उनके मन में कथा के साथ के मानस चित्र दमकते चलते हैं और इस उत्तेजना से जो संवाद पैदा होता है, वह कभी सुस्त और निस्तेज नहीं होता।

बच्चे जब एक दूसरे की लिखी कहानियां पढ़ते हैं तो वे लेखक का नाम भी लेते

हैं ताकि नए शब्दों की पहचान होती रहे। लेखक को हानि नहीं होती इससे। बल्कि बच्चे बिल्कुल अनजाने ही, सोत्साह, बिना मुझ पर आश्रित हुए अपनी जानकारी बढ़ाते चले हैं।

बच्चे जब इन कहानियों को पढ़ने में इस तरह की रुचि लेते हों तो शिक्षक के लिए सब कुछ कितना आसान और सुखद बन जाता है। हरेक बच्चे के मस्तिष्क की जीवंत पृष्ठभूमि दृश्य होती चलती है। और अर्थों की इस दौड़ में—अक्षरों के आकार, पंक्ति की लंबाई और साफ लिखावट जैसे तथ्य कहीं पीछे छूट जाते हैं। शिक्षकों द्वारा ईजाद किए गए किसी भी दूसरे उपाय की तुलना में इस तरीके से नए शब्दों को दोहराना भी कहीं अधिक स्वाभाविक रूप से होता है। कोई भी एक शब्द फिर-फिर लौटकर तब तक आता रहता है जब तक बच्चे चाहते हैं और तब वे उसे परे ढकेल देते हैं। एक नए दोस्त की तरह हर नए शब्द का स्वागत होता है, पर ज्योंही वह नीरस लगा उसे दोस्ती के दायरे के बाहर फेंक दिया जाता है। जिसे मैं जीवंत शब्दावली कहती हूँ वह यही तो है। जहां हमेशा कुछ न कुछ नया घटता ही रहे। क्योंकि मैं बच्चों की मूल रचनाओं को ही पाठ का आधार बनाती हूँ। मैं व्याकरण और विराम चिन्हों पर भी कड़ी नजर रख सकती हूँ। जहां तक सुलेख का सवाल है, बच्चे स्वयं ही अपने सामर्थ्य के अनुसार सबसे सुंदर लिखते हैं। आखिर उन्हें एक दूसरों से अपनी तस्खियां जो बदलनी होती है। ऐसे में साधियों के सामने उनकी ही नाक न कट जाए। यानी एक और विषय तब रचनात्मक सारणी में सिमट जाता है : सुलेख।

पर पठन-सामग्री में केवल सहज पठन नाकाफी होता है। यह तो वह शुरूआत मात्र है जो बच्चों को दूसरी किताबों तक ले जाती है। जैसे-जैसे बच्चा शिशु कक्षा के अलग-अलग स्तरों तक उठता जाता है, वह तमाम दूसरी कठिन और मानक पाठ्य सामग्री की ओर भी बढ़ता जाता है। पर यह बदलाव तब सहज और सरल होता है। बच्चा क्रमशः अपनी भीतरी दुनिया से बाहरी दुनिया की ओर बढ़ता है; ज्ञात से अज्ञात की ओर। सहज से कठिन की ओर। बदलाव की इसी गति को हमें ललित बनाए रखना होता है। आखिर बच्चों की गतिविधियां शिशुकक्षा में जितनी रचनात्मक होंगी, उतना ही अच्छा मानसिक विकास उनका संभव होगा।

सहज रूप से वर्तनी सिखाने की प्रक्रिया

खेल के बाद ग्यारह बजे सीखने या आत्मसात करने के घंटे में हम अपना ध्यान नए शब्दों पर केंद्रित करते हैं। बच्चे अपनी-अपनी कापियां उठा कर बड़े दीवार बोर्ड की ओर दौड़ते हैं और लिखने लगते हैं : वे शब्द लिखते हैं बच्चे, जो उन्होंने सुबह

चाहे थे। क्योंकि समय बहुत नहीं बीता होता, शब्द ताजा रहते हैं, उन्हें भूले नहीं होते हैं बच्चे। पर कभी-कभार भूल भी जाते हैं। यह तब होता है जब उन्होंने अधिक शब्द चाहे होते हैं। पर ऐसे में वे हमेशा आपसे पूछ लेते हैं कि शब्द था कौन सा।

क्योंकि सभी शब्द बड़े बोर्ड पर लिखे जाते हैं, मैं उन्हें अपनी जगह पर बैठे-बैठे देख पाती हूँ। वे उन्हें लिखते हैं, दोहराते हैं। बड़े बच्चे उनके हिज्जे भी करते हैं, छोटे सिर्फ बोलते हैं। हर बच्चा अपने निजी स्तर पर रहता है। अपनी सीमा में काम करता है। बोर्ड पर जमाव अधिक हो जाए तो कुछ आकर अपने शब्द मुझे ही पढ़कर सुनाने लगते हैं। फिर भी हरेक बच्चा एक दूसरे को सुनता है। और एक बार फिर अनायास ही हमें वह निहायत जरूरी 'मैं और तुम' का संबंध मिल जाता है। शोर होता है, यह सच है, पर काम भी होता है।

कभी मैं पूछ बैठती हूँ 'कौन मुझे एक शब्द के हिज्जे बताएगा ?' और जो शब्द किसी बच्चे के मन में तत्काल सहजता से उभरता है, वही मुझे मिलता है। पर हर बार हिज्जे करने वाले बच्चे के लिए उस शब्द का एक खास महत्व होता है। हर बार उस शब्द का एक स्वाभाविक चित्र बच्चे के मानस में होता ही है। हिज्जे करना भी आसानी से, सरलता से सीखा जाता है, पूरे उल्लास और उत्साह के साथ। बच्चों की उम्र और शब्द की कठिनाई के अनुपात में कई बार कठिन शब्द छूटते चलते हैं। पर मैंने फिर भी पाया है कि बच्चे के लिए अगर किसी शब्द का भावनात्मक मूल्य है, तो वह शब्द को बड़ी मेहनत से याद भी कर लेता है। आकाश, रॉकेट, कंकाल, मीठी गोलियां और इस तरह के कई बड़े शब्द कुछ बच्चे बिना मेरे प्रयास के याद कर लेते हैं। जबकि कुछ दूसरे बच्चे ग्वाला (काउब्याँय) जैसे परिचित शब्द पर भी अटक जाते हैं। शिक्षकों के लिए यह घंटा आसान सिद्ध होता है। लगता है सीखना या आत्मसात करना, उसको व्यक्त करने या रचने से कहीं आसान होता है। और उनकी निज की ऊर्जा, जो आरोपित ज्ञान के समय शिक्षक के लिए बाधक बनती है, इस प्रक्रिया में पलटकर सीखने में सहायक बन उठती है। और सच, इसी ऊर्जा का अगर विस्फोट होता है तो उसकी शक्ति से हम भयभीत हो जाते। हां, शोरगुल बेहद होता है। इतना, कि कुछ शिक्षक इसे अव्यावसायिक या अनुचित ही करार दें। पर मैंने कब दावा किया था कि मैं व्यावसायिक हूँ ?

सहज पठन सिखाने की तरकीब

पढ़ने के लिए हर दिन करीब चौथाई घंटा लगाते हैं हम।

जिन कॉपियों में बच्चे हर दिन अपने आलेख लिखते हैं उनकी हालत से हम बखूबी

यह अंदाज लगा सकते हैं कि सहज पठन चल कैसा रहा है। कमरा कितना ही सजा, साफ-सुथरा क्यों न हो उसके विपरीत इन कॉपियों को तो धज्जियों में ही होना चाहिए। हाल ही में एक सहायिका ने मुझे अपने समूह की कॉपियां साबुत और सुंदर हालत में लौटाई। मैं समझ गई कि सहज प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण उसने भुला दिया है। यह महत्वपूर्ण चरण है एक-दूसरे की कॉपियां पढ़ना और तब आपस में चर्चा करना। हर कला अंततः संप्रेषण ही तो है। हमें क्या कोई कलात्मक रचना केवल अपने ही लिए करते हैं ? ये कॉपियां भी दूसरों के पढ़ने के लिए ही लिखी जाती हैं।

जब मेरे पास सहायिका थी तब वह बीच-बीच में समय निकालकर इनकी हालत सुधारा करती थी। पर यह सुविधा जब न भी होती तब मैं खुद ही सेलोटैप, रबर, पेंसिल, ब्लेड आदि से लैस हो, कमरे में घूमा करती थी। जरूरत के मुताबिक उन्हें जोड़ती-संवारती। शुरू-शुरू में निरीक्षक साहब को इन फटेहाल कॉपियों को दिखाने में मुझे काफी झिझक होती थी। पर कुछ समय बाद यह झिझक टूट गई। एक बार तो मैंने एक छापेखाने में हल्के पर मजबूत ड्राईंग पेपर तक की कॉपियां खास तौर से इन बच्चों के लिए बनवाईं। पर वे भी जल्दी ही फट गई। लगा शायद ड्राईंग-पेपर और मजबूत होना चाहिए था। पर तब पाया कि उनकी लागत बेहद ज्यादा आएगी। अब तक यह हिसाब मैं सही-सही नहीं लगा पाई हूं कि समिति के बजट के लिए सेलोटैप पर पैसा खर्चना अधिक फायदेमंद होगा या ड्राईंग-पेपर पर। एक बार एक युवा शिक्षिका ने, जो सहज कार्य का अभ्यास कर रही थी, मुझसे एक गोपनीय बात कही थी। उसने बताया था कि वह तब तक आगे बढ़ ही नहीं सकती जब तक वह इन कॉपियों की हालत सुधार न ले। मैं तत्काल ही समझ गई थी कि वह अपना काम बखूबी और ईमानदारी के साथ कर रही है।

गोल घेरे में बैठ जाने के बाद बच्चे एक बार फिर अपना-अपना लेखन पढ़ते हैं। तब दूसरों की कॉपियों से अन्य बच्चों का भी। मैं नियमित रूप से उनसे दूसरों की जोर से पढ़कर सुनाने को भी कहती हूं। पर इस गतिविधि के समय यह जरूरी है कि शिक्षक का व्यवहार कोमल हो। नहीं तो पढ़ने के बाद की चर्चा ही ठप्प हो जाती है। और चर्चा ही तो महत्वपूर्ण है। बल्कि कहना चाहिए कि वही तो इस सहज-स्वभाविक उपक्रम का चरम है। जिस समय बड़े बच्चे यों चर्चा करने बैठते हैं, मैं यह व्यवस्था करती हूं कि छोटे बच्चे किसी सहायक या किसी बड़े बच्चे के साथ बाहर खेलें। सहज लेखन बातचीत और चर्चा के लिए ऐसे सूत्र पकड़ाते हैं जैसे किसी दूसरे लेखन से मिल ही नहीं सकते। हर तरह की बातें सामने आती हैं। रोचक से शुरू होकर उकसाने-भड़काने वाली तक बातें। पर शिक्षक को तटस्थ रुचि दर्शाने के अलावा कुछ नहीं करना चाहिए। न प्रशंसा, न आक्षेप, आपका काम केवल प्रेक्षण है। आप सब कुछ बहकर बाहर आने

दें। अन्यथा यह सब उपक्रम किया ही क्यों जाए?

पढ़ने के लिए करीब चौथाई घंटा, जो आपको साढ़े ग्यारह के आस-पास ले जाता है। और तब, बातचीत के लिए अगला चौथाई घंटा। आपको लग सकता है कि बातचीत के लिए स्कूल के समय में से पंद्रह मिनट देना संभव नहीं है। बहुत अधिक समय है यह। पर मैं यह तो बता ही सकती हूँ कि इस दौरान अपनी सामग्री के बारे में मैं स्वयं बहुत कुछ सीखती हूँ। और तो और मैं तो यह भी कह सकती हूँ कि आवेश और उद्गार भरे वार्तालाप के इन क्षणों को मैंने कभी भी मंद या नीरस नहीं पाया।

ग्यारह से बारह के बीच का अंतिम चौथाई घंटा बच्चे माओरी शिशु-पाठशालाओं को पढ़ने में लगाते हैं। यह समय सीखने (इनटेक) का है। ग्यारह से बारह के दौरान जो कुछ भी हमारी कक्षा में होता है, उसको लेकर मुझे कभी शर्म नहीं आई।

माओरी संक्रमण पाठमालाएं

मूल शब्दावली और रचनात्मक लेखन ने मुझे एक पांच साल के माओरी दिमाग के हर कोने में झांकने का मौका दिया है। लगता है, मैं उसे अंदर से बाहर तक जानती हूँ। इन नन्हें भूरे बच्चों की खुद की अपने ही बारे में लिखी ढेरों किताबें मेरे पास हैं। उनके मानस चित्रों के बारे में लिखे एक वाक्य से लेकर कहानी तक की लंबाई के 'शीर्षकों' से भरी किताबें। उनसे मेरे परिचय के प्रमाण के रूप में केवल इतना भर ही तो नहीं है। इतने सालों तक हर दिन उनके साथ रहते, काम करते-करते भी तो व्यक्ति उनकी मनोदशा को, उनकी त्रासदियों को, आकांक्षाओं-अपेक्षाओं को, चाहे अनचाहे, जानने ही लगता है।

और इस माटी से उपजी हैं, माओरी बच्चों की ये संक्रांति की पाठमालाएं*। मेरा आशय सच यही है : वे उपजी हैं। अंतिम रूप में ये जो चार किताबें हैं उनको पृष्ठभूमि में छह साल के प्रयोग हैं। और हैं इसके पहले लिखी गई सैकड़ों पाठमालाएं। ना जाने कितनी ही बार मैंने आतुर नन्हे माओरी हाथों में, तब ये किताबें थमाई थीं। कई बार तो उन पर अंक चित्रों का रंग तक पूरी तरह सूखा न था। हर बार बड़े ध्यान से उनकी प्रतिक्रियाओं पर गौर किया है मैंने। अनगिनत बार खुद को एक अंधी गली में खड़ा पाया है।

'पा' (माओरी गांव) के मिजाज को इन किताबों में समेट लेना जरूरी था। जीवन की सहजता, सामूहिक संवेदना और उसकी हिंसक नाटकीयता, तो आनी ही चाहिए। 'पा' का जीवन एक ऐसी कड़ी है जिसमें आंसू, कोमलता, झगड़ा-फसाद, दारू, प्रेम और गीत सब कुछ बरबस जुड़ा रहता है। यह सब मैं करीब से जानती हूँ, आखिर मैं भी तो इस सबका हिस्सा रह चुकी हूँ। 'पा' मैं आंसू अब तक वह सौंदर्य और महत्ता पाते हैं, जिसे यूरोपवासी न जाने कब से त्याग चुके हैं।

न जाने क्यों 'दुःख', शिशु कक्षा में पढ़ी जाने वाली सामग्री के लिए इतना अवांछनीय रहा है। 'चुम्मी' (चुंबन) और 'रोना' जैसे शब्द जाने कहां जा छुपे हैं ? 'भूत' और 'प्रियतम' (डार्लिंग) जैसे उत्तेजना भरे शब्द न जाने कब बिसरा दिए गए हैं ? ये सब तो हर यूरोपीय या माओरी घर के रोजमर्रा के शब्द हैं न, फिर ? किंगसले

* ऐसी पाठशाला जिसकी मदद से उनके मन-मस्तिष्क को विदेशी संस्कारों में ढाला जा सके या उससे उनको परिचित कराया जा सके।

की रचना 'वॉटर-बेबी'* का प्रमुख पात्र टॉम दुखी हुआ ही था; 'एलिस इन वंडरलैंड' की एलिस ने भी अपने आपको तमाम उलझनों में फंसा हुआ पाया था; और डेविड कॉपरफील्ड, वह बेचारा तो न जाने कितनी बार रोया था। तो फिर ऐसा क्यों है कि बच्चों की पढ़ने की अधिकांश सामग्री इस कदर सौम्य और द्वि-आयामी बन गई है ? क्या जीवन का कोई भी समय ऐसा होता है जब आंसू और परेशानियां वहां न हों ? कभी उन झुगियों और कच्ची बस्तियों में रहने वाले बच्चों के बारे में सोचती हूं। सोचती हूं अगर उन्हें ये खुश-खुश और नरम-मुलायम किताबें परोसी जाएं तो क्या हो ? कल्पना करने पर मन में ठीक वही भाव जगते हैं जैसे माओरी बच्चों के बारे में। इन किताबों को लिखने वाले विशेषज्ञ क्या सच में यह मानते हैं कि इन शांत और टंडी किताबों को पकड़ाने पर इन बच्चों के जीवन में वे शांति भर देंगे ? और जब-जब मैं बच्चों को, मां-बाप द्वारा थमाई इन संभ्रांत और लयविहीन किताबों से मुंह मोड़कर चित्रकथाओं (कॉमिक्स) की नाटकीयता और हिंसा की ओर बढ़ता पाती हूं, तब-तब मुझे लगता है कि होना शायद इससे ठीक विपरीत ही है।

कभी-कभी मैं अपने नन्हों से कहती हूं कि वे आंखें बंद कर सपने देखें। जब वे उठते हैं तो मैं उनसे उनके सपने सुनती हूं। और सच, उन सपनों की हिंसा पर शायद तब तक कोई विश्वास न कर पाए, जब तक उन्हें वह स्वयं अपने ही कानों से न सुन ले। उनकी हिंसा का काफी बड़ा भाग मेरे प्रति होता। और सच, इन सबको भी वे खुशी से ही मुझे सुनाते हैं। मेरे साथ सच में बड़ी बुरी गुजरती है। कभी मेरा घर जल जाता है, कभी मुझ पर बम बरसाए जाते हैं, हर तरह की बंदूक की गोलियां मुझे बेधती हैं, और कभी तो मुझे कोई बनमानुस ही पकड़ लेता है। संभव है ये सारे उद्गार सत्ता और अनुशासन का ही विरोध हों, जिसका मैं प्रतिनिधित्व करती हूं।

उनके मन-मस्तिष्क में जो कुछ है, उसमें और इन किताबों के बीच एक भयावह फासला है। मैं यह मान ही नहीं सकती कि जैनेट और जॉन कभी गिरे ही नहीं, उनके घुटने फूटे ही नहीं और रोते-बिसुरते जैनेट और जॉन मां के पास कभी भागे नहीं आए होंगे। मुझे तो यह भी नहीं समझ में आता कि उनकी मां उन्हें छाती से भींचकर कभी चूमती क्यों नहीं ? क्यों कभी उन्हें 'राजा बेटा' कहकर दुलारती नहीं ? जॉन क्या कभी भी मां की बात मानने से इनकार नहीं करता ? क्या सच में अमरीकी बच्चे इतने भयमुक्त होते हैं ? अमरीका में क्या कभी बरसात नहीं होती, तेज आंधी-तूफान नहीं आता ? इन प्रवेशिकाओं में सब कुछ इतना अच्छा-अच्छा क्यों घटता रहता है ?

* उन्नीसवीं सदी के लेखक, उनकी पुस्तक 'वाटर बेबीज' ने बाल साहित्य को नैतिक उपदेशात्मक कहानियों की जकड़ से मुक्त किया था।

अगर आपको ये सारे सवाल बचकाने लगे तो आप इसे उन पांच साल के नन्हों की संगत का ही असर मान लीजिएगा। ईश्वर जानता है कि हमारी इस माओरी शिशुमाला में ही न जाने क्या कुछ नहीं घट जाता। लड़ाइयाँ-झगड़े, प्रेम, नए आए बच्चों की नई-नई धृष्टताएं ...। मुझे तो लगता है कि ये संभ्रांत और खुश-खुश किताबें ढक्केन ही हैं जो जीवन को ही नजर-अंदाज कर लुकाछिपा देती हैं।

संक्रांति की मानसिकता बनाने वाली पाठमालाओं में मैंने जीवन की थोड़ी बहुत नाटकीयता आने दी है। कुछ आंसू, काफी सारे डर, थोड़ा सा प्यार और संस्कृति का हलका सा अहसास। मूल-शब्दावली और रचनात्मक लेखन की माटी से आखिर इतना तो उपजना ही था। अगर मैं जीवन की नाटकीयता से सच में घृणा करती होती, जो कि मैं करती नहीं हूँ, तब भी इतना तो आता ही। पर मेरे लिए तो नाटकीयता के इस तीसरे आयाम के बिना जीवन ही अधूरा रहता। और इस विषय में मुझे कुछ भव्य विभूतियों का साथ मिला था। वीथोवन और चेकोवस्की* भी ठीक यही सोचा करते थे। पर इस सबके बावजूद मैं बखुशी माओरी शिशुमाला में जैनेट और जॉन पुस्तकों की जगह स्वीकारती हूँ। पर असल मुद्दा तो यह नहीं है न कि वे हमारे कमरे में ही हों या न हों। असली मुद्दा तो यह है कि एक माओरी बच्चे को निहायत कच्ची और कोमल आयु में एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में आ जाना पड़ता है। इस छोटे से गांव 'पा' से उठकर यूरोपीय संस्कृति में।

एक पांच साल का बच्चा जब पहली बार शब्दों का सामना करता है और उनमें गहरी सार्थकता ढूँढ पाता है तब वह तुरंत ही पढ़ने से प्यार करने लगता है। और यह है हमारा दूसरा मुद्दा यानी पढ़ने से प्यार, किताबों से प्रेम। जब-जब मैंने किसी माओरी बच्चे को जैनेट और जॉन किताबों से झिझकते पाया है, तब-तब तत्काल मन में एक कल्पना भी जगी है। वह यह कि यह बच्चा आजन्म केवल चित्र-कथाओं को ही पढ़ेगा और बच्चे का भविष्य होगा अपराध। कोई भी किताब चाहे वह कितनी भी अच्छी क्यों न हो, इन बच्चों के संक्रांति काल की जरूरतों को कैसे पूरा कर सकती है अगर उनमें माओरी बच्चों के प्रति संवेदनशीलता न हो ? ऐसी घटनाएं जिसमें न हों, जिन्हें वे समझते हों ? वह मिजाज न हो जो उनकी अनुभूति से मेल खाता हो ? स्वभाविक रूप से पढ़ना तो किसी निहायत परिचित वातावरण और संदर्भ में ही विकसित हो सकता है न। यह बात भी ठीक वैसी है जैसी कि मूल शब्दावली का सहज होना। और इन्हीं जरूरतों की पूर्ति के लिए रची गई हैं ये 'पा' या संक्रांति काल की पाठमालाएं।

* उनसवीं सदी के प्रथम रूसी संगीतकार जिन्हें विश्वस्तर पर ख्याति मिली।

क्योंकि संक्रांति के लिए बनाई गई इन पाठमालाओं का ध्येय ही दूरी को पाटने का है, यह दूरी माओरी और यूरोपीय नस्लों के बीच करीब दो हजार वर्षों के सांस्कृतिक विकास की है। मैंने अंग्रेजी के बदले 'पा' की बोली को ही काम में लेना उचित समझा।

'एह ?' शब्द जो माओरी बोलचाल की भाषा में असंख्य बार काम में लिया जाता है, वह दरअसल माओरी भाषा के 'नेई' शब्द से आया है। आप इसे हर माओरी वाक्य के अंत में पाएंगे। यह शब्द अंग्रेजी में काम में आने वाले 'इजिट इट ? (है कि नहीं)', 'डॉट वी (है न)', 'डॉट यू थिंक?' आदि के समान है। माओरी बच्चे कई बार वाक्य ही इससे शुरू करते हैं। 'एह, मिसेज एच? हम नदी पर जा रहे हैं, एह?'

माओरी संस्कृति से पश्चिमी संस्कृति में ले जाने वाली किताबों की एक जरूरत है। और माओरी बच्चों को इन वाक्यों को पढ़ते सुनना ही उनके इस्तेमाल करने की घृष्टता के लिए साहस का पुरस्कार है। 'हम खेलेंगे, एह?' 'तुम और मैं एह?' 'तुम मेरे पास रहोगे, एह डैडी,?' 'दुखते कानों की दवा है उनको इन वाक्यों को पढ़ते सुनना। हर ओर भिनभिनाहट छा जाती है। पर जरा कोशिश तो कीजिए इनसे, 'चलो हम दोनों खेलें', 'वे घर पर हैं', 'मां घर पर हैं' आदि पढ़वाने की।

मैं प्रवेशिकाओं के ताजे परिशिष्ट में क्वैवी बतख की बातचीत पढ़ रही हूँ : "मुझे तालाब पसंद नहीं है। मैं यहां नहीं रहना चाहता हूँ।" (आई डू नॉट लाइक द पांड, आई डू नॉट वांट टू लिव हियर।)

क्या इसके संपादक महोदय ने कभी 'डॉट' शब्द नहीं सुना है ? भला कौन स्वर्ग में या फिर नर्क में ही, इस तरह बोलता है ? लय! क्या किसने इसके बारे में नहीं सुना ? क्या कोई कभी कविता नहीं पढ़ता ? लय का बहिष्कार कर शिशुओं के लिए पढ़ना इतना कठिन क्यों बनाया जाता है ? मैं नहीं जानती, मैं नहीं जानती, मैं नहीं जानती (आई डू नॉट नो, आई डू नॉट नो ...)।

मैं विचार सामने रखने में देर नहीं लगाती। मैं 'ही इज नॉट नॉटी' नहीं कहती। कहती हूँ 'ही इजिट नॉटी', 'वैयरज इहाका?', 'हील बी हाइडिंग', 'कुरीज एट होम', 'पुसीज हाइडिंग', 'आइ ल कम बैक'। बड़ों के लिए जो उपन्यास लिखे जाते हैं, उनमें क्या हम संवादों का लुत्फ नहीं उठाते ? फिर इन पांच साल के बच्चों के लिए हम किस अज्ञात कारण से 'लैट अ प्ले' लिखा पाते हैं? सच तो यह है कि कोई भी माओरी बच्चा कभी 'लेट' शब्द का उपयोग नहीं करता। वह हमेशा कहता है 'वी प्ले एह?'

स्वाभाविक संवाद के लिए अगर हम यह छूट ले लें तब हम लय को भी नचा सकते हैं। यानी उस स्थिति में शब्दों को सीखना फिर कठिन नहीं रह जाता बल्कि आसान बन उठता है। इसलिए कि चालू संवाद शैली में एक निहायत स्वभाविक लय होती है। यही

कारण है कि इस शैली में समग्रता होती है। और यही बात मुझे फिर से बच्चों के लिए लिखी गई किताबों पर गौर करने पर मजबूर करती है क्योंकि आखिर पढ़ने में भी तो समग्रता होनी चाहिए।

शब्दों की पुनरावृत्ति, वाक्यों की लंबाई, पन्नों के आकार, इन सभी विषयों में मैं अमरीकी लेखकों की प्रशंसा कर रही हूँ। अपनी माओरी किताबों में मैं पूरी श्रद्धा और नम्रता के साथ उनका अनुसरण करती हूँ। उनकी किताबों का ढांचा भी, बाकी अमरीकी चीजों की तरह, अच्छा ही होता है। और शायद इन्हीं किताबों की विषयवस्तु ऐसी है, जिसे मेरे नन्हें माओरी भी कुछ सम्मान देते हैं।

हमारी इन किताबों में जो विषय के स्तर के चित्र (स्कीमैटिक लेवल ऑफ इलस्ट्रेशंस) मिलते हैं, उनके पीछे तर्क तो मुझे कम ही दिखता है। लगता है ये चित्र भी क्रमिक विकास के कारण ही ऐसे हैं। या फिर इसे सहज-बोध ही कह लें। बहरहाल मुझे भी अपने माओरी बच्चों की तरह 'सही चीज' से विरक्ति होती है। ऐसा नहीं है कि मैं प्रतीकात्मक चित्र नहीं बना सकती, पर मुझे विषय से जुड़े चित्र ही अच्छे लगते हैं। इन किताबों के प्रयोग के दौरान कला के बारे में मैंने एक और बात भी सीखी। वह यह कि विषय से जुड़े रेखाचित्र ही मनोभावों को कहीं अधिक अच्छी तरह प्रस्तुत कर पाते हैं। मैंने तो वयस्कों के लिए लिखी गई कई कविता की किताबों के चित्र भी ऐसे ही बनाए हैं। माओरी बच्चों ने अब तक, बावजूद अपनी स्पष्टता के, मेरे इस छिछोरेपन को कभी चुनौती नहीं दी है। संभव है मेरे चित्रों की शैली वह भाषा हो जिसे वे समझते हों। मेरे पास स्कूल में कुछ ऐसी किताबें भी हैं जिनके चित्र बच्चों ने स्वयं बनाए हैं। कंजूसी से भी कहें तो भी यह मानना पड़ता है कि उनके चित्र सम्मोहक हैं। फिर कोई भी चित्रकार अपनी शैली के बारे में कर ही क्या सकता है। और यहां तो निर्णायक न्यायाधीश मेरे नन्हे ही हैं न। अगर लेखन में मैं उनके स्तर तक उतरती हूँ तो फिर चित्रण में भी वही करना पड़ेगा। यह तो सुसंगति की ही मांग होगी न। इस बारे में हम आलोचना करना चाहें तो यही कह सकते हैं न कि हमने बच्चों के माध्यम, उनकी शैली को सम्मान दे डाला है। संभव है उन वयस्कों की नजर में—जो बच्चों के चित्रण के प्रयास पर हंसते हैं—यह भी एक धृष्टता ही हो। इन चित्रों की तारीफ करना चाहें तो यह कह लें कि यही भाषा है जिसमें, जो मुझे कहना है, वह मैं कह पाती हूँ।

तेजी ने, गति ने इस चित्र शैली में से घुमाव गायब कर दिए हैं। जब कहानी कहते-कहते ब्लैक बोर्ड पर चित्र बनाना हो तो सीधी, सही या सुंदर रेखाओं का समय कहां रहता है ? पर खैर, मेरे नन्हें न्यायाधीशों ने अब तक कोई आरोप मुझ पर नहीं लगाया है।

रंगों के बारे में मैं वैसे तो कुछ भी नहीं जानती। पर दर्जनों चित्रों को दर्जनों किताबों

में रंगने की जरूरत ने भी खास तरह की स्थिति पैदा कर दी। सो घुमावदार रेखाओं के गायब होने की तरह का एक फार्मूला रंगों के लिए भी अपना पड़ा। और फिर मैं बेशर्मी से अपने नन्हें माओरियों के विपरीत जाकर पेड़ों को हरा और आकाश को नीला भी कैसे देखती ? आखिर शिशुमाला में इतने साल बिताने के कारण मैं भी तो काली छतों, नारंगी घरों, हरे कानों, पीले चेहरों, बैंगनी ट्रकों और फिरोजी बरसात देखने की आदि हो चुकी हूँ। सो अपनी संगत के कारण रंगों के इस्तेमाल के मामले में मैं भी पूरी तरह खुल चुकी हूँ। मेरे बच्चे जैसे आंकते-रंगते हैं, मैं भी ठीक वैसे ही आंकती-रंगती हूँ। वे जो लिखते हैं, वही मैं भी लिखती हूँ।

माओरी संक्रमण पाठमाला की परिचित, पहचानी पृष्ठभूमि में कोई भी माओरी बच्चा न केवल पढ़ना-लिखना सीखता है बल्कि वह यह भी अनुभव कर पाता है कि पढ़ने का एक निहायत निजी पक्ष भी होता है। यानी वह इस प्रारंभिक चरण में ही पढ़ने में विश्वास करने लगता है। और यह अनुभव उसमें यह आत्मविश्वास भी पैदा करता है कि वह किसी भी पुस्तक को अपने आप पढ़ और समझ सकता है : चाहे उस किताब के संवाद स्वभाविक हों या न हों; चाहे उसमें तीसरा आयाम हो या न हो; 'पा' के परिवेश, उसके मिजाज को किताब प्रस्तुत करती हो या न करती हो; किताब के चित्रों में बरसात का रंग फिरोजी हो या न हो। बल्कि इस आत्मविश्वास के कारण ही उसके लिए पढ़ने की क्षमता के बढ़ते ही, 'जैनेट और जॉन' जैसी किताबें भी आनंददायक बन उठती हैं।

इस सारी चर्चा से मन में एक नया विचार उठता है। वह यह कि क्या इस संक्रमण पठन का-जो पढ़ने की प्रक्रिया को सरल बनाता है-इस बात से भी कोई संबंध है कि बच्चा कक्षा में कितना समय बिताता है ? मेरे पास जो बच्चे नियमित आते हैं, उन्हें अच्छी तरह से पढ़ना सीखने में प्रायः दो साल लगते हैं। पर मैं भी तो चामत्कारिक परिणामों से डरती हूँ। दूसरी शिशुशालाओं में भी बच्चे अपनी प्रवेशिकाएं दो ही सालों में खत्म करते हैं। पर इन दोनों स्थितियों में फिर भी एक अंतर है। वह यह कि संक्रमण पठन से बड़ी कक्षाओं में जो स्थिति अकसर सामने आती है उससे हम बच सकते हैं। यानी इन बच्चों को हम भविष्य में पिछड़ने से बचा सकते हैं। आम तौर पर होता यह है कि माओरी बच्चे पढ़ने में कमजोर रह जाने के कारण हाई स्कूल में दाखिला पाने की उम्र पार कर जाते हैं। अकुशल होने के कारण कोई रोजगार भी वे नहीं ढूँढ पाते। फलतः उनमें से अधिकांश बच्चों के मन में यूरोपीय शिक्षा पद्धति के प्रति एक वाजिब शिकायत रहती है। मैं तो यह तक मानती हूँ कि इस संक्रमण-पठन के चरण से अगर हमें साल भर और भी लगे, और बच्चे छह साल की उम्र में भी पहली कक्षा में न जा पाएँ, जैसा अपेक्षित है, तो भी यह घाटे का सौदा न हो।

पढ़ने के इन प्रारंभिक प्रयासों की महत्ता आखिर कितनी है ? क्या इसका इस बात से कोई संबंध है कि अधिकांश माओरी बच्चे तमाम उग्र चित्रकथाओं के अलावा कुछ भी दूसरा पढ़ने से घृणा करते हैं, शायद नहीं। मुझे लगता है कि यह बात अंततः नस्ल के विकास के प्रश्न से जुड़ी हुई बात है।

ये माओरी संक्रमण पाठमालाएं अमरीकी किताबों के स्थान पर नहीं लिखी गई हैं। बल्कि ये तो उन मानक पुस्तकों तक पहुंचाने के लिए बनी हैं। इसलिए बनी हैं ये पाठमालाएं ताकि माओरी बच्चे 'जैनेट और जॉन' पुस्तकों का बेहतर और संपूर्ण उपयोग कर सकें। वे तो दो संस्कृतियों के बीच के फासले को पाटने के लिए सेतु भर हैं। साथ ही ये किताबें भविष्य में इन बच्चों को सामाजिक स्थायित्व देने में भी अपना सीमित योगदान देती हैं। यह मैं जानती हूँ कि आजकल शिक्षा के कई विवादास्पद मसले हैं। और इन मसलों पर ये किताबें दूसरी किताबों की तुलना में अलग ही नजर आएंगी। पर बहुसंख्यक होने के कारण हम जिस बात को अकसर भूल जाते हैं, उस ओर एक बार मैं फिर ध्यान बंटा दूँ। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यूरोपीय मानक के साथ हमारे देश में एक दूसरा मानक भी है, माओरी मानक।

सुनहरा हिस्सा

‘कई सदियों पहले प्लेटो* और पाइथोगोरस** ने अंकों में प्रकृति के रहस्य और सौंदर्य का संकेत पाया था।’

पर न जाने क्यों स्कूलों में प्रकृति के अध्ययन और अंकों के बीच मूलभूत साम्य को खोजने के बदले हम इन दोनों पहलुओं के बीच के अंतर देखने की प्रक्रिया को ही व्यावहारिक मानते रहे हैं। जबकि सच तो यह है कि अंक या संख्या ही वह आधार है जिस पर प्रकृति के सारे रूप, सारे आकार टिके हैं।

जितना अधिक कोई विषय अपने स्रोत या मूल का आश्रय लेता है, उतनी ही उसके संपूर्ण या समग्र होने की संभावना बढ़ती है। पर इसके बावजूद हम पाते हैं कि प्रकृति का अध्ययन (नेचर स्टडी) और अंक ज्ञान हर पाठ्यक्रम के अभिन्न और महत्वपूर्ण भाग होते हुए भी अलग-अलग ही माने जाते हैं। एक समग्रता को यों बांट कर देखना, यह द्वैत, मुझे ठीक वैसा लगता है मानो ‘जीवन के टुकड़े-टुकड़े’ कर दिए गए हों, जैसा श्री बीबे ने कहा था। अकसर सोचने लगती हूँ कि क्या तोल्स्तोय ने भी ऐसा किया होगा ? व्यक्तिशः मुझे इन दोनों को एक ऐसे शीर्षक के नीचे रखना ही उचित लगता है, जो इन दोनों पहलुओं को अर्थ दे सके। वैसे तो शायद कई बिंदु होंगे जिनमें प्रकृति का अध्ययन और अंकों का ज्ञान दोनों एकमेक हो जाते हों। पर उनमें से एक बिंदु है जिसका संबंध वनस्पति-विकास (प्लांट ग्रोथ) से है : मैं इसे ही ‘सुनहरा हिस्सा’ कहती हूँ।

यह वह भाग है जहाँ हम प्रकृति के आकारों के सौंदर्य के साथ अंक को जुड़ा पाते हैं। यहाँ मिलता है हमें दोनों पहलुओं का सही अनुपात। यहाँ हम पाते हैं कि छोटे हिस्से का बड़े से और बड़े का संपूर्ण से अविभाज्य रिश्ता होता है। है तो यह वनस्पति जगत का, वनस्पतिशास्त्र का नियम; ऐसा नियम जिसे शिशु कक्षा में समझाया नहीं जा सकता। पर इस नियम का अहसास अवश्य कराया जा सकता है। उसे हर दिन चित्रित किया जा सकता है। किसी टहनी के आखिरी हिस्से में क्रमशः कम होती दूरियाँ या किसी पर्णांग (फर्न) की टहनी का आकार इसके अनुपम उदाहरण हैं। असल में तो पर्णांग (फर्न) की टहनियाँ सबसे सुंदर और अच्छे गिनती-बोर्ड भी होते हैं। हम जब भी अपने छोटे बच्चों के साथ सैर करने निकला करते थे तो हरेक को एक पर्णांग की टहनी पकड़ा दिया करते थे। किसी भी नन्हें को अगर कभी व्यस्त रखना हो तो मैं इस खिलौने

* पांचवीं सदी ई. पू. के यूनानी दार्शनिक और शिक्षाविद, शिक्षा दर्शन के जन्मदाता।

** पांचवीं सदी ई. पू. के यूनानी गणितज्ञ।

के इस्तेमाल की सलाह दे सकती हूँ। कीमत कुछ भी नहीं है। सड़क के किनारे से तोड़ना भर पड़ता है। और तब बच्चे स्वतः प्राकृतिक रूपाकारों के बारे में कुछ बातें भी सीखने लगते हैं।

अब फिर एक बार हम कमरे में लौट चलें। कमरे से 'बाहर' जाना, (यहां यह बता दूँ कि सहज शब्दावली के सबसे सशक्त शब्दों में से है, यह शब्द 'बाहर') वहां इन चीजों को देखना, छूना, उनका अनुभव करना, और तब लौटकर उनके बारे में लिखना, उनके चित्र बनाना, मिट्टी के आकार बनाना। यही तरीका है सुनहरे हिस्से को सीखने का। यही तरीका है यह पहचानने का कि अंततः अंक, प्रकृति और सौंदर्य के नियम एक ही हैं।

पर इसका मतलब यह नहीं है कि शिशुओं को अंक सिखाने के लिए जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, उन सबके प्रति हम शंकालु हो जाएं। आजकल आकार सिखाने के लिए या सम और असम संख्या बताने के लिए कई उपकरण मिलते हैं। मैं तो केवल इतना भर कहना चाहती हूँ कि 'बाहर' प्रकृति में, असंख्य बार हम इन सबको दोहराया गया पाते ही हैं। पत्तों के सममोणीय रूप, टहनियों पर दाएं-बाएं उगे पत्तों के जोड़े, ये क्या समसंख्या सिखाने के किसी उपकरण से बेहतर नहीं हैं। कई बार शैक्षिक खिलौनों में क्रम होता है। पर वैसा क्रम हमें वहां मिलेगा जैसा पेड़ों की गांठों में मिलता है—दो, तीन, पांच, आठ, तेरह का ? बाद में प्रकृति के इस स्वाभाविक क्रम का बोर्ड पर लिखकर मोती पिरोते समय हम इस्तेमाल करते हैं। सम-सांख्यिक जोड़ियों के साथ रूपांतर के लिए हम तब दो दो, तीन तीन आदि के जोड़े भी बना सकते हैं। मोतियों की लड़ी को इस तरह बढ़ते देखना बच्चों के लिए बेहद उत्तेजक हो सकता है। पर इससे भी अधिक आनंद आता है किसी पणार्ग पत्ते का चित्र बनाने में। पहले नीचे को दस पत्ते, उसके बाद नौ, तब आठ, और यों कम होते-होते आखिर में केवल एक।

छोटे बच्चों के समूहों में पांच तक की संख्या सिखाने के लिए हम कागज पर हाथ की उंगलियों को ही बनाने की कोशिश कर सकते हैं या चाहें तो 'बाहर' उगे सचमुच के फूलों की पत्तियां, बिना उन्हें तोड़े भी। सच, संख्या सिखाने में फूलों से बहुत मदद मिलती है। और तो और यह सब कुछ सैर करते समय बिना कुछ नष्ट किए किया जा सकता है। और तब संख्या सीखने के साथ ही साथ मिलता है प्रकृति का सौंदर्य, उसकी स्वाभाविक सुगंध।

तिपतिया (क्लोवर, मेथी या बेलपत्र जैसे पत्ते) तीन की संख्या की गतिविधियों के लिए अतुलनीय है। और दरवाजे के बाहर ही मिल जाता है वह। जितने चाहें तोड़ ला सकते हैं हम। बड़े बच्चों के लिए तीन का पहाड़ा सिखाने के लिए, और छोटी को

तीन तक की गिनती सिखाने के लिए। उड़ती और अस्थिर चिड़ियों को गिनने के लिए ध्यान केंद्रित करने की जरूरत होती है। ऐसा करते समय बच्चे खुद को शांत रखते हैं। आत्मसंयम और आत्मनियंत्रण सीखते हैं। और इस सबके बाद चित्र बनाने का, रंगने का, मिट्टी में इन आकारों को बनाने का आनंद तो है ही।

पर हर बार आदर्श स्थितियां नहीं रहती। जब बरसात हो या ठंड पड़े तब हमें चाक और तख्तियों से भी काम लेना पड़ता है। पर जब भी मौसम साथ देता है हम जरूर नदी के किनारे सैर करने जाते हैं। हम सब खेलते हैं। लड़कियां 'वन कन्याओं' का नाच करती हैं और नाचते-नाचते कुछ बच्चों को पेड़ से झाड़े पत्तों से ढक देती है। और जब बच्चे हर ओर पेड़-पौधों के पत्तों को रंग बदलता पाते हैं, तब वे 'शरद श्रुतु' शब्द का प्रयोग भी सीखते हैं।

हम अपने समूह के बच्चों को गिनते हैं। तब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उस समय कौन हमारे साथ नहीं हैं। जब कभी कोई बच्चा शैतानी करने के कारण वापस भेज दिया जाता है तो वह हमें घटाने का एक सवाल दे जाता है। लौटते समय जब इधर-उधर भटक गए बच्चे वापस मिलते हैं तो वे जोड़ के सवाल बन जाते हैं। पिछली बार सैर करते समय हम सबने ताड़ की एक-एक टहनी लेकर उसके फलकों की गिनती की थी। उनकी संख्या छह से सतरह के बीच थी। तब मैंने बच्चों से ताड़ के सौ पेड़ों को छूकर उन्हें गिनने को कहा था। बाद में नदी के किनारे बैठकर हमने रेत पर ये सारी संख्याएं लिखी थीं।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि बच्चों को यह सब करना बेहद अच्छा लगता है और तब उन्हें बहुत कुछ सिखाना सरल हो जाता है। पर उन्हें खेलना और तोलना भी उतना ही पसंद है। सांप सीढ़ी, डोमिनी, सर्दियों में स्किटल्स (नौ बल्लियों को गेंद से गिराने का खेल) ये सारे खेल भी उन्हें बेहद पसंद हैं। जो बच्चे सात साल के हैं, वे कुछ औपचारिक सवाल भी करते हैं। सौ तक की गिनती भी लिख लेते हैं। हमारी शिशुमाला में रुपया, आना, पाई के सवालों की भी जगह रहती है, क्योंकि यह उस युग से पहले की बात है जिस युग को मैं प्लास्टिक युग कहती हूं। जिस समय बच्चों का मन और मस्तिष्क भविष्य के स्थिर और अपरिवर्तनीय रूप में ढल रहा हो, उस समय ही अगर प्रकृति के रूप और आकार उसका आधार बन सकें तो ही बेहतर है न। और फिर औपचारिक और सम्मानजनक तरीकों के लिए तो आगे भी बहुत समय मिलना ही है। इसलिए हम अकसर नदी के किनारे लंबी सैर के लिए जाते हैं। शोरगुल से भरी सैर के लिए जाते हैं हम। कितना कुछ नहीं घटता वहां। उन अनुभवों के अलावा भी, जिनके बारे में लिखा या बोला जा सके, या चित्र बनाने और संवाद का ही अविभाज्य अंग बन उठता है। पंखों वाली सचमुच की तीन बत्तखें हमें अंक तालिका पर छपी

तीन-बेजान बत्तखों की तुलना में कहीं अधिक अच्छी लगती हैं।

मुझे लगता है कि हमें अपनी शिशुमाला में अंडों के छिलकों में से उगते अंकुर, टिन में रखी जलकुंभी, डब्बे में उगते फूल या प्याज, या बोतल में रखे कंद पसंद नहीं आते। हमें तो अंडों के छिलकों में अंडे, बाग की मिट्टी में उगते कंद, और बाड़ के किनारे उगे फूल ही अच्छे लगते हैं। अंकुर देखने की इच्छा हो तो 'बाहर' हमें सैकड़ों अंकुर देखने को मिलते हैं। दीवार-पोथियों (चार्ट्स) से मुझे भी उतनी ही घृणा है जितनी मेरे बच्चों को। मुझे उनकी रुचि में निरंतर आने वाला बदलाव अच्छा लगता है। सैर के दौरान पहाड़-पीपल को देखना, वहां पेड़ों को गिनना, लौटकर वहां उनके चित्र बनाना, उनकी संख्या लिखना, यह सब बेहद अच्छा लगता है। पर तब उस विषय को वहीं छोड़कर किसी दूसरी दिशा में किसी दूसरे विषय के साथ आगे बढ़ना भी उतना ही अच्छा लगता है। मुझे तो 'क्षण की, उत्तेजना से भरी गर्म कैद' ही पसंद है।

लगता है स्कूलों में हम शिक्षक अब अपनी ऊर्जा नहीं खरचते। हम तो चार्ट के पुराने विचारों को ही सहेजकर रखते हैं। बासी रोटियों की तरह उनका ही बार-बार इस्तेमाल करते रहते हैं। बड़े से बड़े विद्वान के विचार भी जड़ और अपरिवर्तनीय नहीं लगने चाहिए। और कुछ न बदले तो कम से कम हमारी मनोदशा और उन विचारों की प्रस्तुति तो बदलनी ही चाहिए। सच तो यह है कि अगर हम चुनौतियों को स्वीकारना चाहें, अगर हमारे सामने नित नए उद्दीपक हों, तो विचारों की कमी रहती ही नहीं है। फिर ऐसे में पुराने कागजों, बासी चित्रों और जड़ विचारों से काम लिया जाए? इन सबके बिना जब सब कुछ इतनी सफाई से, इतनी सहजता से किया जा सकता हो, तो फिर बासी विचारों की जरूरत ही क्या है ?

हमारे इलाके पाखी : गौरैया, मैना, कौवा, मुदरी (मैगपाई), चिलबिल, श्यामा, चिरैया, कबूतर, कस्तूरा, बत्तख।

जबरन स्कूल में लाए गए जंतु : बद्धहस्त कीट, टिट्टा, इल्ली, बीरबहूटी, झिंगुर, तितलियां।

अनामंत्रित आए जंतु : ततैया, जूं, मधुमक्खियां, मकड़ियां।

एक बार पतझड़ के प्रारंभ में हमें राजा-तितलियों की सुंडियां एक पौधे पर मिली। हमने चाहा तो था कि हम इन सुंडियों को तितलियों में बदलता देखें। कोशिश भी की। पर कुछ माओरी योद्धाओं की मेहरबानी से वे बची न रह पाईं। पर हां, कुछ दूसरे बड़े बच्चे यह बदलाव देख पाए।

एक बात और देख पा रही हूं मैं। जब से ततैयां ने हमारी कक्षा में अपना दाखिला करवाया है, जंतु जगत के प्रति संवेदना घट रही है। पिछले ही सप्ताह आरापाता खेल

मैदान पार कर टाइफाइड की सूई लगवाने जा रहा था। पर रास्ते में ततैया ने ही उसे सूई लगा दी। वह नर्स तक पहुंचा जरूर, पर उसका मकसद बदल चुका था। उस दिन आरापाता से किसी ने सूई लवाने का आग्रह नहीं किया। इसके बाद एक दूसरी घटना हुई। उस दिन कहना न मानने पर मैंने जो को क्लास से बाहर कर दिया। कुछ देर बाद उसकी चीखों से पता चला कि ततैयों ने उसे अनुशासन का पाठ पढ़ा डाला है। सो हमने उसे वापस अंदर बुला लिया। जो ने हमें उसके बाद काफी परेशान नहीं किया। और इस सबके बाद ततैयों पर धुंआधार बातचीत हुई। इनसे संबंधित ढेरों आवेशपूर्ण चित्र बनाए गए।

पाखियों ने हमें भावनृत्य सिखाया है। नाचने की गति और चाल सिखाई है। हमारा एक नृत्य मुटरी (मैगपाई) नृत्य कहलाता है। एक दूसरा नृत्य भी है अगिन (लार्क) नृत्य। असल में हमने अगिन देखा नहीं है, उसके बारे में सुना भर है। मुझे तो लगता है कि अगिन सच में इतनी ऊंची उड़ान भरने वाला या इस कदर ऊंचा गाने वाला पक्षी होगा भी नहीं। पेड़ों पर से झड़ती पत्तियां हमें अनगिनत औपचारिक और अनौपचारिक नृत्यों की लय सिखा देती हैं; मछलियों का तैरना भी; और मेंढक भी। एक बार तो गंदले पानी से भरे एक डब्बे में कुछ कुछ मेंढक हमारे कमरे में ले आए गए थे। पर मेरे योद्धाओं के तौर-तरीके उन्हें रास नहीं आए। और फिर हमारे मेंढक भी तो सुस्त नहीं हैं, जबरदस्त छलांगे लगा सकते हैं वे। और कभी किताबों की कतारों के पीछे। सैमी घोंघा ही अकेला मेहमान है जो कभी इधर उधर भटकता नहीं फिरा। हमारे कमरे के एक कोने में कुछेक कोष (ककून) भी हैं। वह नहीं बिल्ली भी कभी कभी आती है, पर शायद उसे हमारे साथ बिताया गया समय खास पसंद नहीं आता। मुझे नहीं लगता कि वह लाल मुर्ग भी हमारे कमरे में आने की जल्दी में होगा।

शिशुशाला के बिन बुलाए मेहमान : सैमी घोंघा, जिंजर मुर्ग, बिलौटी, मांगू का कुत्ता, एक कबूतर, एक बंदर।

थोड़े समय के लिए हमारे सारे के सारे नन्हें उस ओर अनायास खिंचे चले जाते थे। बाद में मच्छीघर में एक छेद हो गया। इतना पानी रिसने लगा कि मच्छियों को एक टब में डालकर स्कूल में कपड़े धोने की जगह पर रखना पड़ा। पर जब एक दिन साबुन की एक टिकिया उस टब में जा गिरी और ... आमीन।

इन गुजरे सालों में मेरे पास विभिन्न विषयों के चित्रों का एक पूरा भंडार इकट्ठा हो गया है। कुछ चित्र जानवरों के हैं, कुछ चिड़ियों के। कुछ चित्र बाल-कविताओं और गीतों से जन्मे हैं तो कुछ मौसम से। इन सबको अलग-अलग लिफाफों में रखा करती हूं। ये बरसात के दिनों का मसाला है। अपनी तरह का अनूठा विस्तार देते हैं ये चित्र भी। तीन भालुओं की कहानी कहने-सुनने के बाद देखने को हमारे पास भालुओं के

तीस चित्र हैं। पतझड़ के चित्र हैं, घोड़े के भी। चिड़ियों के चित्र हैं, बिल्लियों के भी। पर इनको हम तभी काम में लेते हैं, जब हमें सचमुच के जीते-जागते, काटते-लतियाते या रेंगते जानवर नहीं मिलते।

इस सुनहरे भाग का समय मैं उत्पाद-घंटे (आउटपुट) में दोपहर एक से दो के बीच रखती हूँ। इस दौरान या तो हम पूरा समय 'बाहर' बिताते हैं, या कभी थोड़ी देर बाद वापस भी आ जाते हैं, लिखने के लिए। पर यह सब हमारी मनोदशा, मौसम और बच्चों की उपस्थिति पर निर्भर करता है। हाँ, चित्र जरूर निवेश-घंटे (इनपुट) में ग्यारह से बारह के बीच देखे जाते हैं।

औपचारिक अंक पाठ भी हमारे लिए रचनात्मक बन उठते हैं। उनका समय होता है सुबह का।

जल्दी ही हर शिक्षक के पास मौसम के गीत, बाल कविताएं और पशु पक्षियों की कहानियां भी इकट्ठी हो चलती हैं। हमारे पास जो खजाना है उसके कुछ उदाहरण हैं

:

वसंत

गीत : (बटरक्वूस एण्ड डेजीस्) सुनो, सोनो अग्नि पाखी को (हार्क, हार्क द लार्क) उत्तरी बयार (द नार्थ विंड)

कविताएं : चिक चिक, नीलपुष्प (वाएलेट) नरगिस (जॉनक्विल)

कहानियां : काली बिल्ली, सेब मंजरी।

ग्रीष्म

गीत : पेड़ों पर बैठे पंछी, पकड़ना मछली का।

कविताएं : कीस्-कीस्, बीरबहूटी।

कहानियां : नन्हीं लाल मुर्गी, अन्य।

पतझड़

गीत : झड़ते पत्ते, खंड-खंड, एक नन्हा भूरा शिशु।

कविताएं : दस नन्हीं पीली पत्तियां।

कहानियां : 'जैनेट एण्ड जॉन' कहानियां, अन्य।

शीत

गीत: दखिन पवन, नन्हा एस्कमो, पवन महाशय, पिटर पैटर, बरसात की परी।

कविताएं : बच्चे-बच्चे, जैक फ्रॉस्ट।

कहानियां : तीन बकरियां।

हमारे इलाके के फूल : गेंदा, गुलाब, खसखस, किशमिश, पैंजी, जरमेनियम, डेलिया, निर्विषी (डेल्फेनिअमस्)

हमारे इलाके के पेड़-पौधे : पात-गोभी पेड़, मैक्रोकार्पा, होहिरिया, अखरोट, कई फलों के पेड़, चीड़।

सुनहरा हिस्सा की परिभाषा सरल शब्दों में करना चाहें तो कह सकते हैं कि अनुभव करना और उन अनुभवों का लेखा-जोखा रखना सुनहरा हिस्सा है। फलतः इस विषय के लिए आयु, समय और प्रगति आदि के संकरे और स्पष्ट विभाजन असंभव हैं। मुझे सच में लगता है कि जब भी कभी हम दक्षता के साथ पहले से तय किए गए पाठ बनाते और पढ़ाते हैं तभी हम अंक और प्रकृति के अध्ययन के बीच द्वैत पैदा करते हैं। इन दोनों की समग्रता को तोड़ डालते हैं। इस समग्रता को बचाने का अकेला उपाय है, इनके मूल स्रोत तक पहुंचना। सच, अगर हम इस सुनहरे हिस्से को शिशुकक्षा में सही तरह से प्रस्तुत कर सकें तो अंकों का ज्ञान और प्रकृति का अध्ययन दोनों अपने आप संभल जाते हैं।

सुर-तान

‘निःस्तब्ध केंद्र’

—टी. एस. इलिअट

सुर-तान (टोन) व्यवस्था का ही अंग है और इसे पाया जा सकता है।

इसका संबंध केवल किसी कक्षा से नहीं है। बल्कि यह तो एक ऐसी स्थिति है जो साथ काम करने वाले किसी भी समूह में दृश्य या अदृश्य रूप में होती ही है। फिर चाहे यह समूह शिशुकक्षा हो या शिक्षा-विभाग हो या कि एक पूरा का पूरा देश। क्योंकि इन सभी समूहों के सुचारू संचालन की कुंजी तो व्यवस्था ही होती है न। चाहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि यह किसी समूह के चेहरे का भाव ही है।

पर व्यवस्था भी तो दो प्रकार की होती हैं, उनमें से हम किसे चुनना चाहते हैं ? चेतन व्यवस्था को, जिसे हमेशा से सम्मान मिलता आया है ? या फिर अचेतन व्यवस्था को, जो ऊपरी तौर पर देखने से अव्यवस्था का आभास देती है ? और सच इस प्रश्न चिन्ह के दोनों ओर दो नितांत भिन्न-भिन्न जगत हैं।

जब हम सुर-ताल के मूल तक जाते हैं तो उसे मिजाज या स्वभाव के क्षेत्र में बसता पाते हैं। हम पाते हैं कि कोई व्यक्ति जिसका एक स्पष्ट स्वभाव है वह कभी भी आवेशों और आवेगों से घबराता नहीं है। इसके भी आगे जाने पर यह अहसास होने लगता है कि यह तो आत्मा का ही वातावरण है। चैक वास्तुकार होनित्ज ने कहा था कि किसी भवन का अंतिम आकार ‘विश्रान्ति की स्थिति’ ही होता है।

शिक्षक इन दोनों में से किसी भी व्यवस्था को क्यों न पसंद करे, वह पाता है कि व्यवस्था को तीन ही चीजें बनाती हैं : शिक्षक का व्यक्तित्व, बच्चों का व्यक्तित्व और अध्यापन की विधि।

मैं एक ऐसी शिक्षिका को जानती हूँ जो जहाँ भी जाएं, अपना सुर-ताल, अपना लहजा, अपने साथ ले जाती हैं। चाहे वे एक विशाल स्कूल की शिशुकक्षा में हों, या किसी वाद्य-वृंद के साथ, किसी दुकान पर हों या रेडक्रास का निदर्शन करती हों। आप उनसे किसी बैठक में मिलें या उनकी कक्षा में, सड़क पर मिलें या रंगमंच के पीछे, आप हर बार उनके अंदाज से, उनके मिजाज से ही मिलते हैं। मैं एक ऐसे हेडमास्टर साहब को भी जानती हूँ जिन्हें शांति का अहसास कराने के लिए कोई उपक्रम नहीं

करना पड़ता। मेरी छह सहायिकाओं में से दो ऐसी भी थीं, जो अंदाज को सायास विकसित करने के प्रति बेखबर थीं, पर फिर भी उसे अपनी जेबों में लिए घुमा करती थीं। इन शिक्षकों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो उद्वेलित आवेगों से घबरा जाए या उन्हें शांत न कर सके। इन्हीं शिक्षकों के पास सही अंदाज है, लहजा है। अंदर भी और बाहर भी।

खुशी की बात तो यह है कि किसी कक्षा का अंदाज केवल उसके शिक्षक पर ही निर्भर नहीं करता। बच्चों का अपना एक अंदाज, अपना ही लहजा तो होता ही है पर साथ ही होता है उस इलाके, उस जिले का जहां स्कूल स्थित हो। जब हम पूर्वी तट पर रहा करते थे तब हमारे दो पड़ोसी थे। एक ओर रहते थे सर अपिराना नाता और दूसरी ओर रेवती कोहेरे। उन दिनों स्कूल में घटने वाली बड़ी से बड़ी घटना भी उसके अंदाज को छू नहीं पाती थी। चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए। और घटनाओं की कमी तो कभी रहती ही नहीं है। पर सच कभी भी अशांति नहीं फैलती थी, बदमिजाजी का अहसास न होता था। सच पूछें तो उस पूरे जिले का ही अपना एक खास अंदाज था जो लोगों के चुने सही नेताओं का बनाया हुआ था। वहां सौहार्द था, शांति थी। और यह शांति अपने स्रोत ... 'सर' से निकलती थी और मानो पूरे नातीपोरो को आच्छादित कर डालती थी। ठीक वैसा प्रभाव था 'सर' का अपने जिले पर जैसा किसी हेडमास्टर का अपने स्कूल पर होता है।

पर जहां पर ऐसा नता न हो, जहां माओरी हमेशा एक नट के मानिंद भूरे और गोरों के बीच तनी रस्सी पर चला करते हों, वहां तो तट पर मिलने वाला कबीलाई आत्मविश्वास भी नहीं होता है न, न ही वैसी संबद्धता ही मिलती है। इसलिए हमारे इस जिले में न तो वैसी व्यवस्था है न वैसी शांति ही। यानी यहां अगर शिक्षकों के पास इस कमी को पूरा करने के निजी रास्ते न हों, निजी स्रोत न हों तो उसे हर समय ही विरोध और विद्रोह का ही सामना करना पड़े।

ऐसी स्थिति सामने आ ही जाए यह भी जरूरी नहीं। क्योंकि आखिर अंदाज को जीता भी तो जा सकता है। शिक्षक और बच्चे, दोनों में इसकी कमी के बावजूद। क्योंकि वह तीसरा कारक तब भी हमारे पास बचा रह जाता है—विधि का कारक। इसका सीधे सा उपाय यह है कि हम ऊपरी दिखावट को बिसरा कर अचेतन व्यवस्था को पोसते रहें, उसे पनपाएं। यह करना कठिन नहीं है। बेहद आसानी से रचनात्मकता के माध्यम से यह किया जा सकता है। हां, ऐसा करते समय, यह जरूर संभव है कि आपकी कक्षा एकबारगी अव्यवस्थित दिखे, पर फिर भी अव्यवस्था का अहसास वह नहीं देगी। जब बच्चों की सारी ऊर्जा उचनात्मक निकासों से बह जाएगी तो जो कुछ बचेगा वह कमोबेश शांत ही होगा। मैं हर दिन रचनात्मक घंटों में शोरगुल से भरी एक विचित्र सी

शांति पाती हूँ। बच्चे उस वक्त किसी न किसी माध्यम से कुछ न कुछ रचने-गढ़ने में व्यस्त होते हैं। यह तो सच है कि जिस 'पा' (गांव) से हमारी शिशुमाला के बच्चे आते हैं, वह असंगठित भी है और बेलगाम जबान चलाने वाला भी। पर निराश मैं कभी नहीं हुई। क्योंकि यह संभावना तो है न कि कक्षा में पढ़ाया जाने वाला हर विषय रचनात्मक सारणी में डाल दिया जाए। ताकि ऊर्जा का बहाव, उसकी निकासी सकारात्मक दिशा में ही बनी रहे। हां, ऐसा करने पर शोरगुल होगा, पर फिर कोई न कोई कीमत तो हर चीज की चुकानी ही पड़ती है। मैं चेष्टा करती हूँ कि अनुचित आदतें उखड़ें और उचित आदतें ही बच्चों में पनपें। मैं मन में हर कक्षा का पहले से अभ्यास भी करती हूँ। मैं यह कोशिश भी करती हूँ कि बच्चों और मेरे बीच का रिश्ता परस्पर श्रद्धा और विश्वास का हो। मैं हर संभव प्रयास करती हूँ कि उनकी कार्यशैली परिष्कृत हो, निखरे। और हमेशा कक्षा के अंदाज के प्रति संवेदनशील रहने की कोशिश भी करती हूँ। पर सच तो यह है कि जिस शिक्षिका के पास उसका अपना स्वाभाविक अंदाज हो, अपना लहजा हो उसे सायस इतना कुछ करने की जरूरत भी नहीं है। कबीले की अशांति और 'पा' (गांव) की अव्यवस्था, और स्वयं अपने अंतस में दहकते अंगारों के बावजूद मुझे अपनी शिशुकक्षा में बराबर एक अस्थिर व्यवस्था का अहसास होता है।

और तब यह पता चलता है कि अचेतन और सचेतन व्यवस्थाओं में से केवल एक ही व्यवस्था सही है, उचित है। और वह है अंतस की गहराइयों की व्यवस्था। शिक्षक का या बच्चों का कैसा भी अंदाज क्यों न हो, उनका मिजाज भले ही कैसा क्यों न हो, यह व्यवस्था तो हरेक को उपलब्ध होती है। जब हम अंदाज के स्रोत को पकड़ने के लिए उसके भी परे, व्यक्तित्व के वातावरण के भी परे पहुंचते हैं, तब हमें वहां भी यही व्यवस्था मिलती है। वहीं बसता है वह निःस्तब्ध केंद्र।

कार्य पुस्तिका

शिक्षकों का कहना है कि उन्हें कार्य पुस्तिकाओं की जरूरत है। उनका यह भी कहना है कि काम के दबाव और उथलपुथल के बी श्रृंखलाएं और क्रम बनाना संभव नहीं है। सही समय पर सब कुछ उंगलियों की पोरों पर होना चाहिए। इसलिए सब कुछ पहले से सोचा जाना चाहिए। पूरी तैयारी पहले से ही होनी चाहिए। पर शांति के साथ सोचने के भी कई स्तर हो सकते हैं। सामग्री और विधि को सायास संक्षिप्त करने से लेकर किसी अवधारणा को प्रार्थना के स्तर तक भी ले जाया जा सकता है। प्राचीन काल के महान शिक्षकों ने अपने कर्म या कार्य को निष्कर्म या निष्क्रियता से ही पाया था,

पहाड़ी पर खड़े ईसा से लेकर : चाय के प्याले पर झुके लो तुग' तक ने। और यही कड़ी हम तक भी चली आती है। और सच मुझे नहीं लगता कि इन महान नामों को आज के नामों के साथ रखने में हमें झिझकना या शर्माना चाहिए क्योंकि उनका ध्येय भी वही था जो आज हमारा है—शिक्षा! शांति से चिंतन की प्रक्रिया से तो कोई शिक्षक हटा नहीं है न।

मैं जानती हूँ कि कई बार कार्य-पुस्तिकाएँ शिक्षकों को सोचने से मदद करती हैं। मैं यह भी स्वीकार करती हूँ कि कार्य-पुस्तिकाओं की व्यवस्था और विधि से बच्चों के मस्तिष्क प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। मुझे तो यह अंदेशा भी लगता है कि शिक्षकों के मन में ये कार्य-पुस्तिकाएँ एक भरोसेमंद शांति का भाव भी पैदा करती हैं। उनमें दर्ज टिप्पणियाँ शिक्षक को अवधारणा और क्रियान्वयन के बीच के चरण भी दे डालती हैं।

मैं तो यह भी आसानी से मानने को तैयार हूँ कि विषय या पाठ के बारे में जो कुछ एक शिक्षक स्वयं सोचता-समझता है, कार्य-पुस्तिका की समझ भी उसके ही समकक्ष होती है। असल में मतभेद का बिंदु न तो कार्य-पुस्तिका है, न ही यह बात कि उसे किस समय काम में लाया जाना चाहिए। असली मुद्दा तो यहाँ दूसरा है। वह यह कि मानव स्वयं में हमेशा ही अनेक रूपवाला है।

कुछ शिक्षक तो कार्य-पुस्तिका ठीक इस रूप में देखते भी नहीं। वे उसे विचार और क्रियान्वयन के बीच तो जरूर रखते हैं। पर उसे सीढ़ी के पायदान के रूप में नहीं देखते। उनके लिए तो कार्य-पुस्तिकाएँ उन दलालों की तरह हैं जो किसी चित्र-पट्ट पर खर्ची जाने वाली ऊर्जा का कुछ भाग बीच में ही झेल लेते हैं। लियोनार्दो दा विंची'' तो सीधे ही संगमरमर तराशते थे, रवींद्रनाथ ठाकुर भी अपनी कविताएँ स्वयं ही लिखा करते थे। मैंने यह भी कभी नहीं सुना कि यीशु को बोलने के लिए लिखित टीप बनाने की जरूरत पड़ी हो। ये सभी तो अपनी-अपनी विद्या के शिक्षक थे, पर इनमें से किसी ने कभी किसी दलाल पर भरोसा नहीं किया था।

जिस सीमा तक एक शिक्षक एक कलाकार है, (और प्लेटो की नजर में तो दोनों में कोई अंतर था ही नहीं) उस सीमा तक उसकी अंतर्दृष्टि बिना क्षीण या मंद हुए उस काम को देख सकती है जो वह करना चाहता है। और जो कुछ वह उस क्षण देख नहीं भी पाता उसके विषय में भी कलाकार के मन में यह आश्वासन होता है कि समय आने पर, आगे चलकर वह उसे भी स्पष्ट देख सकेगा। यानी यह जोखिम वह उठाने को तैयार होता है कि उसके काम में फिलहाल कुछ रिक्त स्थान रह जाएंगे। पर किसी दलाल को वह किराए पर नहीं लेता। वह सीधे सामना करना ही पसंद करता है। वह

** प्राचीन चीन के महान दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री

** मध्ययुगीन इटली के महान कलाकार जिनकी प्रतिभा बहुत-आयामी थी। वे एक साथ महान मूर्तिकार, चित्रकार और वैज्ञानिक थे।

उस पूरे विचार को अपने ही मस्तिष्क में बढ़ता-पनपता देखना चाहता है, पढ़ाते-पढ़ाते ही, उन पन्नों में नहीं जिन पर वह लिख रहा होता है। सोचने-विचारने के बाद वह सीधे बच्चों पर उन विचारों का उपयोग करना चाहता है। ऐसा करते समय उसे किताबों में पहले से दर्ज बिंबों का हस्तक्षेप भी नापसंद होता है। वह ऐसे काम करना चाहता है जो वह स्वयं स्पष्ट समझ रहा होता है, बिना द्वंद्व के, बिना अवरोधों के।

असल में तो यह भी सच नहीं है कि नोट्स या सारांश लिख लेने से हमेशा किसी शिक्षक के विचार साफ भी हो जाएं। बल्कि कुछ के लिए तो वे बंधन ही बन जाते हैं। और बंधनों से तो बचना ही चाहिए। मैंने बहुत छुटपन में ही यह सीखा था कि चित्र बनाते समय अपने प्रारंभिक रेखा-चित्र में जो अर्थ प्रस्तुत करना हो उसको अधूरा छोड़ दिया जा सकता है। मैं बहुत छोटी थी तभी से सोचने के बाद सीधे ही मिट्टी की मूर्ति गढ़ना शुरू करती थी। और यही तरीका था उन विचारों को मूर्त रूप देने का जो मेरे दिल-दिमाग में उपजे होते थे। और तब वह कलाकृति मेरी कोशिशों का अवशेष भर न रह जाती थी। बाद में जब मैं पढ़ाने लगी तो मैंने पाया कि अगर मैं हर काम के पहले कार्य-पुस्तिका की लिखित नोट्स का सहारा लेने लगूं तो मैं किसी दलाल को उसकी कीमत चुका रही होऊंगी।

और फिर किसी शिशुशाला में जहां हर गतिविधि एक अभिव्यक्ति हो, जहां हर विषय को रचनात्मक बनाया जा सकता हो, वहां तो किसी कार्य-पुस्तिका का सवाल ही नहीं उठ सकता। जहां इस सीमा तक रचनात्मकता हो वहां तो जीवन ही बसता है। और मैं तो कम से कम पहले से जीवन का नक्शा बना नहीं सकती। हम यह पहले से कैसे जान सकते हैं कि बच्चों की ओर से किसी दिन क्या आने वाला है ? मैं पहले से उस दिन का पाठ ही खुद लिखने वाले हों ? क्या शिक्षक हर दिन के ध्येयों का पूर्वानुमान लगाना चाहता है ? किसी शिशुकक्षा में जब शिक्षक सहज अभिव्यक्ति को ही सहेजने परोटने में लगा हो तो वह किसी कार्य-पुस्तिका की भविष्यवाणियों से कहीं अधिक महत्व बच्चों की मनोदशा और वातावरण के बदलाव को देना सीख लेता है।

जैसा कैल्डवैल कुक ने कहा था “एक प्रोफेसर नहीं, बल्कि एक कलाकार ही सच्चा स्कूल मास्टर है।”

नृत्य

नृत्य को मैं सुबह के उत्पाद घंटे में रखती हूं। प्लेटो ने कहा था कि यह ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें हर स्तर की क्षमता का पूरा सम्मिलन आवश्यक होता है—आध्यात्मिक, बौद्धिक, और शारीरिक। मैं भी यह मानती हूं। पर चूँकि मानती हूं

इसलिए जबरन नाचना सीखती हूँ, ऐसी बात नहीं है। हुआ यों था कि एक सुबह मैं स्वांत : सुखाय शूबर्ट बजा रही थी कि अचानक एक बच्चा उठा और अपने आप संगीत को नाचकर अभिव्यक्ति देने लगा। तब दूसरा, और फिर तीसरा। अचानक सब के सब नाचने लगे, अपने आप, अपने मन से। तब से नृत्य आया और आज तक हमारे साथ है।

हमारे नृत्यों में अधिकांश व्याख्याएं, भाव अभिव्यक्तियां बच्चों की अपनी ही होती हैं। फिर भी मैं यदा-कदा उन्हें नई भंगिमाएं और चालें बताती हूँ। ताकि वे उन्हें सीखें और इच्छानुसार उनसे काम लें। पर मैंने यह नहीं पाया कि वे स्वेच्छा से नए संगीत की व्याख्या में नई भंगिमाओं या चालों का इस्तेमाल करते हों। ऊपर से आरोपित करने की वही पुरानी कथा यहां फिर उभरती है।

शास्त्रीय संगीत के अलावा मैं कुछ नहीं बजाती। इसलिए नहीं कि वह मुझे पसंद है। बल्कि इसलिए कि स्वतः नाचने की प्रेरणा बच्चों को पहली बार शास्त्रीय संगीत से ही मिली थी। मैंने अब तक शूबर्ट (18वीं सदी के आस्ट्रियन संगीतकार), बीथोवन, चेकोवस्की, शापें (19वीं सदी के पोलिश संगीतकार), ब्राह्मास, ग्रीक की रचनाओं का उपयोग किया है। पर सच तो यह है कि मैं भी राह टटोल ही रही हूँ। क्योंकि आखिर नृत्य की मेरी खुद की समझ भी तो मेरे अपने सपनों तक ही सीमित है न। ध्येय तो मेरा यही है कि जिस तरह बच्चे चित्र बना कर, आत्मकथा लिखकर अपने को अभिव्यक्त करते हैं, वैसे ही नाच कर भी करें। पर इस स्थिति तक मैं अभी पहुंच नहीं पाई हूँ। वैसे तो नृत्य का समय भी सुबह के उत्पाद घंटे में ही है पर दिन में किसी भी समय अपने तनावों को काटने के लिए हम नाच लेते हैं।

* पर जब मैंने स्पिंस्टर लिखी तब लक्ष्य तक पहुंच सकी थी।

जीवन जो जिया नहीं

सभी विषयों को रचनात्मक सारणी की ओर मोड़ देना शिक्षक के लिए सब कुछ किस कदर आसान बना डालता है। सबसे पहली बात तो यह ही हो जाती है कि ऐसे में प्रयास और उपक्रम शिक्षक के नहीं रह जाते। वे तो बच्चों के खुद के ही बन उठते हैं। और दूसरी बात यह होती है कि शिक्षक को तब बच्चों की रचनात्मक तरंगों के विपरीत जूझना नहीं पड़ता। वह उनके बहाव के साथ तैर सकता है। डा. युंग ने कहा था कि अंतस का, मानस का जीवन एक ऐसी विश्व शक्ति है जो दुनिया की सभी दूसरी शक्तियों से कहीं अधिक ताकतवर है। डा. बरो ने भी कहा था कि हम अपनी सामूहिक भूलों का रहस्य रचनात्मक शक्तियों के दमन में ढूँढ सकते हैं। एरिक फ्रॉम का मानना है कि ध्वंसात्मकता का कारण ही वह जीवन है जिसे जिया न गया हो।

यानी बच्चों को रचनात्मकता के रास्ते पर चलना हमारे लिए व्यावसायिक क्षण मात्र नहीं है। बल्कि यह शिक्षा का एक सवाल भर भी नहीं है। न ही यह किसी एक अधि राज्य या किसी एक देश का सवाल है। यह सवाल तो अंतर्राष्ट्रीय है। मैंने तो सैकड़ों बार कहा है कि युद्ध की समाप्ति पर राजनायिकों को आपस में गाँठियाँ नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपना पूरा ध्यान शिशुओं की कक्षाओं की ओर लगाना चाहिए क्योंकि यही वह स्रोत है जहाँ युद्ध या शांति जन्मती है। कम से कम मैं तो सहज शिक्षा के सिद्धांत को इस रूप में ही देखती हूँ। जब दिमाग पूरी तरह लचीला हो, खुलापन लिए हो, तभी तो उसे रचनात्मक ढाँचे में ढालना संभव है। और यह शांति की दिशा में, नितांत विनम्र ही क्यों न सही, एक योगदान अवश्य है।

बच्चे के मस्तिष्क का पनपना, उसका क्रमशः विस्तृत होना कितना सुंदर होता है। और सौंदर्य ही में होता है संतुलन, सामंजस्य और विश्रान्ति। सच, समूची भाषा में 'विश्रान्ति' सा मोहक शब्द है ही नहीं। जीवन का, और उसके परे भी, हर उपक्रम विश्रान्ति की दिशा की ओर ही बढ़ता है न। फिर चाहे वह उपक्रम बच्चे को 'ऊपर उठने' का सामान्य उपक्रम ही क्यों न हो।

मेरे लिए शिशुकक्षा की गतिविधियों को युद्ध और शांति से अलग कर देखना कभी संभव नहीं हुआ है। अपनी इन आंखों से न जाने कितनी बार मैंने ध्वंसात्मक सारणियों को रचनात्मक गतिविधियों के आक्रमण के नीचे, क्रमशः सूखते देखा है। खासकर उन लड़ाका पांच साल के माओरी बच्चों में जो सैकड़ों की तादाद में मेरे हाथों से निकल चुके हैं और जो आते समय दिमाग में बास एक ही धारणा लेकर आए थे—लो और तोंड़ो, लड़ो और उसमें अक्वल आओ। रचना के अवसर न मिलने पर ये बच्चे सच में लड़ाई को ही अपने जीवन का ध्येय मान बैठते हैं। पर ध्वंस करने की इस प्रचंड

इच्छा को भी रचनात्मक निकास से क्रमशः बाहर निकाला जा सकता है। सच बताऊं तो मैंने तो यह भी पाया है कि जितना हिंसात्मक बच्चा होता है, उतनी ही अधिक रचना की ताकत उसमें होती है। जब वह किसी को लतियाता है, चटाई पर धरी दूसरों की उंगलियों को कुचलता है, पत्थर या लट्ट उठा दूसरों के सिर फोर डालना चाहता है तो मैं ऐसे बच्चे के हाथ में मिट्टी या चॉक थमाती हूँ। उस मिट्टी से वह बम बना सकता है, चॉक पकड़ कर मेरे जले घर का दृश्य आंक सकता है। पर हर बार ऐसा करने के बावजूद उसके रचनात्मक निकास पुष्ट होते हैं, ध्वंसात्मक सिकुड़ते हैं, चाहे सतही तौर पर देखने से इसके विपरीत ही होता क्यों न दिखे। सच पूछें तो मुझे तो ब्लैक बोर्ड पर चॉक से बनाए गए हथियारों से कहीं ज्यादा भय उन हथियारों से लगता है जिनका शब्दों में हम बयान नहीं कर सकते।

इस पृष्ठभूमि को मन में रख कर ही मैं यह प्रयास करती रही हूँ कि लिखना या पढ़ना ही नहीं, बल्कि जितने संभव हों उतने विषयों को रचनात्मक सरणी के सामने ला खड़ा करूँ। आखिर सभी विषयों को रचनात्मक सरणी में ला पाना ही तो सहज शिक्षण है। और ऐसा करना शिक्षक का काम भी तो कितना सरल बना डालता है न। किसी को कूची थमा चित्र बनाने देना, पेंसिल थमा लिखने देना, किसी बच्चे की लिखी कहानी किसी दूसरे को पढ़ने को देना। सहजता में कितनी सुरक्षा है। है न? यहाँ प्रारंभ में बेजान पाठों को बच्चों पर थोपना नहीं पड़ता, न ही मरी हुई शब्दावली नन्हें से पौधे पर एक ढाँचा बांध दिया गया हो ताकि बढ़कर वह एक कृत्रिम आकार ले ले। बच्चे के स्वाभाविक विस्तार पर लगे उन बंधनों की बात अनायास मन में उठती है जिनका उल्लेख एरिक फ्रॉम ने किया था उस जीवन की बात जिसे जिया न जा सका हो। और ऐसे बंधनों का परिणाम तो केवल हिंसा और विध्वंस ही हो सकता है न। 'और तब एक बढ़ते पनपते घने वृक्ष के स्थान पर एक गठीली और बौनी झाड़ हाथ आती है।' असल में परेशानी इस बात की है कि स्कूल में शिक्षक के सामने आने के बहुत पहले ही आज के आधुनिक सम्मानित परिवारों में बच्चे, आचरण और व्यवहार के एक बेहद संकरे खांचे में जकड़ दिए जाते हैं। फिर भी मुझे लगता है कि साल भर के सहज क्रिया कलापों के बाद, बिना किसी गंभीर हादसे के उन्हें बेजान शब्दावलियां भी दी जा सकती हैं। और तो और बाहरी उत्तेजकों (स्टिम्यूलस) और मानक अंग्रेजी के प्रति श्रद्धा के कारण शायद ऐसी निर्जीव शब्दावलियां वांछनीय तक बन उठती हैं।

पर केवल उसी स्थिति में, जब पहले सहजता की नींव पड़ चुकी हो। परिचित से अपरिचित की ओर बढ़ने की अवधारणा कोई नई बात तो नहीं है। गड़बड़ तो पैदा ही तब होती है न जब शुरूआत ही असहज पठन के आरोपण से हो। ऐसा आरोपण समन्वय को असंभव बनाता है क्योंकि आखिर बच्चे के सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व पर ही

तो सब कुछ निर्भर करता है। असल में हम अंदर से बाहर की ओर बढ़ने का सौंदर्य देखना ही भूल चुके हैं। और तो और हम नींव की बात भी भूल चुके हैं। मैं अकसर एक ऐसे सेतु की बात करती हूँ जो 'पा' (गाँव) को यूरोपीय संस्कृति से जोड़ता हो पर बच्चे किसी भी नस्ल के क्यों न हो, उन सबके लिए एक ही सेतु को अपनाया जा सकता है : ऐसे सेतु को जो अंदरूनी दुनिया को बाहरी दुनिया से जोड़ता हो। यही होता है सहज शिक्षण। समन्वय तक पहुँचने का यह अपरिहार्य चरण है। इस चरण को भुलाने के कारण ही हमें पूरे न्यूजीलैंड के बच्चों में एक-रूपी (वन पेटन्ड) दिमाग मिलते हैं जिन पर अमरीकी जनसाधारण के मस्तिष्क (मास-माइंड) की छाप लगी हो। बाहरी जगत में आज पहले से ही रेडियो, चित्रकथाओं और फिल्मों का ऐसा प्रभाव है कि स्कूल की दुनिया में हम चाहकर भी उसके व्यक्तिगत विकास को अनदेखा नहीं कर सकते। इस तर्क को अगर हम स्वीकार लें तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि जब तक बालक का मस्तिष्क अपना नितान्त निजी आकार न ले ले, तब तक उस पर आरोपित पठन हम थोप ही नहीं सकते। यह एक-रूपी मस्तिष्क किसी तरह बढ़ और पनप रहा है उस पर मैं बराबर बड़ी आसानी से नजर रख पाती हूँ। मेरे पास विचित्र वेशभूषा के लिए कोई 70 पोशाकें हैं जो मैं बच्चों को इस्तेमाल करने के लिए देती हूँ। पर होता यह है कि हरेक को कुछ चुनींदा पोशाकें ही चाहिए होती हैं, दूसरी नहीं। सच, अगर आप दर्जनों काउबॉय और काउगर्ल पोशाकें बनवा लें, सैकड़ों सुरपर मैन की और हजारों राकेट मैन की, और उनका किराया भी फी पोशाक एक रुपया भी तय कर लें तो कुछ ही समय में न केवल आप अपनी लागत की पाई-पाई वापस पा लेंगे बल्कि इतना पैसा कमा लेंगे कि आप आसानी से सेवा निवृत्ति हो बाकी जिंदगी बाग में बैठे-बैठे काट सकें। मेरे पास विश्व भर का चुनिंदा कथा साहित्य भरा पड़ा है। बो बीप, चाइनीज मैडरिन, पीटर पैन और डायन आदि आदि। पर ये तमाम किताबें इस कदर धूल खाती रहीं कि बाद में उन्हें उठा कर ताक पर धर देना पड़ा। बच्चों की यह एकरूपता कितनी उबाऊ हो सकती है न, उतनी ही जितनी मौत है।

अहिंसक शांति के उपदेशों से भरी किताबें लिखकर शिशुमालाओं में भेज देना शांति की राह नहीं है। इनसे हम सतह पर खरोंच तक नहीं डाल सकते। आज तक किसी बच्चे ने जैनेट और जॉन पोशाकों की मांग नहीं की है। विध्वंस का उत्तर एक ही है—रचनात्मकता। यह शाश्वत सत्य है। यह न पहले बदला था और न ही आगे कभी बदलेगा। और जब मैं यह दोहराती हूँ तो उस वक्त मेरा साथ अनेकों महान विभूतियां देती हैं।

एक बात मैं न्यूजीलैंड के समाज के बारे में बिलकुल स्पष्ट देख पाती हूँ। वह यह है कि इस समाज के लोगों के आंतरिक स्रोत पूरी तरह क्षीण हो चुके हैं। जो वे चाहते

हैं उसे अंतस में ढूँढने की चेष्टा वे शायद ही कभी करते हों। आखिर आज बाजार में भौतिक जरूरतों को पूरा करने वाली चीजों से लेकर विचार तक पहले से तैयार (रेडीमेड) मिलने लगे हैं। घरेलू मशीनों से लेकर फिल्मों से उतारी उत्तेजना तक सब कुछ तो बिकता है दुकानों में। लोग चाहें तो पूरा जीवन ही रेडियो या फिल्म के रूप में खरीद लें। डिब्बा बंद जीवन।

और जो पहले से बना बनाया बाजार में बिकता नहीं, उसे ढूँढने के मकसद से समाज के लोग अगर अंदर को बढ़ते या झाँकते भी तो शायद वहाँ कुछ पाते भी नहीं। आखिर अंदर तो सब कुछ कब का सूख चुका है न। उनके हाथों में तो बचपन से ही चमचमाते खिलौने पकड़ाए गए थे, और शिशुशाला में झकमक चित्र और पढ़ने की खुश खुश सामग्री। फिर अपने लिए क्यों सोचा जाए, क्यों कल्पना की जाए? उसकी जरूरत भी भला कब आन पड़ी थी ? ओर तब धीरे-धीरे सोचने की, कल्पना करने की ताकत भी फुर्र हो गई। अब तो अंतस में कुछ भी नहीं बचा है। दिमाग का असीमित विस्तार जो रचनात्मक कार्यों से भरा-पूरा हो सकता था, उस जगह तो अब केवल वीरान और सूखा रेगिस्तान ही है न। और ऐसे में तो आराम सतत चलने वाले रेडियो से ही मिल सकता है न। और तभी तो उनकी बातचीत इस कदर एक रस और नीरस होती है।

पर ऐसा क्यों हुआ यह मैं पूरी तरह कभी समझ नहीं पाई हूँ।

जहाँ तक देख और समझ पाई वहाँ तक तो यह लगा कि आधुनिक शिक्षा का ध्येय तो इसके ठीक विपरीत ही था। ध्येय था कि बच्चों को स्वतः उनके अपने तरीके से रचनात्मक और रोचक व्यक्तियों में बढ़ने-पनपने दें। तो फिर यह हादसा क्या मानक पाठ्य पुस्तकों के कारण घटा ? या समेकन (कन्सॉलिडेशन) के कारण ? क्या शिक्षकों का स्तर इसका जिम्मेदार है ? या फिर यह फिल्मों और रेडियों का प्रभाव और विलास की वस्तुओं की गुणवत्ता के कारण हुआ ? या ऐसा हुआ है कि इन माध्यमों ने घटिया सामग्री का प्रचार प्रसार किया है ? इरादे कहां असफल होते हैं, यह मैं नहीं जानती। पर परिणाम हमारे सामने है। वह यह कि हजार में से नौ सौ नित्यानवे लोग एक ही साँचे में ढले लगते हैं।

कुछ दिनों पहले अपने प्रोफेसर मित्र से मैंने पूछा था कि 'आपके पास विश्वविद्यालय में कैसे विद्यार्थी पहुँचते हैं ? उनका जवाब था 'सब बिलकुल एक जैसे होते हैं।' मैंने शंका जताते हुए आगे कहा 'यह कैसे संभव है जब प्राथमिक शिक्षा का ध्येय ही अनेकता को पुष्ट करना है?' पर प्रोफेसर साहब ने फिर यही कहा कि 'मेरे पास आने वाले विद्यार्थी तो मानो किसी कारखाने या मिल के बने नमूनों से एकरूप होते हैं। उनमें से एक भी छात्र स्वयं अपने लिए सोच तक नहीं सकता। मैं उनसे बराबर यही आग्रह

करता हूँ कि मैं जो कुछ उनके लिए परोसूँ वे पलट कर मेरे लिए वहीं का वही न परोसा करें। मैं तो अकसर बिलकुल गलत तथ्य और बातें भी उन्हें कहता हूँ। उन्हें चुनौती देता हूँ कि वे मेरा विरोध करें। पर इसका भी कोई असर नहीं होता।' मैंने तब कहने का साहस किया था कि कम से कम तीन फीसदी मौलिकता तो उन विद्यार्थियों में होती ही होगी। उनका जवाब था 'हजार में एक'। पर पांच साल की उम्र में तो दिमाग सांचों में ढला नहीं होता। कितना उत्तेजक विचार है यह। यह सच है कि कई बार मेरे पास अति-अनुशासित यूरोपीय परिवारों में पले बच्चे भी आते हैं। उनके सम्मान्य माता-पिता ने उन्हें इस कदर दबा देते हैं कि उनका व्यक्तित्व पहचाना तक नहीं जा सकता है। पर माओरी बच्चे तभी ऐसे नहीं होते। आमतौर पर पांच साल का कोई माओरी बच्चा उबाऊ नहीं होता। यानी शिशुशाला में अब तक यह संभावना बची हुई है कि आप किसी रोचक और बिना सांचे में ढले एक व्यक्तित्व को अपने सामने पाएँ। मैंने अपने प्रोफेसर बंधु से कहा कि 'शिशुशाला में अभी भी बच्चों की निजता मिलती है। पर मेरी शिशुकक्षा से विश्वविद्यालय की राह में यह कड़ी कहीं टूट जाती है। पर मैं यह नहीं मानती हूँ कि शिक्षा योजना को हम इस हादसे के लिए जिम्मेवार ठहरा सकते हैं।'

शिशुकक्षा से विश्वविद्यालय तक की शैक्षिक-गाथा तो एक पूरा उपन्यास लिखने की सी बात होगी। और जब तक हम अपनी कथा की समाप्ति को न जांच परख लें तब तक हम अपने प्रारंभ के बारे में कैसे आश्वस्त हो सकते हैं ? क्या यह संभव नहीं है कि कभी-कभार विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर शिशुकक्षाओं में और शिशुकक्षाओं के शिक्षक विश्वविद्यालयों में झांक सकें ? पिछले साल दो दूसरे प्रोफेसर भी हमारी शिशुकक्षा में आए थे और सच, न केवल वे पूरी तरह हमारे अंदाज के स्वर से स्वर मिला पाए थे बल्कि उनका आना हमारे लिए सहायक भी सिद्ध हुआ।

इस संदर्भ को अगर मन में रखें तो शिशुकक्षा का मकसद होगा सहज विचार को पुष्ट करना,

आंतरिक स्रोतों को बचाए रखना,

अंतर्दृष्टि को अभ्यास देना, उसे पैनी बनाना, और

बच्चे की निजता को उसके असली व्यक्तित्व को दीर्घकालिक बनाना।

मुझे अननुमेयता और अनेकता पसंद है। नाटकीयता अच्छी लगती है, मुझे उल्लास और खुशमिजाजी पसंद है। विश्व में शांति की कामना भी मैं करती हूँ। मुझे दिलचस्प व्यक्ति अच्छे लगते हैं। इसका सीधा सा मतलब यह है कि मुझ जीवन का स्वाभाविक, सहज रूप-आकार प्यारा लगता है। और यही मिल सकता है किसी शिशुकक्षा में, बशर्ते कि रचनात्मक सरणियों का विस्तार होता रहे। क्योंकि शैली तो यहीं जन्मती है न; लिखने की भी, कला की भी। और कला आखिर क्या है? किसी काम को करने का तरीका ही न। और अगर शिक्षा कला पर आधारित हो तभी वह तत्काल एक विशिष्ट

शैली को झलकने में समर्थ होती है।

पिछले दिनों एक बहुत ही रोचक शब्द हमारे बीच आया—‘खटारा’। ब्राएन ने लिखा ‘मैं शहर गया था। मैं खटारा बस में लौटा।’ हम सब शब्द से उद्वेलित हो उठे। बच्चों ने तमाम सवाल पूछे। खुलासा कर जानना चाहा कि आखिर खटारा बस थी कैसी? बच्चों ने पाया कि खटारा बस का मतलब एक ऐसी पुरानी बस से था जिसके सारे अंजर-पंजर ढीले हो चुके हों। शब्द तुरंत समझ लिया गया पर फिर भी हिज्जे करने वाले शब्दों की सूची में वह बारबार आता है। ब्राएन बीच बीच में कहता है कि कुछ दिनों से खटारा के हिज्जे नहीं किए गए। उसे इस शब्द के हिज्जे करना बेहद पसंद है। जब मैं बच्चों की अपनी रुचि, उनकी अपनी गति की बात कहती हूँ तो मेरा यही तात्पर्य होता है। शिक्षकों के लिए तब सब कितना आरामदेह और सुखदाई बन जाता है।

किसी भी शिशुकक्षा में युद्ध और शांति हमेशा ही अपरिहार्य रूप से परस्पर स्पर्धा के लिए घात लगाए बैठे होते हैं।

यह सच है कि खिलौनों की दुकानें आज बंदूकों से पटी पड़ी हैं, नन्हें लड़के हाथों में टैंक और लड़ाकू जहाज थामे रहते हैं और मिट्टी की पाटियां, ब्लैकबोर्ड और चित्र का कागज भी युद्ध के ही खेल को आकार देता है। पर मैं निश्चित हूँ। मेरा सरोकार रचनात्मक रुझानों को बढ़ाना, पल्लवित करना भर है। क्योंकि जीवन के इस पालना-गृह में रचनात्मकता ही लोगों को बदल सकती है। रचनात्मकता ही ध्वंसात्मक हिंसा हो हरा नहीं तो कम से कम चुनौती तो दे ही सकती है। शिशुकक्षा की हर घटना या तो रचना होती है या विध्वंस। हरेक चित्र, हरेक आकार, हरेक वाक्य, हरेक नृत्य इस या उस तरफ ही जाता है। क्योंकि जैसा एरिक फ्रॉम ने कहा था ‘जीवन की निज की एक अंतर्गति होती है, वह विस्तृत होता है, अभिव्यक्त होने के लिए, जिए जाने के लिए। किसी बच्चे को ध्वंसात्मकता उतनी ही होती है जितना उसके जीवन के स्वाभाविक विस्तार को सीमित किया गया हो। विध्वंस तो उस जीवन का ही परिणाम है जो जिया न जा सका हो।’

इस बात पर मेरा उतना ही अटूट विश्वास है जितना किसी कलाकार का उसकी कूची पर होता है या सड़क पर काम करने वाले किसी मजदूर का अपने फावड़े का। हर काम में, खासकर एक शिक्षक के काम के लिए, एक प्रारूप, एक आकार होना आवश्यक है। और मेरा प्रारूप कहता है कि जीवन के उस हिस्से में, जिसमें चरित्र सदा के लिए प्रभावित होता है, अगर रचना के अवसर मिल सकें तो ही हमें युद्ध का समाधि भी मिलेगा। मेरे लिए यह विचार भौतिकी के नियमों की सी प्रामाणिकता लिए हुए हैं। उसी में है सौंदर्य का संपूर्ण और अदमनीय आवेग, जिसे शब्दों में बांधना असंभव है।

दैनिक लय

9.00 से 10.45 उच्छ्वास

	बातचीत	रोना
सुबह का	चित्र बनाना	झगड़ना
	रचनात्मक लेखन	ब्लॉक्स
	मिट्टी	रचनात्मक नृत्य
जैविक	रेत	मूल शब्दावली
	पानी	जैविक शब्दावली
क्रिया	रंग	गुड़िया
	गुड़िया के कपड़े धोना	नाव
कलाप	गीत	चॉक
	दिवास्वप्न	प्यार करना

11 से 12

स्वास

मूल शब्दावली नन्हें मुन्नों के लिए—चौथाई घंटा

जैविक शब्दावली

जैविक पठन

जैविक चर्चा

कहानियां, चित्र, नन्हे-मुन्नों के लिए चित्र पुस्तकें

1 से 2	उच्छ्वास स्वर्णिम भाग नन्हों के लिए प्लास्टिक माध्यम	दोपहर	बाद
2.10 से 3	श्वास मानक शब्दावली मानक पठन मओरी पुस्तकों की शब्दावली क्रिया माओरी पुस्तक पढ़ना सहायक पठन कहानियां, गीत, कविताएं नन्हें मुन्नों के लिए अक्षर	का मानक क्लाप	

एक माओरी स्कूल में जीवन

डायरी के कुछ पन्ने

“माओरी बच्चों के साथ काम कैसा चल रहा है ?” अपने स्कूल में आई एक अतिथि-शिक्षिका से मैं पूछती हूँ।

“ओह, उनकी ऊर्जा से परेशान हूँ। कभी स्थिर नहीं रहते, हमेशा हलचल होती रहती है। पर अगर एक बार उनकी गर्दन पर ठीक से पैर जमा लो, तब दुरुस्त हो जाते हैं वे।”

मैं समती हूँ ... समझती हूँ मैं ...।

सच, समझती हूँ। पर बोलती नहीं। कतई यह चेष्टा नहीं करती कि अपनी इस नई नस्ल की ऊर्जा का बयान किसी से करूँ। इस ऊर्जा-शक्ति शब्द का प्रयोग राई का पहाड़ बनाना नहीं है बल्कि बात को कम करके ही कहना है। यह तो एक ज्वालामुखी के सामने खड़े होने के समान है। कम से कम मेरी शिक्षकता में तो खड़े हो पुरानी शांत परंपरा से कुछ भी पढ़ाने की चेष्टा करना कल्ल, पागलपन और आध्यात्मिक मौत की सी बात होगी। और बिना खड़े हुए बैठे-बैठे पढ़ाने की तो बात तक सोचना वहाँ असंभव है। उपाय एक ही है, उन्हें अपने आप पढ़ने देना। यही कारण है कि मैं ऐसा करने पर बाध्य हुई हूँ।

सच, यही करती हूँ मैं। खुद पीछे हट जाती हूँ। ठीक वैसे ही जैसे किसी सभा में कोई सभापति करता है। और तब अपनी कक्षा को स्वयं पढ़ने देती हूँ। आगे आकर तो बस एक ही चीज सिखाने की चेष्टा करती हूँ-शैली। सच, यही तो सिखाती हूँ मैं, हर विषय के बारे में। और तब बाकी सब कुछ स्वतः खिंचा चला आता है। मैं शैली भर सिखाती हूँ...केवल शैली।

इस राह को पकड़ने के लिए व्यक्ति को या तो बहादुर होना पड़ता है या नितान्त दुस्साहसी। पर अंततः यही वह रास्ता है जो चौड़े, खुले और लहलहाते खुशनुमा खेतों की ओर ले जाता है। साहसी नहीं हूँ मैं, पर मैं उन लहलहाते खेतों तक पहुँची हूँ। मैं यह भी अच्छी तरह से समझती हूँ कि ये खेत बेहद शोरगुल से भरे हैं। क्योंकि आखिर मेरा शिक्षक दिमाग भी तो अतीत की मौन-परंपरा में गढ़ा-ढला है न। पर मैं तो इन्हीं शोरगुल वाले खेतों को समझ पाती हूँ। इन्हीं में आस्था है मुझे-व्यावसायिक अलगाव के रूप में, अपराध बोध के रूप में। यह अपराध बोध ऐसा है जिसे निर्मूल करना असंभव है। बचा नहीं जा सकता इससे। यह तो क्षय रोग की तरह धीरे-धीरे मेरे भीतर

पैठ रहा है। पर फिर भी हम सब, मैं और मेरे बच्चे, इन्हीं लहलहाते खेतों में डेरा डाले जमे हुए हैं।

घंटों बैठकर, सब कुछ ध्यान में देखकर, सोचकर, गुनकर (ये सारे के सारे अव्यावसायिक लक्षण हैं न) मैंने उस वस्तु के दुश्मनों को पहचाना है जिसे हम शिक्षण कहते हैं। दो शत्रु पहचाने हैं मैंने।

पहला शत्रु है बच्चों की एक दूसरे में अक्षमनीय रुचि। ऐसा दुश्मन है यह जो शिक्षा के सारे पारंपरिक तौर-तरीकों, विधि-विधानों की धज्जियां उड़ा डालता है। काश कि बच्चे एक दूसरे से बतियाना, एक दूसरे से खेलना, एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना और एक दूसरे को प्यार करना भूल सकते। इतना ढेर सा नाजायज और गैर-कानूनी संप्रेषण चलता रहता है न किसी कक्षा में। और हार कर, अपने ही बचाव के लिए इसका इस्तेमाल करना पड़ता है। सो, इसी संप्रेषण पर अपनी जीन कसती हूँ मैं। इसलिए, इस पर काबू पाना असंभव है। इस संप्रेषण पर ही गढ़ती हूँ मैं अपनी पद्धति। जोड़ों में पढ़ते हैं मेरे बच्चे एक एक कर, एक एक वाक्य। और तब दोनों ही साथियों को उकताने का समय नहीं मिल पाता। हरेक दूसरे की भूल सुधारता है, चाल सुस्त हो तो चुस्त बनाता है। क्योंकि आखिर उसकी बारी तो उसके साथी के ही बाद आ सकती है न। सच, जोड़ों में बैठकर वे एक दूसरे को सब कुछ ही तो सिखा डालते हैं। फिर चाहे वे पालथी मार, घुटनों से घुटने जोड़ें, चटाइयों पर बैठें हों या मेज-कुर्सी पर। आपस में बहस करते करते, नाराज हो गालियां निकालते या एक दूसरे को देख मुस्काते-मुस्काते। हमेशा उनके बीच यह 'साथ-साथ' का भाव बना रहता है। यानी 'सीखना' तब 'संबंध' के साथ इस कदर घुलमिल जाता है कि वे एकमेक बन उठते हैं। सच, 'संबंध' एक ऐसा रचनात्मक माध्यम है जिसकी गुण-प्रशस्ति किसी ने गाई ही नहीं है।

और इस नई कौम की दूसरी बीमारी है चीजें गढ़ने-बनाने की ललक। काश ये बच्चे भी गोरे बच्चों की तरह हाथ पर हाथ धरे उस समय तक चुपचाप बैठ सकते जब तक उन्हें यह न समझा दिया जाता है कि उन्हें क्या और कैसे करना है ? न जाने कैसे-कैसे प्रक्षेपास्त्र वे किन-किन चीजों से बना लेते हैं, और तब उनके साथ पूरे कमरे में शोर मचाते-भागते फिरते हैं।

शोर, शोर, शोर, हां शोर। पर अगर आपको शोर नापसंद है तो कम से कम आपको शिक्षक नहीं बनना चाहिए था क्योंकि बच्चे तो ऐसे जंतु होते हैं जो शोर करते ही हैं। खासकर इस नई प्रजाति के बच्चे तो मेरी जानकारी में आए दूसरे सभी बच्चों से कहीं अधिक शोर करने वाले हैं। पर चूंकि यह शोर स्वाभाविक है, इसलिए सहनीय भी है। अकसर ही तो किसी की गुस्से भरी चीख, दोषारोपण की पुकार, तार-सप्तक के स्वर

में किसी का रोना, धमाके के साथ किसी चीज का गिरना सुनाई पड़ता है। पर साथ ही सुनाई देती है खुशी से निकली एक आवाज, मस्ती से भरा कोई गीत और जोर से किलकारी मार हंसने की ध्वनि। यह सब इस बात के लक्षण हैं कि ऊर्जा का निकास हो रहा है, और यह तो शिक्षक के लिए सहायक ही होता है न। मैं सब कुछ निकल आने देती हूँ, बशर्ते वह निरापद हो। और तब इस सबका ही इस्तेमाल भी करती हूँ मैं।

सब कुछ ही तो काम में लेती हूँ मैं। वे सुबह सबसे पहले अपनी कापियों पर लिखते हैं ताकि जब पढ़ने का समय आए तो वे उन्हें पढ़ें। और पढ़ते समय... पर यह तो पद्धति की बात है न, उस ओर अगर बढ़ी तो मूल विषय से कोसों दूर भटक जाऊंगी। बात हो रही थी गरदन पर जमा लेने की।

अगर ऊपर जबरन से लगाए गए ढक्कन खुल गए हों तो आत्मा किस कदर जंगली लगती है न। मैं अभी भी इसी कोशिश में लगी हूँ कि उसे उड़ने तो दूँ, पर फिर भी अनुशासित कर। ऐसे अनुशासन को परिभाषित करना कठिन होगा। उड़ान के विस्तार और आत्मा के पेरों का होना तो जरूरी होगा ही ... तेज अंधड़ों का सामना करने और चहचहा कर गाने की छूट भी देनी हो तो अनुशासित मस्तिष्क की महत्ता को भी स्वीकारना ही पड़ता है। हमारे इस कमरे में एक बाहरी अनुशासन है और एक आंतरिक। मैं कुछ कहूँ उसे ध्यान से सुनना और उसे मानना यहां जरूरी है। पर यह मैं जरूर कहूँगी कि मैं हर समय कुछ न कुछ नहीं बोलती रहती हूँ। और जो कहना हो उसे ठीक से तौल भी लेती हूँ। पर इन दो स्थितियों के बीच का अंतर, यानी आत्मिक स्वतंत्रता और बाहरी अनुशासन के बीच का फासला, नट के लिए तानी गई रस्सी से भी अधिक संकरा है। और शायद ही कभी वह समय आता है जब मैं यह कह सकूँ कि मैं उस पर चल सकी हूँ।

यह ज्वालामुखीय ऊर्जा जन्मती है प्राचीन और नवीन नस्लों के मिश्रण से। बहुत शक्ति है इसमें, असीमित तेज—पर फिर भी दिशा है इसकी। इस शक्ति को दिशा देने का प्रयास पहले पहल किस कदर थका देता था मुझे। आखिर निकास सरणियों को बदलना कोई निरापद काम तो था नहीं। ये सारे नन्हें माओरी तो अंदर तक 'लो और तोड़ो, लड़ो और अव्वल रहो' से लबालब भरे होते हैं न, पर जो कुछ मैंने किया वह शायद उतना बड़ा जोखिम उठाना भी नहीं था जितना कि उस झंझावाती तेज ऊर्जा के सामने खड़े रहना होता। कभी-कभार जब जनजातीय कबीलाई उत्तेजना की लहर स्कूल में उठती है तो आवेश और उद्वेगों के उस तूफान में हम आकंठ डूब जाते हैं। यहां तक कि हमारे मार्ग-पट्ट भी डूब जाते हैं। और तब यों डूबते हुए हम इन बच्चों की गर्दन पर जमे अपने पैरों की बात सोच सकते हैं। पर मैं जानती हूँ कि इन प्रलयकारी बाढ़ों के साथ उपजाऊ माटी भी आती है। ढेरों सामग्री आती है, काम करने की दिशा आती

है। सो हम इन लहरों के उठते ही अपनी सांस थाम लेते हैं और आंतरिक अनुशासन पर भरोसा रखते हैं। और फिर यह सब कम से कम जीवंत तो होता ही है न, उने लिए भी और मेरे लिए भी। और सच मानिए इस तूफानी दौर के बाद जितनी रचना होती है—खासकर लिखित किताबों के रूप में—उसकी मैं कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हूँ।

फिर भी कहना चाहती हूँ कि मैं अनुशासन की कायल जरूर हूँ। बस बात सिर्फ इतनी है कि मुझे ऊपर से ढांप दिए गए ढक्कन पसंद नहीं हैं। मुझे जो कुछ भी बच्चे के मस्तिष्क में है उसे झांककर देखना अच्छा लगता है। मुझे अननुमेयता, अस्थिरता पसंद है, उल्लास पसंद है मुझे और पसंद है रोचक, सरस लोग। कोई छोटी से छोटी ही घटना क्यों न हो, या कि ऐसी कोई घटना जो बेकाबू हो, या कोई प्यारी सी घटना। जो कुछ भी जीवन में है, वह सब सामने आए यही पसंद है मुझे। हर तरह के ढक्कनों और परदों से नफरत करती हूँ मैं। मुझे तो जीवन का असली रूप, सच्चा आकार ही चाहिए, स्कूल में भी। सहज आकार से प्रीति है मुझे।

“पर अगर एक बार उनकी गर्दन पर ठीक से पैर जमा लो तब दुरुस्त हो जाते हैं वे।”

“मैं समझती हूँ यह। सच, समझती हूँ मैं। पर संप्रेषण और रचना पैरों से कहीं अच्छे शिक्षक हैं।”

पर इस ऊर्जा को मैं अब तक ठीक-ठीक परिभाषित नहीं कर पाई हूँ। उसे अगर समझना हो तो उसे अपनी आंखों से ही देखना होगा, मेरा मतलब यहां उस ऊर्जा से है जो ढक्कन उठाने पर, परदा हटाने पर दिखती है। फिर भी इस बारे में मैं कुछ नहीं कहती। आखिर इस छोटे से देश में बसी अल्पसंख्यक नस्ल के बच्चों की हमारी यह छोटी सी शिशुशाला कितनी महत्वपूर्ण है न। अगर साथ ही यह भी सोच कर देखें कि यह देश भी एक नन्हें से नक्षत्र में बसा है जो तुलनात्मक दृष्टि से एक युवा ब्रह्माण्ड का भाग है तो हम कितने छोटे हो जाते हैं न। मेरे लिए तो यही काफी है कि “छोटी से छोटी चीज मुझे उद्वेलित कर जाती है जबकि वृहद वस्तु एक कंपन तक पैदा नहीं करती।”

आज सुबह मेरा नया गोरा बच्चा मार्क मेरे पास आया। “मेरा एप्रन चोरी हो गया है,” उसने उत्तेजना और आत्मसमर्पण के मिश्रित भाव में कहा।

“ऐसा नहीं कहो” मैंने सायास सीखे शिशुशाला मार्का धीरज को त्याग तलखी से कहा, “यहां किसी को चीजें चुरा लेने की आदत नहीं है।”

अब उसके चेहरे पर आत्मसंतोष का भाव था। आखिर था भी वह एक दंभी मध्यवर्गीय अनभिज्ञ परिवार का ही संतान। “मेरी मेज पर तो है नहीं। वहीं रखा था मैंने।”

“मैंने तुम्हें कहा था न” मैंने कुछ और गर्मी से भूरे चेहरों और नन्हें बच्चों की आवाज को भेद कर कहा “कि शुक्रवार को उसे धुलवाने के लिए घर ले जाना। वहीं छोड़ आएंगे।”

“नहीं है।” पर माओरी शिशुशाला की जीवंतता के बीच कोई संवाद लंबा नहीं खिंच सकता। दूसरी आवाजों और हलचलों ने मार्क को मेरी बाहरी और आंतरिक दृष्टि से दूर धकेल दिया।

“आखिर घर पर ही मिला न उसका एप्रन” मैंने दोपहर का खाना खाते समय शिशुशाला छाप धीरज को त्याग सावेश कहा “उसने देखा तक नहीं था। कभी देखते भी नहीं हैं ये गोरे बच्चे। हरेक पाखेहा (गोरे लोगों के लिए काम आने वाला माओरी शब्द) के लिए किसी चीज के न मिलने का एक ही अर्थ होता है कि किसी माओरी ने चुरा लिया होगा। उसे खुद को यहां आए सप्ताह भर नहीं हुआ, इतने में उसने यह कैसे जान लिया होगा कि माओरी बच्चे चीजें उठा लेते हैं या नहीं ?”

“सच”, के. ने अपना टमाटर काटते हुए कहा “पर एक बात पर तो गौर करो कि अगर हमारे बच्चे ऐसे परिवारों में से आते हैं तो हम कितना कर पाएंगे उनके लिए ?”

“श्रीमती हैंडरसन, मेरा झाड़न किसी ने चुरा लिया है।”

एक और गोरा बच्चा। मैं पास बैठे पढ़ते हुए माटाव्हेरो पर से नजरें हटा कर ऊपर को देखती हूँ, अपनी गर्द लाल होने का अहसास ही रहा है मुझे ...।

“वह, वह, वह तो उसकी मेज पर ही रखा है।” माटाव्हेरो चिंतित हो हकलाने लगता है।

“उसने देखा तक नहीं था” मैं फिर के. को बताती हूँ। बड़ी बच्चियां उस समय शिशुकक्षा का फर्श साफ कर रहीं थीं। “और वह तो एक-दो महीने से यहां है। उसे तो पता होना चाहिए था कि माओरी बच्चे चुराते हैं या नहीं।”

के. ने कुछ सोचते हुए जवाब दिया “लगता है इस घर पर स्कूल का कोई प्रभाव पड़ा ही नहीं है।”

“उसने देखने की जहमत तक नहीं उठाई थी।”

“हां, सोचने पर बाध्य करता है न, यह सब।”

मैं घर पर बैठी माओरी पाठमालाओं के तीसरे संस्करण पर काम कर रही थी कि के. ने मेरे कमरे में झांक कर कहा “दो माओरी बहनों को दोपहर की चाय के लिए बुला लाया हूँ। श्रीमती रोमेके आई हैं उनकी एक साथिन भी हैं।”

मैंने कूची तुरंत रख दी। श्रीमती रोमेके एक बेहद संवेदनशील और प्रबुद्ध माओरी जो हैं। असल में अनेकों माओरी संवेदनशील होते हैं। पर श्रीमती रोमेके तो यहां की कल्याण अधिकारी थीं। और फिर उनमें कुछ खासियत और भी है। शायद गोरा खून, या माओरी मुखियाओं का खून ? शायद इस अतिरिक्त कुछ के कारण ही वे यूरोपीय जीवन शैली में भी सफल हो सकी थीं। मैंने तुरंत मन में सोचा कि उनकी सफलता पाखेहा (गोरों) लोगों की नजरों में ही तो सफलता थी। आखिर यह तो इस पर निर्भर करता है न कि आप सफलता किसे कहते हैं ?

वे सामने रखे कीवी लबादे को छू कर देख रही थीं जिसे मेरा एक बेघर मित्र छोड़ गया था। मेरे पर्दों पर बने माओरी बेल-बूटों पर भी उनकी दृष्टि अटकी थी। मुझे यह देख बेहद खुशी हुई। “आह।” मैंने घुसते ही कहा “सच केवल कोई माओरी ही इन चीजों की कद्र कर सकता है।”

बातचीत थोड़ी देर में इस गति से बढ़ी मानों तरंगों पर उछलती नौका हो। शायद उन विशाल नौकाओं की तरह जो 600 वर्षों पहले सागर पार के इस श्वेत बादलों की धरती पर पोलिनेशियन बीज ले कर आई थीं...।

“ना, पखेहा-विरोधी नहीं हूँ मैं” मैंने प्रतिवाद किया “पर मैं माओरियों को इतनी अच्छी तरह जानती हूँ इसलिए मुझे अन्याय और पूर्वग्रह साफ नजर आते हैं। और ये ..” मैंने अंदर शब्द टटोलते हुए कहा “सच में डंक से चूभते हैं।”

“आह !” उन्होंने निःश्वास ली। जो कुछ कहा जाए उसे माओरी बड़े ध्यान से सुनते हैं, गहराई से उनका अनुभव कर रहे हैं। मैं और बोलने को प्रेरित हुई “मेरे गोरे बच्चे अपने व्यवहार से अपने घरों के दृष्टिकोणों को इतनी सफाई से दर्शाते हैं कि क्या बताऊं। माओरी बच्चों के प्रति उनके डेरों पूर्वग्रह हैं। और जबकि सच तो यह है कि इस ‘पा’ में अद्भुत मिश्रण है।”

“मैंने तो इतने गोरे भूरे बच्चों को पढ़ाया है पर मुझे कभी इतने प्राणवान और प्रखर बच्चे नहीं मिले जितने यहां के हैं। और यह केवल हम स्कूल वाले ही नहीं कहते, यह तो वे शारीरिक शिक्षा वाले साहब और निरीक्षक महोदय भी मानते हैं।”

“हां,” श्रीमती रोमेके ने कहा “सच, इस जिले में माओरी और पाखेहा लोगों के

बीच बेहद गहरी गाई है।”

“यह दूरी हमें और भी शर्मीला और संकोची बना डालती है।” दूसरी महिला ने कहा। “काश योरोपीय लोग यह समझ पाते कि हम उनकी हर सहायता के लिए कितने शुक्रगुजार हैं। पर उनके दृष्टिकोण हमें इतना डराते हैं कि हम कह नहीं सकते।”

“वैसे मेरे काम के दौरान” श्रीमती रोमेके ने विशुद्ध अंग्रेजी उच्चारण में कहना शुरू किया, पर शब्दों के साथ चलते उनके हाथ माओरी मूल की कहानी कह रहे थे “मुझे पता लगा है कि एक खास ही वर्ग है जो हमेशा जातीय पूर्वग्रह दर्शाता है। वह है... क्या कहते हैं भला उसे...मध्यवर्ग। निचले तबके में तो मैं सहानुभूति पाती हूँ। और जो शैक्षिक या बौद्धिक लोग हैं—ऊपर वाले, वे तो सारी स्थितियों को समझते भी हैं। वे समझना चाहते जो हैं। समझने की चेष्टा करते हैं ना...।”

हमारी नई नस्ल के लिए एक बुरा दिन। माओरी होने की शर्म मेरे मस्तिष्क में पुरातन प्रतापी कबीलों (रंगाटिरा) और उनकी स्वाभिमानी कौमों की छवियों के साथ घुलमिल जा रही है। अपनी कल्पना में उनकी विशाल सजीली नौकाओं को सागर की तरंगों पर उठता गिरता देख पा रही हूँ, बहते पानी और स्थिर वृक्षों से घिरे यहां के गांवों का मर्मस्पर्शी सौंदर्य भी देख रही हूँ, स्पष्ट सुन रही हूँ उनका युद्धघोष, उनके जोशीले संभाषण—मानो नदियों के कलकल बहते पानी की ही भाषा हो।

पर स्कूल में आने वाले बच्चों के माता-पिता इन सबके बारे में क्या जानें ? कैसे बचाऊं अपने नन्हें से, सुंदर से माटाव्हेरो को पूर्वग्रहों के इन तीखे भालों से ?

“केवल शिक्षा” सर माउई पोमारे ने अपने देहांत के पहले कहा था “है माओरी नौका की नई पतवार।”

“किया मैंई बाहर जाऊं?” माटाव्हेरो पूछता है। मैं इस भयानक उच्चारण को सुनने की आदत डाल रही हूँ जो माओरी बच्चे हमारे कस्बों के गोरों से सीखते हैं। वाइओ में तो शुद्ध स्वरों के प्रयोग के कारण उच्चारण भी साफ हुआ करते थे। जब मैं पहले पहल वाइयो से यहां आई थी तो मुझे यहां की बोली दरवाजों की चरख-चूं-सी लगा करती थी। मैं नजरें झुका कर उसकी ओर देखती हूँ। बेहद छोटा सा है हमारा माटाव्हेरो। मैं घुटनों पर बैठ उसके स्तर पर आ जाती हूँ। बाहर जाने का समय तो अभी हुआ नहीं है।

“जाऊं किया ?” वह फिर गिरगिड़ाता है।

अगर वह बाहर जाना चाहता है तो दोष तो मेरा ही है। जरूर कक्षा में ही कुछ गड़बड़ है। पर परंपराएं आसानी से कैसे तोड़ें उन्हें तोड़ना दुखदायी होता है न। कितनी सुखद गरमाहट है परंपराओं की। उनके बिना ठिठुरन सी होने लगती है मुझे। “तुमने

अपना काम पूरा लिया है क्या ?” मैं पूछती हूँ।

वह क्षण भर को गायब हुआ और तब अपना काम ले आया। तख्ती पर टेढ़े-मेढ़े छोटे-छोटे अक्षर हैं, आपस में जुड़े हुए। एक कोण में उठती सी पंक्तियाँ।

“किया मैं ई जाऊँ ?”

“हां, क्यों नहीं।”

“सब सो जाओ।”

“क्या आप ब्ल्यू (नीला) जग की कहानी नहीं सुनाएंगी श्रीमती हेनसन ?”

“सोना जरूरी है ?”

“सोना जरूरी है ?”

“माटाव्हेरो सोओ, श्रीमती हेनसन बोली न कि हमें सोना है।”

“नीला जग कहानी पढ़कर सुनाइए ना।”

“श्रीमती हेनसन रांगी सोता ही नहीं है।”

“लेटना ही पड़ेगा ? ट्वीनी तुम लेटो।”

“आज आप क्या नीला जग पढ़कर नहीं सुनाएंगी ?”

“ट्वीनी की आंखे खुली हैं। वह देख रही है।”

“इस दूसरी ट्वीनी की आंखे भी खुली हैं।”

“नहीं।”

“हां हैं।”

“नहीं।”

“हां।”

“नीले जग का क्या हुआ श्रीमती हेनसन।”

“तुम सब चुपचाप सो जाओ।”

शांति।

मार्क : श्रीमती हेनसेन इस कहानी का तो कोई चित्र नहीं बन सकता मुझसे।

मैं : रस्सी तो बना सकते होंगे ?

मार्क: एक सीधी लकीर क्या ? बस ?

मैं : हां। और वह चूहा। उसके लिए तो ऐसा एक गोला ही बनाना पड़ेगा और पूंछ की जगह एक ऐसी छोटी सी लकीर।

मार्क : बस ? एक छोटा सा गोला सिर की जगह और एक उससे थोड़ा बड़ा पेट के लिए, और दुम की जगह एक छोटी लकीर बस ?

मैं : हां और पैर। टेम, अपनी नाक साफ करो तो। जूनियर अपनी कमीज ठीक करो।

ट्विन : श्रीमती हेनसेन यह ट्विनी बड़ी खराब है। ये मेरी तरफ आकर ड्राइंग कर रही है।

मार्क : और पैर भी ?

मैं : हां, और आंख की जगह एक छोटी सी बिंदी।

रांगी उस ओर आया जहां मैं दीवार पर उस ताजे बने चूहे के चित्र को टांग रही थी। तब अचानक मैंने वह असहनीय आवाज सुनी जो ये लड़के बंदूक की आवाज दर्शाने के लिए निकाला करते हैं। कमरे में गाते बच्चों की आवाज को बेधती निकल गई उसकी आवाज। ऑपहो। यह शैतान छोकरा फिर बंदूकों का खेल कर रहा है। शूबर्ट की मधुर धुन बजाने वाली ऊंगलियों के माधुर्य को भूल मैं उसके पास गई और उसकी पिंडलियों पर एक चपत लगा दी। “बंद करो यह आवाज!”

तब मार्क ने एक और चूहा बनाया।

“यह रांगी को दे दो।” गोरे मार्क के मन में शायद इससे ही माओरी रांगी के लिए कुछ भाव जगें।

तब एक और चूहा बना।

“यह तुम S S S S S ... मटाव्हेरो को दे दो।”

विकी अपना चित्र लेकर आई। “किसने बनाया है ?” मैंने जानना चाहा।

“मेरी साथिन ने।”

“कौन है तुम्हारी साथिन।”

“नामोई।”

“नामोई, तो बड़ी अच्छी है भई।”

“मुझे कैंची देंगी इसे काटूंगी ?”

“ना, पहले अपना चूहा खुद बनाओ, तब मिलेगी कैंची।”

“मुझे चूहा बनाना नहीं आता।”

“देखो, मार्क को बनाना आता है।” दीवार पर टंगे मार्क के चित्र को दिखाते हुए मैंने कहा।

मार्क ने एक और चूहा बनाया।

“मैं यह टेम को दे रहा हूं श्रीमती हेनेसन।”

मटाव्हेरो ने कुछ भी नहीं बनाया। वह सीढ़ियों पर बैठा पैची को ‘नीला जग’ पढ़कर

सुनाता रहा। भूरा बच्चा गोरे को। बढ़ती हुई सहनशीलता, शायद दो कौमों के बीच बढ़ती हुई समझ मुझे दिख रही है। माटाव्हेरो संबंधों से इस कदर उलझा हुआ है कि वह अकेले कोई काम कर ही नहीं सकता। (यही कारण है कि उसके दादा जी भी मुझे बेहद पसंद हैं।) पैची भी ऐसा ही बच्चा है।

विकी: “मैंने अपना सूअर बना लिया।”

मैं : “पर इसके पैर कहां गए ?”

चित्र उलटकर उसने पैर दिखाए : ‘यहां बने हैं पैर। अब मुझे कैंची मिलेगी।’ मार्क ने एक और चूहा बनाया।

पैची : श्रीमती हेनसन छुट्टी का समय हो गया क्या ?

माटाव्हेरो : श्रीमती एच. मैंने घंटी बजाई। तीन बार बजाई।

दूसरे बच्चे : श्रीमती हेनसन ये रही मेरी बिलौटी।

श्रीमती एच. मैं क्या पहली प्रवेशिका ले जाऊं ?

श्रीमती एच. मैं पियानो बजाऊं ?

श्रीमती एच. खेलने के बाद के लिए जो मैंने पन्ना लिखा था वह पैची ले गया।

इतने में हिरानी ने पियानो पर माओरी गीत ‘पोकारे कारे आना’ की धुन बजानी शुरू कर दी। गीत के स्वरों में सब डूब गया।

यह बच्चों के व्यवहार का नमूना है—बिल्कुल निराकार व्यवहार। सहज नमूना है यह। अपरिष्कृत और अनगढ़ व्यवहार—ये सूत्र हैं। ऐसे सूत्र जो व्यवस्क व्यवहार के पीछे छुपे स्रोतों की ओर इंगित करते हैं। उन्हें कबूल तक करते हैं।

माटाव्हेरो : किया मैं ई गॉर्डन के साथ बैठूं ?

गॉर्डन गोरा बच्चा है, खुश होता है वह इससे : तुम को हमेशा मेरे साथ बैठना होता है।

मैं, मन ही मन : एक छोटी सी फतह।

पर सच, यह अपेक्षा मैं कभी नहीं करती कि गोरे और भूरे बच्चे पूरी तरह घुलमिल जाएंगे। मेरी तो पूरी चेष्टा आपसी समझ पैदा करने की रहती है। ऐसा नहीं है कि वे आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक स्तरों पर कभी समान हो नहीं सकते हों। मैंने तो स्वयं अपने साथ यह किया ही है न। असल में जो उन्हें दूर करते हैं, बांटते हैं, वे हैं उनकी अपनी अपनी रुचियां। हरेक नस्ल की रुचि शताब्दियों के निहायत निजी और भिन्न अनुभवों के बीच पनपी होती है। हम आमतौर पर यह कह सकते हैं कि माओरी लोगों को अब तक अपने सामुदायिक कबीलाई आयोजन अच्छे लगते हैं, जहां जोर

होता है भोजन और अध्यात्म पर। और हम यूरोपीय मूल के लोग, शायद अपनी बौद्धिकता के कारण, अपरिवर्तनीय रूप से निरंतर पार्थक्य की ओर बढ़ते ही जा रहे हैं। पर यह मैं आम बात कह रही हूँ। क्योंकि जहाँ तक मेरा अपना सवाल है मेरा मेल-मिलाप तो उसी व्यक्ति से हो पाया है जो भूरा ही हो।

आज गोरा हैरी घर पर है, भूरे जूनियर से पिटने के कारण। पर मेरा पक्का विश्वास है कि पिटने की घटना ने ही उसे घर नहीं भेजा है। यह तो प्रतिक्रिया की लय ही है। इस बात की प्रतिक्रिया कि उसे पिछले कुछ महीनों में स्कूल में सबसे घुलना-मिलना पड़ा है। कभी न कभी इसकी प्रतिक्रिया तो होनी ही थी। मैंने पहले ही उसकी माँ को आगाह कर रखा था। कह रखा था कि जब उन्हें इसके लक्षण दिखें वे हैरी को घर पर ही आराम करने दें। पर साथ ही यह भी जोड़ा था कि “हैंडरसन साब शायद मुझे से सहमत नहीं होंगे।” फिर भी मैं इस वापसी को शायद रोक सकती थी, अगर मैं पूरी तरह उपस्थित होती तो। पर मैं तो सप्ताहांत के आराम के बाद पूरी तरह जमीन पर उतरी ही न थी। मैं उपस्थित होती तो उसे ढाढस बंधाती, दिलासा देती जैसा पहले कर चुकी हूँ। पर मैं चूक गई। और अब हैरी घर पर है। मैं बेहद शर्मिदा हूँ। मुझे शायद जूनियर को पिटवाना चाहिए था। क्योंकि इन ढीठ, धृष्ट और दूसरों को धुनने वाले बच्चों का तो इलाज यही माना जाता है न कि वे अपनी चाम को भी तिलमिलाते अनुभव करें। पर मैंने ऐसा नहीं किया। और अब हैरी घर पर है। मैं एक शिक्षिका की असफलता और पछतावे को भोग रही हूँ। गोकि यह अब भी कह सकती हूँ कि मेरी अपनी निजता पर आंच नहीं आई है। उस क्षण से धीरे-धीरे उबर रही हूँ—कभी कभार आंखों पर छानेवाली रतौंधी को तो क्षम्य ही मानना चाहिए।

भूरी वाईवीनी कोई भी कहानी अपनी जगह बैठ धीरज से खत्म नहीं कर पाती। उसे बीच बीच में उठकर मेरे पास अपनी बात कहने आना ही पड़ता है। संप्रेषण भी तो एक कला है। ऐसा क्यों है कि जब हम इस कला के बिंबों को दबा देते हैं, उसकी लालसा को ही दफना देते हैं तब ही हम सम्मानजनक भद्रलोक बन उठते हैं। जाँय ने कहा था कि “मुझे भद्रता से बेहद घृणा है।” वाईवीनी अपना काफी सारा काम इसलिए पूरा नहीं कर पाती कि वह व्यक्तिगत संबंधों में ही उलझी रह जाती है। पर उसके इस सरोकार की मैं श्रद्धा करती हूँ, बल्कि यह कहूँ कि उसे पोसने की पूरी कोशिश करती हूँ। इसलिए कि मैं जानती हूँ कि ‘अर्थ’ इसी चीज के बने होते हैं। कितनी स्नेही है वह और कितनी सचेत भी रहती है। जहाँ भी कुछ घट रहा हो वहाँ वह जितने करीब पहुंच सकती है, मटाव्हेरो की ही तरह। व्हारेपारिता के जुड़वाँ बच्चों की अंतिम क्रिया के समय भी वह दोनों नन्हें कफनों के बिलकुल करीब तक पहुंच गई थी। खुद

को भूल किस ध्यान से वह उन मृत चेहरों को ताकती रही थी। जीवन की नायाब चीजों में से एक है खुद को भुला पाने की शक्ति। और वाईवीनी और माटाव्हेरो ऐसे लोगों में हैं जो यथार्थ में जीते हैं। जिसे हम और आप काम कहते हैं उस क्षेत्र में शायद उनकी सफलता कम हो, पर जिसे हम जीना कह सकते हैं, उसमें तो वे माहिर ही हैं।

आज दोपहर लिखने का काम प्रारंभ हुआ। लिखना। क्या यही वह पहली दीवार नहीं है जो एक जीवित व्यक्ति को दूसरे से दूर करती है ? संवाद और स्पर्श के सीधे उपायों को छोड़ अपने विचारों को लिख कर प्रेषित करना। मैं खुश भी हूँ और दुखी भी। बोलने वाले और स्पर्श करने वाले शायद कभी अकेले नहीं होते पर लिखने वाले अकसर एकाकी हो जाते हैं। यही तो शुरूआत है एकाकीपन की। क्या मुझे इस बात से खुश होना चाहिए कि मेरे नन्हें-मुन्ने स्वेच्छा से लिख रही है “मछली कूदी है। मछली तैर रही है। छोटी मछली समुंद्र में हैं। मछली का पैर नहीं होता।” मैं भला सभ्यता को आने से कैसे रोक सकती हूँ। पर अपनी आंखों के पीछे छुपी दुनिया में मैं अतीत के माओरी मंदिरों के गर्भगृहों को देख पा रही हूँ, जहां पूजा-अर्चना होती थी, जहां गोदनों से गुदे, उद्वेगों से भरे वक्ता हुआ करते थे। वही तो था न सार्वकालिक, सीधा और प्राणवान संप्रेषण।

दोपहर को जिस समय बच्चे आंखें बंद कर आराम करने के लिए लेटते हैं, उस समय मैंने उनके लिए कुछ न कुछ गाना शुरू किया है। वे लोरियां, वे गीत, जो मेरे पिता हमें सुलाते समय गाया करते थे। वे गीत, जो मैं अपने अध्यापन के काम के कारण खुद अपने बच्चों को कभी सुना नहीं पाई...कम से कम, हमेशा तो नहीं। मेरे नन्हों को ये गीत पसंद आते हैं, मुझे भी। मैं अपने पिता के सारे गीत सुनाती हूँ। और तब अंतस से काफी सीमा तक उस चीज को निकाल कर बाहर करती हूँ जिसे मैं भी नहीं जानती कि वह आखिर है क्या ?

कहां रे, कहां रे गया मेरा नन्हा पिल्ला
कहां रे, कहां रे कहां होगा वह ?
बाल कटे थे उसके छोटे, पूंछ थी उसकी लंबी
कहां रे, कहां रे कहां होगा वह ?

है, नैया पुरानी में, नदिया में बहना

पर इस गीत को मैं यहां पूरा नहीं करूंगी। आखिर सदियों से यह गीत हमारे परिवार की धरोहर रहा है न। पर सच, उन उनीदे भूरे नन्हों को इसे भी सुनाने पर विवश हो

जाती हूँ मैं।

जितनी भी सामग्री हमारी शिशु कक्षा में थी वह सब शुक्रवार को खत्म हो गई। मेरा मानना तो यह है कि कक्षा में जितनी अधिक सामग्री उपलब्ध होती है, उतना ही कम प्रयास बच्चा अपने निजी स्रोतों को टटोलकर ढूँढने का करता है। मुझे दूसरे स्कूलों से आए बच्चे अकसर इस मामले में इतने लाचार लगते हैं कि उन पर गुस्सा आने लगता है। उनकी अपेक्षा तो यही रहती है कि उनकी अम्माओं की तरह शिक्षिका भी उनके लिए सब कुछ कर दे। चमचमाते ब्लाक (लकड़ी के चौकोर टुकड़े जिनसे आकार गढ़े जा सकें) पर मेरा कतई विश्वास नहीं है। चमक और रंग तो बच्चों की कल्पना से ही उपजने चाहिए न। और यह भी तो संभव है कि कोई बच्चा रंग या चमक की कल्पना ही न करना चाहता हो। तब उस हालत में तो ऊपर से पोत दिया गया रंग और पालिश तो महज एक आरोपण हो जाएगा। और सच, मन करता है कि चीख-चीख कर कहूँ कि यही आरोपण ही तो मारक है जो कुछ बच्चों की कल्पना से जन्मे वही होगा संपूर्ण, वही होगा सहज। और लकड़ी के जिन टुकड़ों की मैं बात कर रही हूँ वे तो मात्र उदाहरण हैं, इस आरोप के केवल एक प्रतीक भर हैं। श्रीमती एस. को नई पाठमालाओं की पूरक सामग्री के रूप में कुछ चित्र बनाने को कहा गया था। मानिए न मानिए, उनसे कहा गया कि वे संज्ञाओं के साथ 'पर', 'को', 'मेरा' जैसे शब्दों तक को चित्रित करें। यह मानना भी कितना कठिन है कि आज आधुनिक शिक्षक सच में यह सब करते हैं और आज के आधुनिक शिक्षा निरीक्षक इन सबकी प्रेरणा देते हैं। क्या बच्चा सच में किसी संज्ञा को सुनकर उसके चित्र की कल्पना अपने आप नहीं कर सकता ? और भला क्या सच में समुच्च बोधक या संबंध बोधक शब्दों के भी चित्र हो सकते हैं ? और यह भी तो सोचिए कि यों तैयार की गई सामग्री की देखरेख में कितना समय जाया करना पड़ता है। और यही कीमती समय बच्चों के साथ बातचीत करने में भी बिताया जा सकता था न। मैंने अपनी जवानी में ऐसे जितने भी प्रयास किए थे उन सबको तीली लगा चुकी हूँ। हाथ से लिखे दर्जनों चित्रित कार्डों को जो न जाने कितने डब्बों में भरे पड़े थे, फूंक चुकी हूँ मैं। और अब मेरी शिशुकक्षा में वही सामान है जिसकी सूची मैं नीचे बना रही हूँ :

चौक	किताबें
ब्लेक बोर्ड	कुछ चार्ट
कागज	रंग
पेंसिल	मिट्टी
गिटार	पियानो

अब जब बच्चा खुद कुछ पढ़ना चाहता है तो वह अपने आप किताब उठाता है। खुद ही मशक्कत करता है। मेहन मशक्कत से बच्चों को बचाने का, सारी अड़चनों को दूर करने का अर्थ होगा उसे अपने निजी स्रोतों तक पहुंचने के अधिकार से वंचित करना(पर उस दिन उन तमाम कागजों को तीली दिखाने के बाद उन पर से धुंए को उठते देखा था तो मन विषाद से भर उठा था।)

पर उन्हें जला देने के कारण अब पढ़ाना पहले से कहीं अधिक आसान बन उठा है और बातचीत के लिए अब कितना समय मिलता है। बातचीत यानी संप्रेषण। (उन कागजों ने जब चिमनी में भक से आग पकड़ी थी, काश उस आवाज को सुनते आप।)

इस सप्ताह स्कूल का मूल्यांकन हुआ। साथी पुरुष शिक्षकों को अच्छा माना गया। पर मेरा स्तर तो सदा की तरह नीचे ही रहा। सच इस बात में कोई शंका है भी नहीं कि मैं बिलकुल निम्न कोटि की शिक्षिका हूं। डेफने, मेरी बहन, कहती है कि इस स्तर पर पहुंच कर भी अगर मैं “अच्छी शिक्षिका” का दर्जा पाती तो यह शर्मनाक भी होता। सच मुझे भी लगता है कि न्यूजीलैंड में अस्वीकार्य शिक्षिका का दर्जा पा लेना तो अपने आप में एक सुखद विशिष्टता ही है। मैं अकेले ही चलती हूं, जैसे बर्क एडमंड* चले थे। या फिर हो सकता है कि मैं ‘दुर्जन’ ही होऊं। इसी शब्द का इस्तेमाल करते हैं ना आलोचक उन लोगों के लिए जिन्हें वे किसी खांचे में डाल नहीं पाते। पर यह दूसरी संभावना हुई। अपने लिए मैं दोनों ही संभावनाओं को मानती हूं।

शनिवार सुबह। आज मैं एक निर्णय पर पहुंच गई। मैंने तय कर लिया है कि इस साल के समापन पर त्यागपत्र दे दूंगी। कितना कुछ रचा गढ़ा है मैंने यहां, कितना कुछ शुरू किया है। जो कुछ मेरे पास, मुझमें था वह सब कुछ दे डाला है। पर अब सब त्यागना है। बहुत हो चुका। अब सिर्फ एक पत्नी बनकर ही रहना है। संभव हुआ तो इससे पहले ही छूट भागूंगी। देखती हूं कितनी छुट्टियां बाकी बची हैं। पहले उन्हीं को ले डालूंगी।

व्हरिपारिता के जुड़वां बच्चों की कब्र पर अब थोड़ी दूब उग आई है, लगता है उसके दुख पर भी। जब वह प्रसव के बाद अपने नन्हों को खोकर काम पर लौटी थी तब उसे देखकर मुझे बेहद तकलीफ होती थी। हाथ में पकड़े झाड़ू को भूल कर तब वह अकसर शून्य में ताकती मिलती थी। कोई न कोई आकर यह भी बता जाता था कि “कल फिर व्हारेपारिता कब्रिस्तान में जा अपने नन्हों की कब्र पर आंसू बहा रही

* अठारहवीं सदी के ब्रितानी लेखक और विचारक।

थी।” मैं सोचती रहती थी कि कुछ तो होगा जो मैं उसके लिए कर सकूँ। सोलह साल की उम्र में इस आघात को सहना उसके लिए कितना कठिन होगा। मन में तय किया था कि उस शुक्र को उसे अपने साथ शहर ले जाऊँगी। पर बाद में बात दिमाग से उतर गई। शहर पहुंचने के थोड़ी देर बाद देखती क्या हूँ कि वह लिपी पुती हुई अपनी एक सहेली के साथ जा रही है। उस वक्त यह बिल्कुल नहीं लग रहा था कि यह वही है जिसने दो बच्चों को अभी हाल में खोया है और इस सबकी पृष्ठभूमि में कहीं एक विवाहित पुरुष भी है, जो शायद इन स्थितियों के बारे में सोच रहा होगा। व्हारेपारिता की बीमारी और उसके दुख ने उसके रूप को संवार दिया है। पहले तो बिलकुल साधारण माओरी चेहरा था उसका। पर अब त्वचा भी निखरी है, शरीर भी छरछरा हो गया है। पिछले महीने जो सौंदर्य प्रतियोगिता हुई उसमें वह दूसरे नंबर पर आई। उस दिन जब वह ट्रक से उतरी तो वह ओवरऑल पहने थे, पांच घुटनों तक मोड़ लिए थे उसने, कितनी खुबसूरत लग रही थी तब वह।

“आप मुझे अच्छी लगती हैं” मोही मुझसे कहता है। “आप सिगरेट पीती हैं न इसलिए।”

मोही एक गोरा माओरी लड़का है। उसके पिता मेलों में फेरी लगाते हैं।

“हां, सिगरेट तो मैं पीती हूँ।”

“आपको जहन्नुम में शैतान के पास जाना पड़ेगा।”

“हां, लगता तो मुझे भी यही है।”

“मैं भी सिगरेट पीता हूँ।”

“क्या ! फिर तो तुम्हें भी शैतान के पास जाना होगा, है ना ?” उसने मोओरी तरीके से सिर हिलाकर सहमति जताई।

“तो ठीक है। चलो अपने-अपने बोरिए बिस्तर तैयार कर शैतान के पास चलते हैं।” उसे छोड़कर जाने का कोई उपाय जो नहीं है।

पिछले सप्ताह स्कूल में एक ही बड़ी बात हुई। हाइने और रिटी टामाटी का किसी ने बिलकुल झकमक साफ कर डाला। दोनों बच्चों को रगड़-रगड़ कर नहलाया किसी ने। बाल बनाए और चाटियां भी कर दीं। उनके कपड़े भी धुले थे, इस्त्री भी फेरी गई थी उन पर। मैं तो भौंचक रह गई। मैं तो इतने दिनों तक विशुद्ध आत्मरक्षा के लिए ही स्कूल में उनके कपड़े उतरवाकर धोती रही थी, उनके बाल झाड़ती रही थी।

“किसने नहलाया तुम्हें ?” मैंने पूछा।

“मां ने,” उन्होंने बताया।

“लौट आई तुम्हारी मां ?”

“हां, आ गई। कपड़े धोए”

“उसने बाल भी झाड़े तुम लोगों के ?”

“हां, बाल भी झाड़े। वापस आ गई।”

“वाह, कितनी बढ़िया बात हुई न।”

मैंने इन दोनों के बारे में अब तक कुछ नहीं लिखा था क्योंकि मैं पहले रोज के बारे में लिखना चाहती थी। रोज इनकी बड़ी बहन है। मां के न होने पर उसे ही इन दोनों को संभालना पड़ता था। पर रोज के बारे में अब तक कुछ लिखा ही नहीं मैंने। वही है रोज जिसने उस दिन सौंदर्य प्रतियोगिता में परेड का नेतृत्व किया था।

मैं इस्तीफा नहीं दूंगी। दिमाग बदल लिया है मैंने। मतलब वह बदल लिया जिसे मैं अपना दिमाग कहती हूँ।

हैरी आज सुबह फिर प्रकट हुआ। आंसुओं के ढेर के साथ। बाकी बच्चों ने मेरे आने तक उसे स्कूल में रोके रखा था। मैं दूसरी घंटी बजने तक ही पहुंच पाती हूँ न। मैंने उसे गोद में उठाया और अपनी मेज के पास बिठा लिया। वह मुझे दूसरे बच्चों को काम देते देखता रहा। टिकटों से खेलता रहा। तब मैंने उसे ‘नीला जग’ कहानी पढ़कर सुनाई। उसने तब कहा कि वह दोपहर को लौटकर स्कूल नहीं आएगा, घर पर ही सोएगा क्योंकि नन्हें ने उसे रातभर सोने नहीं दिया है। पर वह दोपहर को लौटा। वह तब खुश भी नजर आ रहा था। मुझे लगता है कि उसके घर में काफी तनाव रहते हैं। वे चार भाई बहन हैं। और इस नन्हें उम्र में चार बच्चों में सबसे बड़ा होना कोई आसान बात नहीं है। मां के पास अपने अधिकारपूर्ण प्रथम स्थान को उसे न जाने कितनी बार छोड़ना पड़ा है। मैंने उसे मां-सा लाड़ लड़ाने की कोशिश की-या चाहें तो कहें दादी मां सा। आखिर मुझे तो अपने अपराध बोध के भूत को दफनाना था।

मैंने बड़ी बच्चियों को बास्केटबॉल की तीन टुकड़ियों में बांट दिया है-अ, ब और स। वे अपने कोटों पर स्कूल का नया निशान अपने आप काढ़ रही हैं। अपने लिए पीले रंग के स्वेटर भी बुन रही हैं। उनमें से अधिकांश पियानो बजाने का अभ्यास भी करती हैं। उन सबों को यों व्यस्त देखकर मुझे बेहद अच्छा लगता है। गोल करने वाली लड़कियां हर रोज एक तय संख्या में गोल करने का अभ्यास करती हैं। हर दिन पूरे बीस गोल। पहले तो मुझे शंका थी। लगा था मेरी अपेक्षाएं बेहद ऊंची हैं। पर तब पाया कि ‘बी’ टुकड़ी की कुछ लड़कियां तो कुछ ही दिनों में सौ गोल करने लगीं। मैं अपने स्कूल के पुरुष साथियों से पूछती रही कि मुझे इन संख्याओं पर विश्वास करना चाहिए

भी या नहीं। आमीरा ने पिछले सप्ताह बताया कि उसने पूरे सात सौ बीस गोल किए थे। मैंने टॉम से कहा कि मैं हर समय उन पर नजर तो रख नहीं सकती इसलिए मुझे उनकी बताई संख्या पर विश्वास तो करना होगा। अभ्यास कितना हो रहा है यह मैं नहीं जानती पर इन संख्याओं पर तो मोहित होना ही पड़ता है।

और मेरी शिशुकक्षा में तो हमेशा कोई न कोई लड़का पियानो पर अभ्यास करता मिलता ही है। कोई लड़की मशीन पर सिलाई करती है, तो कोई बुनती बैठी होती है। साथ ही तीन चार दर्जन नन्हें काम करते, बतियाते, हंसते और अकसर गाते तो होते हैं। मुझे उनका यों गाना बेहद अच्छा लगता है। पहले किसी कोने में बैठा एक गाना शुरू करता है। तब एक दो बच्चे साथ देने लगते हैं और अचानक वे सबके सब गाने लगते हैं।

पर सच, जो चीजें मुझे इतनी अच्छी लगती हैं वे बराबर मेरे विरुद्ध जाती हैं। मेरी आलोचना का कारण बनती हैं। मैं खुद भी अकसर उठ कर उनके गीतों में साथ देने पियानो बजाने लगती हूँ। कभी वे मेरे पास भागे आते हैं, और कभी जहां होते हैं, वहीं से गाते हैं। जब कभी मैं “शुभ रात्री आईरीन” (गुडनाइट आईरीन) बजाती हूँ तो वे सिमट कर मेरे पास आ खड़े होते हैं और तल्लीनता से गाते हैं। वाईवीनी हमेशा ही जितनी पास आ सकती है, आ जाती है और बड़े ध्यान से मुझे बजाता देखती है। कुछ देर बाद वे अपनी-अपनी जगह पर अपना काम करने लौट जाते हैं। कितना अद्भुत होता है वह क्षण। उनका यों सिमट आना, कितना सुंदर लगता है। यही है स्वतःस्फूर्त आचरण का एक सुंदर नमूना। पर मैं यों बहकने के पहले थी कहां ? हां, मैं यह सच में स्वीकारती हूँ कि वह सब बेहद खराब शिक्षण है।

पता चला कि बी. (एक दुकान के नाम का संक्षेप) हमारे स्कूल की सर्दियों की पोशाकें नहीं बनाएंगे। पर उन्हें भला क्या दोष दूं ? के. स्कूल के लिए प्रोजेक्टर देखने वहां गए थे। अचानक मेरी नजर कतारों में लटकी भूरे रंग की ट्यूनिकों और ब्लेजरों (ऊनी कोट) पर पड़ी। विक्रय-विभाग की काम संभालने वाली उस डरावनी महिला से मैंने इस बारे में चर्चा की। उन्होंने पहले तो यह मान लिया कि अगली बार वे ऐसी ही और पोशाकें भी मंगवा देंगे। तब मुझे अचानक ध्यान आया कि श्रीमति हाकीबाई मुझे अपने बच्चों की पोशाकों के पैसे दे चुकी हैं। सो मैंने उनमें से तीन जोड़े श्रीमती हाकीबाई के लिए अलग रखने को कहा?”

“नाम के हिज्जे बताएंगी जरा ?”

मैंने हिज्जे कर दिए।

“अरे, ये तो कोई माओरी औरत है।” आवाज में आक्षेप भर, पेंसिल नीचे रखते

हुए उन्होंने कहा।

“हां।”

“भई, उनका कोई भरोसा नहीं है। वे माल ले जाने को कह जाते हैं। और बाद में उठाते नहीं हैं।”

“हो सकता है यह सच हो, पर इस बार इन पोशाकों में ऐसा नहीं होगा।”

“आप क्या उनकी वही शिक्षिका हैं ?”

“हां” मैंने लज्जित हो नीचे देखते हुए कहा।

उसने मुझे ऊपर से नीचे तक बाकायदा घूरा। मानों आगे कहने वाली हो “और अब जरा पीछे को भी घूमिए”। मैं गहरे सोच में पड़ गई। अपने एक छोटे से सपने की मुझे क्या कीमत अदा करनी है ? और ऐसा भी क्या सपना था ? अपने माओरी बच्चों को पीली और भूरी यूनिफार्म में देखना, बस इतना ही। मैं इतनी दुखी हो गई कि खुद को बहलाने के लिए फर के बेशकीमती कोटों की कतारों की तरफ जाना पड़ा मुझे।

कै. ने उस रात हेडमास्टर्स की बैठक के दौरान उच्च निरीक्षक से बात की। पता चला कि इंस्पेक्टर साब अगले सत्र से एक सहायिका भेजने वाले हैं “जो कुद श्रीमती हेंडरसन कर रही हैं, उसमें मदद करने।” जरा सोचिए तो कि नियुक्ति नियमों को यों ताक में रखना पूरे स्कूल के बाकी साथियों को कैसा लगेगा ? पर शायद कल्पनाशीलता का ऐसा स्वागत होता ही है। कल वे वस्तुकार साहब भी आए थे, शिक्षकों के कमरे, नई लांड्री और नहान-घर के नाप ले गए। इसको लेकर भी तूफान उठेगा। पर अब क्या, जो होना था वह तो हो ही चुका न ? मेरा तो एक छोटा सा सपना भर है कि इस स्कूल को वह दर्जा दिला सकूँ जिससे गोरे बच्चे यहां फिर से वापस आ सकें। मैं कब से यह सोचती रही हूँ कि पास के इस स्कूल को नजरअंदाज कर, यातायात की तकलीफें भोग कर भी वे सब किसी दूर के स्कूल में जाते हैं, यह कितने शर्म की बात है।

फर्नहिल स्कूल की सर्दियों की पोशाकें जब से बी. ने बनाने से इनकार कर दिया था, तब से ही मन में एक कसक सी थी। मैं काम करना, आगे बढ़ना तो पसंद करती हूँ, पर सामने आने वाली ऐसी अड़चनों और टुच्ची मनाही सह नहीं पाती। मैं तो तब से स्तब्ध ही रह गई थी। क्या करूँ यह भी नहीं सूझ रहा था। तब अचानक देखती क्या हूँ कि मेरे सपनों की सुंदर पोशाक स्कूल में जहां-तहां प्रकट होने लगीं। कहां से आई यह तो ईश्वर ही जाने !

“अरे, कहां से खरीदी तुमने अपनी ये पोशाक ?”

“मेरी मौसी की भतीजी ने सी दी है।”

“मेरीऑन यह अपनी यूनीफार्म कहां से ली तुमने ?”

“ली नहीं, दादा ने कल रात सी कर पूरी तैयार की।”

“डेला, अरे तुमने तो खेल की नई भूरी पोशाक पहनी है भई ?”

“और क्या श्रीमती हेनसन, मेरी मां नेपियर से खरीद कर लाई हैं।”

अगली सुबह दरवाजे पर दस्तक हुई। लिली एक बड़ा सा लिफाफा पकड़े खड़ी थी। “ये हमारे ट्यूनिंग और ब्लेजर हैं श्रीमती हेनसन ! धाय मां नेपियर से लाई हैं। मेरे लिए, अमिरिआ के लिए और रेरेमोना के लिए भी। उन्होंने पुछवाया है कि इनकी लंबाई ठीक है ना ?” और हर दिन ऐसा कुछ न कुछ होता रहा।

सथय था ‘मानो न मानो’ के किस्से साथियों से बांटने का। मैं पोर्च पर बैठी-बैठी अपने पुरुष साथियों को इन घटनाओं की बात बता रही थी। क्योंकि स्टाफ रूम तो अब था ही नहीं।

“श्रीमती हेनसन आज दोपहर इरीनी यहां नहीं आएगी।”

“आखिर क्यों, लोटस ?”

“वह अस्पताल में है ना।”

“अरे क्यों ? क्या हुआ मेरी इरीनी को ?”

“वह लॉरेंस है ना, वह उसे साईकिल पर बैठा कर घर ले जा रहा था। अचानक विक्टोरिया सामने आ गई। उसे बचाते ये दोनों गिर पड़े। इरीनी नीचे और ऊपर लॉरेंस। इरीनी के चहरे पर दो जगह चोटें आई हैं।”

“कब हुआ यह सब ?”

“कल रात खाना खाने के समय। इरीनी की मां उसे उसी दम टैक्सी में अस्पताल ले गई।”

“रविवार को अस्पताल जाना है।” मैंने आज के. से कहा “काफी सारे परिचित आजकल दाखिल हैं।”

“दा का भी शुक्रवार को ऑपरेशन हुआ था।”

“हे, राम !”

“और डस्की भी पंद्रह दिन पहले हुए हार्ट अटैक के बाद से वही है।”

“सच मुझे तो पता ही नहीं चला।”

“इस इतवार को जाना ही चाहिए।”

“जब भी जाओ तो ढेरों मित्र वहां दाखिल मिलते हैं। पर उनके लिए ले क्या जाऊं, यही समझ में नहीं आता। पिछली बार तो मैं टिकट लगे लिफाफे ले गया था।”

कल रात हेमिंग्वे की फिल्म देखते समय मैंने व्हारेपारिता को एक नौजवान माओरी के साथ देखा। लगता है अब कुछ समय की ही बात है।

के. नए प्रोजेक्टर की जांच करने के लिए उसे ‘पा’ ले कर गए हैं। यानी फिल्म

की शामें अब बढ़ चलीं हैं। हरेक जाता है फिल्म देखने। जब प्रोजेक्टर खरीद लिया जाएगा तब कितना अच्छा रहेगा।

कल दोपहर ढाई बजे जब मेरी कक्षा पढ़ने और नए शब्दों को सीखने में व्यस्त थी तब बास्केटबाल की “स” टुकड़ी खेल मैदान में मेरा इंतजार कर रही थी। हमारे ही कमरे में कुछ लड़कियां अपने पॉकेट सी रही थीं, कुछ बुन रहीं थीं, होरी पियानो पर अभ्यास कर रही थी, लोटस अपनी यूनीफार्म बना रही थी, मेरे ट्यूनिक की पटलियों पर इस्त्री फेर रही थी कि अचानक मुझे इंस्पेक्टर साब का वादा याद आया। याद आया कि अगले सत्र में मेरे साथ सहायिका होगी। मैं मुस्करा पड़ी।

पुकी का घर सड़क के उस पार ही है। घर मतलब, एक ही कमरा। आठ बच्चे हैं परिवार में। यानी मां-बाप को मिलाकर दस जने। आठों बच्चे एक ही बिस्तर पर सोते हैं। सुबह जब वे स्कूल आते हैं तो बाल काढ़ना तो दूर चेहरे तक धुले नहीं होते। मां तो थ चली है। और बाप हर शनिवार को हफ्ते भर की पूरी कमाई दारूखाने में उड़ाने के बाद बीबी से लड़ने और उसे मारने के लिए ठीक समय पर घर पहुंचता है। के. और मैं हल्के-फुलके मिजाज से शहर की ओर निकले ही थे कि डर से सहमे घबराए बच्चे हमें मां-बाप का नाटक देखते मिले। वे रो भी रहे थे। झाड़ू, बेलन आदि परिस्थिति को और गंभीर बना रहे थे। उस स्त्री की बात सोच मन में बेहद तकलीफ होती है मुझे। बाद में दादी इस सब की चर्चा करने आईं। मैंने साफ कह दिया कि “मैं तो उस स्त्री के ही पक्ष में हूं। आपको सही लगे या गलत, मैं तो हमेशा-हमेशा औरतों के ही साथ हूं।”

“असल में तो वह एक दूसरी औरत के साथ भी तो घूमता-फिरता है। माओना को यह नापसंद है।”

“यह अगर मेरा पति करे तो मुझे भी नापसंद हो।”

“हां, अच्छा तो मुझे भी नहीं लगता।”

हर शनिवार को मैं के. से कहती हूं कि “किसी न किसी शनिवार को यहां खून खराबा होकर ही रहेगा।”

एक बरसाती बृहस्पतिवार का दिन। जो शिशुकक्षा के बारे में सबसे अच्छा लगता है, वह यह है कि स्कूल में भविष्य में जो कुछ भी सुखद घटने वाला है तो उसका सुराग मुझे पहले से ही मिल जाता है। अब तक बच्चों के प्राप्तांकों से मुझे दो बेहद प्रखर बच्चे नजर आते हैं। ररेमोना और टेम टुही। दोनों ही विशुद्ध माओरी बच्चे हैं, गोरे खून का एक कतरा तक नहीं हैं उनमें। मैंने उच्च-निरीक्षक साब से भी कहा “मैं चाहती हूं आप ररेमोना और टेम से मिलें क्योंकि सात साल बाद ये ही नगारिमु छात्रवृत्ति के प्रत्याशी होंगे। और हो सकता है तब तक मैं यहां न रहूं।”

पॉली पियानो पर अभ्यास कर रही है। उसका संगीत मुझे विषाद से भरा लगता है, पर सच्चा भी। वज्र जब बजाती है तो उसके स्वरों में अस्थिर मज्जा का नहीं, संगीत के होने का अहसास होता है। रेडियो कलाकार काहू उसके काका हैं। पॉली मेरी बिलकुल अपनी है। उसकी बहन है मेरे, मां नहीं है। मेरे ने ही मुझे बताया था “मां मर गई।” और तब दुकानदार से पता चला “पॉली की मां?” “वह बेचारी तो अपना आखिरी बच्चा जनते समय ही गुजर गई थीं।” मुझे पॉली और मेरे पर बेहद गर्व है। सुंदर हैं दोनों बच्चियां और चेहरों पर कैसी विचित्र आभा हैआकर्षण की, व्यक्तित्व की या किसी और ही चीज की ?

पर कल मेरे और उसके साथ गोरी जून ने अपने चेहरों पर लाल चॉक का चूरा पोत लिया। बरसाती बुधवार था। पास बैठी थीं कुछ बड़ी बच्चियां, बुनतीं, सीतीं या समारोह के लिए वाद्ययंत्र का अभ्यास करतीं। साथ में मेरे शिशु तो थे ही। और इस सबके बीच अचानक इन इनों को जब मुंह रंगे हंसते सुना तो मेहनत से गढ़े मेरे धैर्य की परत में कुछ चटक सा गया। मैं बिफर गई। मैंने तल्लखी से भरकर कहा “मुंह धोकर जाओ तुम दोनों। मुझे तुम दोनों से कुछ कहना है।”

मेरे ने बात को गंभीरता से नहीं लिया। वह समझती है कि ऐसे कड़वे कथनों की क्या कीमत है। पर गोरी जून इस बारे में कुछ नहीं जानती। वह तो मानो बिखर गई। फूटफूटकर रोने लगी, सहम कर थराने लगी। मैं स्तब्ध, अवाक रह गई। “ना ना, रोओ मत बेटे। बिलकुल नहीं डांटूंगी।” पर वह कहां सुनती। वह तो बेकाबू थी। “मत डांटो मुझे। मुझ पर मत गुराओ” वह मेरी टांगों से लिपट कर चिरौरी करती रही। मैं तब एक ही काम कर सकती थी। वही किया मैंने। उसे गोद में उठाया। आंसू पोंछे, ढाढस बंधाया। पर इतने में कुछ बड़ी बच्चियां ठिठिया कर हंसने लगीं। मुझे कहना पड़ा। “हंसो मत तुम लोग। सदाय होना सीखे।”

जून पर मुझे विशेष ध्यान देना पड़ता है। अपनी क्लास में उसका एक भी गोरा साथी नहीं है। यह कभी मुझे ही पूरी करनी पड़ती है। पेंसिल, रबर, तख्ती सब उसके साथ बांटनी पड़ती है मुझे। और दिन भर में कोई दस हजार सवालों का जवाब भी देना पड़ता है।

उपसंहार : मैं भोर चार बजे तक सो ही नहीं पाई। जून कांड मन को उलझाता रहा।

वाईवीनी, संप्रेषण की साम्राज्ञी, पियानो पर बैठी है। उंगलियां उसकी मुलायम और तत्पर हैं, जैसा उसका स्वभाव है। सच, चकित किया है, मोह लिया है, इस बच्ची ने मुझे। उम्र है कुल जमा छह साल। पर इन तीन प्रखर माओरी बच्चों का भविष्य क्या

है भला ? सफलता का सतत चलने वाला पाखेहानुमा युद्ध ? यह न हो तो ही शायद बेहतर हो। काश उनकी मानसिक क्षमताएं भी यों बढ़ें कि उनकी संप्रेषण की गुणवत्ता भी बढ़ती चले। काश बरकरार रह सके उनका सीढ़ियों पर बैठे यों बतियाना, सबको यों स्नेह प्रीति देना और लड़ना झगड़ना ...।

श्रीमती कटर, गोरे मार्क की मां ने मुझे फूल भेजे। एक फतह फिर।

सप्ताह की सनसनी : मेरी माओरी पियानो टुकड़ी वाद्यवृंद के साथ पियानो बजाने वाली है। पर सप्ताह की सनसनी क्यों कहूं इसे ? यह तो इस साल की ही सबसे रोमांचकारी घटना है। अब पियानो के स्वर-बोर्ड से मुझे मुक्ति मिली है। मैं दूर खड़ी निर्देश दे सकूंगी। कितना सुखद अनुभव होगा यह !

मैं दिनभर अपने नन्हे-मुन्नों से बातें करती हूं। हजारों-हजार सवालों के जवाब देती हूं। पर पढ़ाते वे सब परस्पर ही हैं। जितना विचार करती हूं, उतना लगता है कि उनसे मेरा संवाद ही सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है।

पर सच बताऊं, अकसर लगता है कि मेरी उम्र के लिए यह शोरगुल असहनीय है। और अनुशासन का यह वैकल्पिक रूप भी। सच, अनुशासन तो इस सबके बावजूद होता ही है। पर यह अनुशासन आंतरिक है, नितांत स्वाभाविक। ऐसा अनुशासन जो ऊपर से थोपे हुए हर किस्म के अनुशासन की धज्जियां उड़ाता चले।

पर जीवन कितना छोटा है न। आशा करती हूं कि इतना साहस तो मुझमें हमेशा रह सकेगा कि मैं एक सच्ची, सार्थक शिशुमाला चला सकूंगी। ऐसी, जहां उनके व्यवहार के इस अमूर्त और दुर्बोध नमूने को बढ़ने पनपने की पूरी छूट हो ...क्योंकि आखिर यही तो अचेतन मन की कोख से उपजता है न। मैंने अभी अगर इस समय का सदुपयोग न किया तो नब्बे साल की उम्र में आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे अतीत को देखते समय मैं अपने आपको कभी भी माफ नहीं कर सकूंगी। और तब मेरा बुढ़ापा ही पछतावे में बदल जाएगा। अतीत को देखकर संभावनाओं को पहचानना, और तब यह सोचना कि काश तब साहस किया होता !

मैं आज शाम काहू के जन्मदिन पर नहीं रही हूं। कल जून कांड को लेकर जगकर बिलाई रात ने पूरी तरह थका दिया है।

एक बृहद बरसाती बृहस्पति है आज...झिरझिर...झिरझिर...।

मेरे सात वर्षीय जुड़वें कलाकार भाई आज काहू के वयस्क बन जाने के उपलक्ष में हेस्टिंग्स सभागार में दी जाने वाली दावत में गाने वाले हैं। इसके पहले भी उनके कुछ गीत रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। स्थानीय अखबारों में उनके नाम भी छप चुके हैं। शोहरत कमाई है इन्होंने। आज जब मैंने उनसे यह कहा कि वे अपना गीत मुझे पहले

ही सुना दें तो उन्होंने यूकूलेले (एक तार वाद्य) उठाकर गाना शुरू किया। मैं तो चकित रह गई...जबकि मुझे तो कबीलों में छुपी प्रतिभाओं को अचानक चमकते देखने की आदत भी है।

इस 'पा' के तो कतरे कतरे में संगीत बसा है। इसके ठीक विपरीत रचनात्मकता है ही नहीं। कुछ भी तो गढ़ते-बनाते नहीं है वे। सभागार तक वाइरोआ से उधार लिया है। उनका सरोकार संप्रेषण के नितांत व्यक्तिगत माध्यमों से ही रहा है—गपशप करना, साथ बैठना, नाचना-गाना, जम कर दारू पीना और बेतहाशा प्रेम करना और सच, इन क्षेत्रों में उनकी दक्षता को कम करके मापना असंभव होगा।

नोट : झगड़ालू होने के लिए तो ये लोग प्रवास के समय से ही कुख्यात रहे हैं।

अवकाश के बाद : एक टिप्पणी

छुट्टियां शुरू होने के पहले अंतिम शुक्रवार को दो जासूस हमारे तीन जंगली लड़कों से पूछताछ करने आए। शक यह था कि इन तीनों ने पुल पार वाली आइसक्रीम की दुकान से अलग-अलग समय पर करीब बीस पाउंड चुरा लिए थे। जिस लड़के पर शक था एक जासूस ने उसके छोटे भाई से यों सवाल किए, “क्यों टेड चॉकलेट वाकलेट खाई कि नहीं तुमने ? च्यूइंगम ?”

“नहीं तो” कुछ समय अपराध भाव से उसने कहा।

“अच्छा, तो थोड़ी सी दी थी। खुद ही सारी खा गए थे।” और तब कुछ ऐसी ही और बातें कहीं उस छोटे भाई ने। दसके सवालों में ही जासूसी का काम शेष हो गया।

जिस समय बाहर यह सवाल-जवाब का सत्र चल रहा था, ठीक उसी समय स्वास्थ्य निरीक्षक भी यह पूछताछ करने आए कि स्कूल को आखिर नहानघर और कपड़े धोने की जगह बनाने की अनुमति क्यों चाहिए। दरवाजे से अंदर घुसते ही निरीक्षक महोदय उस मरी बिल्ली से टकरा गए जिसे कुछ शैतान छोकरे पूंछ से घसीट कर अंदर ले आए थे।

अखबारों में पुलिस न्यायालय हमारे विरुद्ध जो अभियान चलाता रहता है उसे पढ़-पढ़कर मुझे बेहद मजा आता है। एक ओर तो मैं इस फिराक में रहती हूँ कि हमारे स्कूल की हरेक गतिविधि की सूचना अखबारों को मिले ताकि हमारा स्कूल फिर से सामाजिक प्रतिष्ठा पा सके, वहीं दूसरी ओर उसी पृष्ठ के अंत में छोटे अक्षरों में पुलिस दूसरी ही तरह की कहानियां छपवा देती है। तोड़फोड़, अवैध कब्जा, छोटी-मोटी चोरी की वारदातें या फिर पाई के पिता का ही वक्तव्य कि अगर वे अपने बेटे को ठोकते भी रहें तो भी वह स्कूल में पढ़ने न आए ... मैं इन बातों पर सोचती हूँ और ठहाके लगाती हूँ। पता नहीं दूसरे कितने हैं जो इस मजाक को मेरे साथ समझ रहे हैं।

मई की छुट्टियां पूरी होने के बाद आज सुबह स्कूल में मैं उन सुंदर भूरी पोशाकों को हर जगह देख चकित ही रह गई। कई बच्चों के तो पॉकेट तक तैयार थे। पर मैं तो सदा से यह मानती आई हूँ कि हमारे जीवन में चमत्कार संभव है। अब तो प्रायः नियमित रूप से ये खिंते हैं। काश श्री बी. यह देख पाते। न जाने कहां-कहां से लाई

गई हैं ये पोशाकें। नेपियर से लेकर सुदूर वेलिंगडन तक से।

नियुक्ति नियमों से सूक्ष्म रद्दोबदल का परिणाम मेरे दरवाजे पर खड़ा है; सहायिका के रूप में। एक दृष्टि से देखें तो यह पक्षपात ही कहलाएगा पर फिर सोचें तो यह भी कह सकते हैं कि यह व्यावहारिक कल्पनाशीलता है। पर बताइए तो जरा कल्पना को कोई भी खेल क्या आइन-कानून तोड़े बिना या उसकी कीमत चुकाए बिना कभी संभव हुआ है?

कितना बेहतर, कितना आरामदेह और पहले की तुलना में कहीं अधिक उपलब्धि यों से भरा दिन बीता है आज का। भगवान के साथ ट्रेमेइन साब को भी हार्दिक धन्यवाद!

फर्नहिल स्कूल

२२ मई,

विषय: फर्नहिल स्कूल की पोशाकों के बाबत।

प्रिय श्री बी.,

जिस दिन आपसे हमारे स्कूल की गहरी भूरी पोशाकों की बात हुई थी, उस बात को महीना भर गुजर चुका है। आपको ध्यान हो तो इस बातचीत में आपने अपनी विवशता जताई थी। मैं तो इस विषय में हताश ही हो गई थी। पर अब पाती हूँ कि बड़ी संख्या में हमारे स्कूल की छात्राएं इस पोशाक को पहने मिल रही हैं। छात्राओं ने अपनी पोशाकें नेपियर से लेकर वलिंगडन तक से खरीदी हैं। यही बात आशा बंधाती है और यह पत्र लिखने का साहस भी कर रही हूँ।

माओरियों से आप भी उतने ही अच्छी तरह परिचित हैं, जितनी मैं। आपको भी ध्यान होगा कि नए कपड़ों के वे बेहद शौकीन हैं, खासकर किसी भी यूनिफार्म के। आप शायद यह भी जानते होंगे कि सलीके से बनी यूनिफार्म का बच्चों के आचरण पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है। जहां तक हमारी छात्राओं का सवाल है, उनके आचरण पर शर्मिंदा होने के मेरे पास कोई विशेष कारण हैं भी नहीं, पर हमारे छात्रों के उच्छृंखल व्यवहार से तो हम सब ही परिचित हैं। मेरा मानना है कि इस दृष्टि से स्कूल की पोशाक केवल बाहरी टीमटाम नहीं रह जाती बल्कि गहरे पैठकर उनके व्यवहार को बदलने में भी सहायक बनती है।

क्या यह संभव है कि आप लड़कों की पोशाकें उपलब्ध करवाने के अपने प्रयास जारी रखें ? रंग और डिजाइन की चर्चा हम कर ही चुके हैं। क्या यह संभव होगा कि आप पैट, कमीज और कोट का एक-एक नमूना मेरे पास भिजवा दें ?

पिछली सभी सेवाओं और सहायता के लिए मैं शुक्रगुजार हूँ। सर्दियों की पोशाक के बारे में आपके निर्णय को भी मैं बखूबी समझती हूँ।

भवदीया

एस. हेंडरसन (श्रीमती)

उस दिन उच्च निरीक्षक ट्रेमेइन साहब को यों अचानक स्कूल में पा आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी। बेहद, बेहद संवेदनशील व्यक्ति हैं। कितने कम लोगों में मिलती है न यह विशेषता। और चतुर भी तो हैं। मैं तो डाक्टर साब और नर्स से मिलने गई थी कि वे मुख्य भवन के सामने ही दिख गए। मैंने नमस्कार कर स्वागत किया। “आपको यहाँ देखकर बहुत अच्छा लग रहा है,” मैंने उन्हें अचानक यों खड़ा देख सोत्साह कहा। “यहाँ आकर मुझे भी,” उनका उत्तर था।

और तब मुझे अपनी कक्षा की ओर लौट आना पड़ा था।

पर जब कुछ ही देर में बच्चे बाहर से पानी की तरह बहते हुए आए तो वे भी उस धारा में साथ थे। माटाव्हेरो अपनी बिल्ली को स्कूल ले आया था। उसे उसने मेरे कंधों पर बैठा दिया था। मैंने नजरें उठाकर देखा—बेहद लंबे हैं न वे। देखना तो मुझे एक ऐसी गुरांनी बिलौटी के पार पड़ रहा था जो अपनी पूंछ मेरी आंखों के सामने लहरा रही थी। बच्चे भी सब ओर घिरे थे, उनकी चौड़ी-चौड़ी आंखों में बिल्ली के आगमन की प्रसन्नता छलक रही थी। बेतहाशा खिल खिला रहे थे वे...।

“श्रीमती हेंडरसन ! जैसा टाइपराइटर आप चाह रही थीं वैसा अब मेरे पास आ गया है। मैं अब आपकी किताबें टाइप करवा सकता हूँ।”

“अरे, कहां मिला ऐसा टाइपराइटर आपको ?” मैंने उतावलेपन में पूछा।

इस उन्माद का कारण जानना चाहेंगे आप ? अपनी 60 माओरी प्रवेशिकाओं और पाठमालाओं को हाथ से लिखने में जितना समय, जितनी मेहनत लगी है उसका अनुमान भी शायद कोई नहीं लगा सकता। प्रायः ग्यारह बजे तक ट्रेमेइन साब बैठे रहे, मेरे साथ सभी किताबों को देखते रहे। और अब यह काम आगे बढ़ सकेगा। उन्होंने कहा “मुझे तो हमेशा ही लगता था कि ‘पा’ के वातावरण और स्कूल के बीच एक पुल की जरूरत है। मुझे लगता है कि आप इस जरूरत को इन किताबों में पकड़ पाई हैं।”

उन्हें यों अपनी बेचारी नन्हीं किताबों को हाथों में ले पलटते देख मुझे बेहद खुशी हुई। और सच तो यह है कि यह तीसरा संस्करण इतना बेचारा भी नहीं है। उन्होंने आज फिर चाहा था कि वे एक प्रति साथ ले जाएं पर मैं आज भी बच निकली। हां, यह वादा मैंने जरूर किया कि मैं एक ढंग की प्रति उन्हें जल्दी ही बनाकर दूंगी जिसे उनका

टाइपिस्ट ठीक से पढ़ सके। एक दिन पहले भी तो वे अपने सचिव के साथ आए थे और तब उनके सचिव ने पूछा था, “मैं एक प्रति ले जाऊं” ?

मैंने तब चतुराई से कहा था “हेंडरसन साब यह नहीं चाहते कि ये किताबें स्कूल से बाहर जाएं।” और तब वे दोनों ही निरुत्तर हो गए थे। और उसके बाद उनके सचिव ने मुझसे कभी बात नहीं की। और आज ट्रेमेइन साब ने खुद यह इच्छा जाहिर की। पर किताब तो उन्हें भी नहीं मिली न।

मैं तो इस तीसरे संस्करण को आगे बढ़ा ही नहीं पा रही हूँ। मैंने ट्रेमेइन साब को भी बता ही दिया आखिर कि “अब मैं और कर ही नहीं सकती। मैं एक-एक प्रारूप तो पाठमालाओं का बना लेती हूँ, पर प्रतियां नहीं बना पाती। मेरा सुलेख बिगड़ चला है। बुढ़ा चली हूँ मैं। चूकने लगी हूँ। लगता है फ्यूज ही उड़ चला है मेरा।”

पर अब सब कुछ बदलने वाला है। ट्रेमेइन साहब छपाई का काम संभाल लेंगे और मेरी नजर में एक नौजवान है जो चित्र बना सकेगा। “ट्रेमेइन साब आपको बधाइयां। इन किताबों को मृत्यु शैया से उठाकर आप बचा लेंगे।” इन माओरी प्रवेशिकाओं में सालों के प्रयोग और नवाचार जो लगा चुकी हूँ मैं।

ट्रेमेइन साब के लिए एक टिप्पणी

जिन संज्ञाओं का मैं इन इहाका पुस्तकों में उपयोग कर रही हूँ, उन पर श्री शैन्नेल के मत से असहमत होने पर मैं विवश हूँ। उनका कहना है कि हम वाक्यों में सोचते हैं। पर यह बात आंशिक रूप से सच है। हो सकता है कि हम सोचते वाक्यों में हैं, पर देखते तो हम बिंबों में ही हैं न। और ये बिंब अकेले अकेले ही होते हैं। खासकर माओरियों के संदर्भ में यह बात और सच है। माओरी बच्चे जिस तरह बोलते हैं उसे मैं ‘अभिव्यक्ति का एक शाब्दिक’ तरीका कहती हूँ। मुझे लगता है कि माओरी मस्तिष्क ही कलाकार की विशेषताएं लिए हुए होती है। वे एक पूरे बिंब के लिए एक ही शब्द का इस्तेमाल करते हैं और संबंधित अर्थ, हावभाव, भंगिमाओं, आवाज के आरोह-अवरोह और स्पर्श से साथ जुड़ता चला जाता है। और यह सब एक माओरी से दूसरे तक स्वभाविक सरलता के साथ संप्रेषित होता रहता है। इसलिए कि अब भी माओरी सामुदायिक मस्तिष्क खंडित होने से बचा हुआ है। एक बेहद सूक्ष्म संवेदनशीलता प्रायः उस सीमा तक उनमें परस्पर बनी हुई है कि हम चाहें तो उसे परा-इंद्रियबोध (टेलीपैथी) भी कह सकते हैं। शब्दों से बातचीत तो संवेदन, भंगिमा, हावभाव और स्पर्श के सामने निरर्थक ही हो जाती है न। मेरा मतलब है कि शाब्दिक संवाद का स्थान ले लेती है ऐंद्रिक और शारीरिक बातचीत। और जब दो व्यक्ति एक दूसरे के इतने करीब हों तो शाब्दिक संवाद घटते घटते एक शब्द वाले वार्तालाप का रूप ले लेता है।

माओरी भाषा आलंकारिक मानी जाती है। पर उसका उपयोग केवल भाषणों में ही होता है। अगर कोई माओरी बच्चा दौड़ता हुआ आपके पास आए और जोर से कहे “आदमी! आदमी!” तो आपकी उसकी उत्तेजना से, उसकी निकटता से, उसकी आवाज से, उसके स्पर्श से यह स्वयं ही समझ लेना पड़ता है कि वह कहना चाह रहा है कि “कोई अपरिचित व्यक्ति दरवाजे पर है। मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा है। कौन होगा वह व्यक्ति? क्या चाहिए उसे ? अगर आपको यह सब पता चले तो मुझे भी बताएं, मैं तो जिज्ञासा से भरा ही जा रहा हूं। मुझे अपरिचित अतिथियों का आना बेहद पसंद है।”

एक बार मैंने फोन उठाया। फोन के तार किसी ओर के साथ मिल गए होंगे सो मैंने दो माओरी पुरुषों की पूरी बातचीत सुनी।

पहला व्यक्ति : हल ?

दूसरा व्यक्ति : नहीं !

उनकी आवाजों के उतार चढ़ाव, उनका बीच में चुप रहना और टेलीफोन के बंद होने की खटाक ने बाकी अर्थ इस संवाद से जोड़ दिए।

जिन संज्ञाओं का मैं प्रारंभिक शब्दों के रूप में उपयोग करती हूं, वे किसी माओरी के लिए एक शब्द वाले वाक्य ही हैं। यानी वे एक बौद्धिक वातावरण से दूसरे में जाने के लिए नितान्त जरूरी हैं। माओरी प्रवेशिका पढ़ने वाला कोई भी बच्चा इन्हें विशेषणों या सर्वनामों की तुलना में पांच गुनी रफ्तार से सीखता है, और अगर ये संज्ञाएं उस बच्चे की निजी भावभूमि से चुनी गई हों तो दस गुनी रफ्तार से। और संज्ञाओं से परिचित होने के दौरान वह प्रसंगवश अक्षरों और उनके उपयोग से भी परिचित होता चलता है। और जब तक वह पहली किताब तक पहुंचता है जिसमें अनेक शब्दों के वाक्य हैं, वह अपने ही आप पूर्वसर्ग (प्रीपोजिशन), क्रियाओं और समुच्चय बोधक शब्दों से जूझने के लिए तैयार हो जाता है।

मुझे पहले पहल इन एक शाब्दिकों की ही जरूरत होती है। उनका चुनाव भी बड़े ध्यान से करना पड़ता है। और यही वह प्रयास भी होता है जहां हम माओरी प्राथमिक पठन को ‘पा’ के वातावरण से जोड़ पाते हैं।

यह सब माओरी बच्चों के लिए तो बिलकुल स्वाभाविक है...और मेरे लिए भी।

ट्रेमेइन साब के चले जाने के बाद मेरे मन में आए विचार

संप्रेषण साम्राज्ञी बाईवीनी पूरे समय हमारे ठीक सामने खड़ी रही। वह लगातार हमारे चेहरों और उन पर आते-जाते भावों को पढ़ती रही। छह साल की कच्ची उम्र में ही उसके पास समझदारी और संवेदना की अद्भुत सौगात है, यह मुझे अब और स्पष्ट दिख रहा है। अभी भी उसका चेहरा मेरी आंखों के सामने घूम रहा है। मेज पर कोहनियां

टिकाए, हथेलियों पर टुड्डी रखे, दोनों ओर रिबन से बंधे बाल और पूरी तरह फटी हुई उसकी सजीव भूरी आंखें—मानो जो खेल सामने हो रहा था उसे अंतस में सोख लेगी। मुझे यह मालूम है कि उसे कौन सा आकर्षण वहां खींचे लाया था। उसे आकृष्ट किया था मेरे मनोभावों ने। माओरी बच्चे इन्हें कितनी अच्छी तरह समझते हैं। बातचीत हमारी उसकी समझ से कहीं परे थी यानी हमारी शाब्दिक बातचीत। पर मेरे चेहरे पर चढ़ते उतरते भाव, मेरी आवाज का हर बदलाव, हाथों की भंगिमाएं, यानी मेरा अभिनय वह बखूबी समझ रही थी। वह वहीं खड़ी रही, पूरे दो घंटे तक, नौ से ग्यारह बजे तक। तब तक जब तक कृहनियों के बल टिका उसका चेहरा नींद से बोझिल हो झुकने लगा। और मैं भी यह समझती रही कि वह अपने उस दिन के पाठ से कहीं अधिक, कहीं जरूरी बातें सीख रही थी। उसने बातचीत के दौरान माओरी किताबों के बारे में भरे भावावेग के हर स्तर को हर क्षण महसूस किया था, यह मैं समझ सकी थी। मैं माओरियों को समझती जो हूं और सच, यह घटना मैं कभी, कभी नहीं भूलूंगी।

इस बीच ट्रेमेइन साब ने कहा, “मुझे यह टाइपराइटर अपने एक मित्र से मिला।” यह अद्भुत टाइपराइटर ऐसे अक्षरों में छापता था जो बच्चों की किताबों में छपे अक्षरों जैसे थे। “मैं तो टाइपराइटर खरीद ही लेना चाहता था। पर उसे भी उसके किसी दोस्त ने भेंट किया था और वह साथी अब चल बसा है, यह टाइपराइटर उसके लिए एक यादगार भी बन गया था। सो वह उसे बेचना नहीं चाहता। आपको अक्षर तो ऐसे ही चाहिए ना, यह तो तय कर चुकी हैं न आप ? काम करने के लिए टाइपराइटर देने को तो वह तैयार है।”

टाइपराइटर के अक्षरों का नमूना वे साथ लेते आए थे। उन्हें देख मेरे हाथ फैल गए “डर लग रहा है, कहीं इन्हें देखते-देखते रो ही ना पड़ूं।” मैं स्टोर की ओर भागी, अपने हाथों से लिखी किताबें उठा लाईं। पहले थोड़ी सी फिर कुछ और जल्दी ही ढेरियां में भेज के चारों ओर उनकी ढेरियां लगा दीं मैंने। थोड़ी, थोड़ी कर तब तक लाती रही मैं किताबें जब तक कि उन्होंने उसांस भर अपनी आंखें हथेलियों से न ढांप लीं ...।

माटाव्हेरो एक संवेदनशील बच्चा है और उसके लेखन से इस बात का पता भी चलता है। और जैसा अपेक्षित था नई सहायिका की उपस्थिति से उसमें एक हिंसक प्रतिक्रिया हुई। वह बौरा कर शेखी बघारने लगा। प्रतिक्रिया अपने चरम पर उस दिन पहुंची जब मैं कोलीन के जिम्मे नन्हे-मुन्नों को छोड़कर बड़ी बच्चियों को बास्केटबॉल का अभ्यास करा रही थी। माटाव्हेरो ने तब गोर्डन की जमकर टुकाई कर डाली। गोर्डन जुड़वां बच्चों में एक है। लौटकर मैंने उसे सुबकता पाया।

‘अरे क्या हुआ, बेटे गोर्डन ?’

वह चाहकर भी उत्तर न दे सका। आखिरकार उसके जुड़वां भाई ने बताया “माटाव्हेरो ने मारा है।”

शायद आश्चर्य तो नहीं हुआ मुझे, पर अंदर, बहुत अंदर कहीं, एक भूरे बच्चे द्वारा एक गोरे की टुकाई पर मेरे भीतर जातीय उबाल सा उठने लगा। अपने चढ़ते पारे के संकेतों को पढ़कर मैंने उस पर लगाम लगाने की काशिश में एक कृत्रिम टंडक से कहा “माटाव्हेरो तुम स्कूल के बाद में रुकते जाना।”

“उसने ...उसने पहले मुझे पेट पर घूंसा मारा था।” माटाव्हेरो ने चतुराई से बात गढ़ी। पर मैं यह समझ गई कि गोर्डन किसी लड़के को तो क्या किसी चीज तक को मुक्का मारे यह विचार ही अस्वाभाविक था, बिल्कुल असहज। मैंने माटाव्हेरो की बात को अनसुना किया, गोर्डन को तसल्ली बंधाती रही। और अपने क्रोध को पूरी तरह वश में करने की मंशा से मसले को ही कुछ देर के लिए परे सरका दिया।

कमरे में उस समय इधर-उधर कई बड़ी बच्चियां भी थीं। कुछ सफाई में लगी थीं कुछ पियानो का अभ्यास कर रही थीं, कुछ बुन रही थीं, और कोलीन भी वहीं थी। कुछ देर बाद सभी बच्चों को बाहर भेजा गया। मैंने माटाव्हेरो से भी कहा “तुम भी अब जाओ माटाव्हेरो।”

मैं उसे बेहद प्यार करती हूं पर फिलहाल उससे बहुत बहुत नाराज हूं, यह वह कैसे समझा इसका बयान न कर अगर यही बताऊं कि आगे क्या घटा, तो काफी होगा। इस बार फिर उसकी प्रतिक्रिया बिल्कुल माओरी शैली में सामने आई, शायद इसलिए कि कुछ दर्शक भी सामने थे, यह तो उसे हमेशा से ही अच्छा लगता रहा है। उसने अपनी मुट्ठियां भींची, और अपने छोटे-छोटे पैर पटकता हुआ, वह बाहर चला गया। मैं क्षण भर को स्तब्ध रह गई। और इसके पहले कि मैं उसके दृष्टिकोण से देख उसके तर्क समझ पाती जैसा करने का प्रयत्न मैं भरसक करती हूं, मेरे अंदर जो खुदबुदा रहा था वह फट पड़ा। मैंने जोर से कहा “बदत्मीज न बनो, माटाव्हेरो।”

इन शब्दों के परे छुपी मेरी धमकी उसे जरूर खुद समझ में आई होगी, क्योंकि सभी माओरी आवेगों को स्वाभाविक रूप से पढ़ और समझ सकते हैं। जाहिर था कि उसे गहरी ठेस पहुंची। अब उसने पैर और जोर से पटके, मुट्ठियां हवा में लहराने लगा। दर्शकों की मौजूदगी का आभास उसे बराबर था।

दर्शकों की मौजूदगी का अहसास मुझे भी था। पर एक दूसरे अर्थ में। मुझे उसकी धृष्टता पर शर्म आ रही थी। मेरा पारा चढ़ता जा रहा था। पर मैं उसे छूना तक नहीं चाहती थी, क्योंकि मैं अपने क्रोध को जानती हूं। मैंने कोई ऐसा उपाय सोचा जो कम खतरनाक हो। “माटाव्हेरो तुम सीधे हेंडरसन साब के पास जाओ।” आवाज मेरी अब भी ठंडी ही थी। मैंने कमरा पार किया, उसका हाथ थामा। पर उससे पहले कि हम

पूरी सीढ़ियां उतरते वह विखर गया और जोर-जोर से रोने लगा। और तब अचानक अपना गुस्सा भूल मैंने उससे ऐसा कुछ करने को कहा जो उसके बस में न था। मैंने चुपाते हुए कहा—“ना, ना रोओ मत, माटाव्हेरो” अब मैं उसे थपथपाने लगी थी “तुम तो अच्छे बच्चे हो ना। रूमाल कहां है तुम्हारा ?”

“कमरे में रखा है” कह वह अंदर भागा। पर लौटा नहीं, सो मैं अंदर आई। “वह बच्चा कहां है ?” मैंने जानना चाहा।

माटाव्हेरो कमरे के कोने में रखी मेज के दराज से अपना रूमाल निकालने में समय बिता रहा था। “अपना रूमाल ढूंढ रहा है वह,” किसी ने उसके बचाव में कहा। इस क्षण के पहले मुझे इस बात का कतई अहसास न था कि बच्चे तो सभी उसके ही पक्ष में होंगे। मैं उसकी ओर बढ़ी। यह तो मैं जानती ही थी कि भूल आखिर मेरी ही थी। सब ही तो गड़बड़ा गया था, सिर्फ इसलिए कि मैं नाराज हो गई थी। अपनी भूल की कीमत तो मुझे ही चुकानी थी। और वह भी सबके सामने। “तुम घर जाओ माटाव्हेरो”, मैंने कहा “और कल न आना। मुझे ऐसे लड़के नहीं चाहिए जो दूसरों को मारें।”

“मैं नहीं जाऊंगा। मैं एमिली का इंतजार करूंगा।”

और तब अचानक सब कुछ खत्म हो गया। पर समय रहते मैं यह तो फिर से समझ सकी कि उसे मुझे हाथ तक नहीं लगाना चाहिए। मैंने अब बात बदल कर कहा “तुम हेंडरसन साब के पास जाओगे। जरा हेंडरसन साब को बुला लाओ”, मैंने वाईवीनी से कहा। सोचिए जरा, किसे कैसा काम सौंपा मैंने। वह घोंघे की चाल से उंगलियां मरोड़ती अनिच्छा से गई। माटाव्हेरो को तब मैंने उसके स्वेटर के छोर से पकड़ा, सीढ़ियां उतर कर मुख्य भवन की ओर बढ़ी। उसके विरोध का स्वर “मुझे घर नहीं जाना है। मैं एमिली का इंतजार करूंगा”, साथ में ताल दे रहा था।

दूब के उस छोर तक पहुंचने के पहले वह रूक गया। मैं उसे थामे हुए थी। पर के. को इतनी देर क्यों लग रही थी। मैं इस नाटक से अघा चुकी थी और अब बरसात भी होने लगी, पर उसे फिर भी मैं पकड़े रही। अब अचानक माटाव्हेरो महान ने अपना विचार बदल दिया। ‘मैं घर जाता हूँ,’ उसने हथियार डाल कर कहा।

मैंने के. को बुलाने के लिए किसी और को ढूंढने का प्रयास किया। जाहिर था वाईवीनी माटाव्हेरो के हित में दफ्तर का रास्ता ही भूल गई थी। मुझे गोर्डन दिखा। उससे बेहतर कौन होता ? “गोर्डन जाकर हेंडरसन साब से कहना कि मैंने उन्हें बुलाया है।” गोर्डन अपना पसंदीदा काम पूरा करने में तेजी से भागा।

बारिश अब तेज हो चली थी। शिक्षकशा के आंगन में अब ढेरों दर्शक थे, मय कोलीन के, जिसकी नजर में मैं पिछले तीन दिनों से एक आदर्श शिक्षिका बनी हुई थी। शोड और मुख्य भवन की सीढ़ियों पर भी अब ढेरों बच्चे तमाशबीन बन इकट्ठे हो गए

थे। पर माटाव्हेरो को मैं फिर भी पकड़े खड़ी थी। अंततः के. बरसात में हमारी ओर बढ़ते दिखे। “मैं चाहती हूँ कि आप इस लड़के को समझाएं। पूरे दिन यह शैतानी करता है और आज तो मुझसे भी बेहद बदतमीजी से पेश आया है।” और यों मैंने उसे सोंप दिया...।

इस वक्त इस प्रकरण को लिखते समय मैं अपने आप से बेहद-बेहद नाराज हूँ। शर्मिदा हूँ अपने आप पर। और यह भी जानती हूँ कि मुझसे भूल कहां हुई। उसी क्षण जब मैं नाराज हुई...।

पिछले दो दिन से मैं हाई स्कूल औपेरा के लिए गिस्बोर्न में हूँ। मेरी अनुपस्थिति में मेरिआन और रांगी ने मिलकर चुपके चुपके पूरे घर की सफाई कर डाली। नहानघर और रसोईघर तक रगड़-रगड़ कर धो डाले। पूरा घर चमचमा उठा। मानो बिलकुल ही नया हो। हर बिस्तर, हर कमरा, मेरी वह असंभव श्रृंगार की मेज भी, यहां तक कि मेरे बेटों का कमरा भी, जो आमतौर पर परिभाषा के परे होता है, सब एकदम साफ-सुथरे थे।

माटाव्हेरो के बारे में कुछ और भी। डी.एच. लॉरेंस ने कहा था कि “अगर कोई बच्चा बेहद परेशान करे तो आप उसके बेशक पीटें, बल्कि ठीक से, जोर से पीटें क्योंकि यही उसके हित में होगा। आखिर बच्चे को भी यह समझ लेना चाहिए कि वह कब दूसरों को परेशान कर रहा है।” पर डी.एच. लॉरेंस* के अपने खुद के बच्चे नहीं थे। और शायद यही कारण है कि वे हम जैसे लोगों के विपरीत इस विषय पर निष्पक्षता के साथ सोच सकते थे। किस कदर उलझे होते हैं हम अपने बच्चों के साथ। मैं एक स्नायुशास्त्री को भी जानती हूँ जिनका कहना है कि “जब दो साल के बच्चे अपने गुस्से को जताने का कोई भी दूसरा तरीका दुश्चिंताएं जगाता है। और फिर सही समय पर जड़ी चपत बच्चे के मन में कुछ वैचारिक संबंध भी पैदा करती है।” मेरे अपने बच्चों के साथ मेरा अनुभव भी कुछ ऐसा रहा था कि बिना टुकाई के उनसे कुछ करवाना असंभव ही था।

पर इस सबके बावजूद... मैं स्वीकारती हूँ कि माटाव्हेरो को नाराज होने का उतना ही अधिकार था जितना मुझे। आखिर मैं भी तो बाहरी अनुशासन को हटाकर पूरी ईमानदारी के साथ हमेशा ही उस अस्तव्यस्त सहज आचरण को ही पनपाती रही हूँ। और फिर तब अचानक ही उस बेहद नाजुक क्षण में मैंने उसके स्वाभाविक आचरण में बाधा डाली थी। आखिर क्यों ? गर्व, गर्व ही तो था न यह।

शर्मनाक है यह ...। बेहद बेहद शर्मनाक।

* बीसवीं सदी के अंग्रेजी के कवि-कथाकार जो अपनी रचनाओं के कारण विवादास्पद रहे।

आश्चर्य कि सुबह चार बजे तक जगने वाली रात नहीं गुजारी मैंने। शायद इसलिए कि मैं पूरे प्रकरण की दो बार चर्चा कर चुकी थी। पहली बार टॉम से तब दूसरी बार के. से।

शायद ही किसी को यह अहसास हो कि लड़कियों के साथ काम करते समय मुझे किस कदर सूजे हुए मुंह, बात बात पर नाराजगी, मिजाजों और आंसुओं की झड़ियों का सामना करना पड़ता है। और सच पूछें तो लड़कों के साथ भी। असल में यह सब शायद उस मानदंड पर निर्भर करता है जिससे आप बच्चों के व्यवहार को नापना चाहें। यूरोपीय दृष्टिकोण से देखें तो उनका आचरण भयानक ही लगेगा। पर माओरियों के लिए तो यह सब सामान्य और सहज ही है। बास्केटबाल के मैदान में :

“श्रीमती हेंसन मैं पाउलेट से अपनी जगह बदल लूं ?”

“नहीं।”

“आंसू।”

किसी एक ने हांक लगाई “हेलेन, बड़ी बेईमान हो तुम।”

आंसू और खेल समाप्त तक सूजे हुए चेहरे।

“श्रीमती एच. मैं अब गोल के पास से खेलूंगी। बीच में खेलते-खेलते परेशान हो गई हूँ।”

“तुम अपनी जगह तब तक नहीं बदलोगी जब तक तुम अपनी पहली जगह से खेलने का पक्का अभ्यास न कर लो। तुम्हारे तो पैर तक अभी भी जगह से हिल जाते हैं।”

क्रोध। गुस्से से सिर झटकना और भी ना जाने क्या-क्या। और इस दौरान बाकी बच्चों का इस प्रदर्शन को प्रशंसा-भाव के साथ देखना।

मैंने के. से इस विषय पर चर्चा की। जानना चाहा कि जब कोई लड़की मुंह फुला ले तो क्या उपाय किया जाए। के. का जवाब था “खेल से तुरंत बाहर करो बच्ची को। उस पर कतई ध्यान न दो। बल्कि उसकी जगह किसी दूसरी बच्चों को ले लो।”

परिणाम : “श्रीमती एच. मैं रांगी से जगह बदल लूं ?”

“नहीं।”

आंसू। और मुंह फूल कर कुप्पा।

“ठीक है, बाहर निकलो तुम! तुम्हारा खेल आज तो खत्म हुआ।”

“नहीं, नहीं, ठीक हूँ मैं यहीं पर।”

कितना आसान सा उपाय।

पर मैंने यह कभी किसी से नहीं कहा कि “रोओ मत।” असल में रोने से मेरा कोई झगड़ा है ही नहीं। आंसू तो मुझे उतने ही प्यारे हैं जितने मेरे बच्चों को। पर मुंह सुजाने

का मतलब होता है पूरे खेल का सत्यानाश। और आंसू ? वे तो सच में बेहद सुंदर होते हैं। आंसू इस बात का प्रमाण भी होते हैं कि मौका पड़े तो इन्हीं आंखों से वे आपके लिए भी उतनी ही तत्परता से झरेंगे।

और रही मेरी शिशुकक्षा, वहां तो मानो बिना किसी न किसी बखेड़े के किसी दिन का काम ही पूरा नहीं होता। और सच पूछें तो मनोभावों का यह प्रदर्शन ही हमारी कक्षा को तनाव मुक्त भी रखता है और तब बच्चे अपनी संपूर्ण क्षमताओं के अनुरूप अच्छा काम भी कर पाते हैं। और सच कहूं तो इसके लिए आंसूओं या क्रोध को झेलने के रूप में जो कीमत चुकाई जाती ही है, वह तो कुछ भी नहीं है, अगर आप इसे कीमत कहना चाहें तो।

मैंने अपनी माओरी प्रवेशिका-इहाका प्रथम पुस्तक-के साठ पृष्ठ ट्रेमेइन साब को भेजे। उन पृष्ठों को उनके दफ्तर की एक लड़की उन अद्भुत बच्चों वाले अक्षरों में टाइप करेगी। जब ये पन्ने मेरे पास वापस आए तो मैं खुशी से भर उठी।

पहली प्रति पर छपे शब्दों के ऊपर मैं चित्र बनाती हूँ। चित्र की बाहरी रेखाओं के साथ अपनी सहायिका को बाकी पांच प्रतियां थमा देती हूँ (हर पन्ना छह प्रतियों में टाइप हो रहा है)। कोलीन उन चित्रों को शेष पन्नों पर उतारती है, तब रंग भरकर उन्हें तैयार कर लेती है। काम वह सुधड़ता से करती है। और यों धीमी रफ्तार से हम आगे बढ़ रहे हैं। मैंने तो हमेशा ही स्वीकारा है कि हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में भी चमत्कार हो सकते हैं। सच कहूं तो मैं इन चमत्कारों की अपेक्षा भी करती हूँ।

उस दिन अकस्मात ही शिक्षा-बोर्ड की ओर से कुछ अतिथि आ पहुंचे। उन्होंने आते ही ऐलन किया “सोचा, हम सब साथ-साथ ही चलते हैं।”

“आप सबका स्वागत है। मुझे तो अनपेक्षित घटने वाली हर चीज बेहद अच्छी लगती है।”

“इस दिशा में आ जाने के बाद हम सब बिना मिले कैसे लौट सकते थे।”

“परिचित तो आप से हम होकर ही रहेंगे।”

मैरिऑन पियानो पर अभ्यास कर रही थी। जो धुन वह बजा रही थी वह थी ‘बिग इनफ फॉर टू’ (दो क्लिए पर्याप्त)। बच्चे अब तक चित्र बनाने में मशगूल थे। धुन सुन वे जोश के साथ गाने लगे।

अचानक मुझे कुछ सूझा। मैंने अतिथियों से पूछा “आप सब क्या ‘हुला नृत्य’ देखना चाहेंगे ?”

“अरे जरूर, वह देखना तो बड़ा अच्छा लगेगा।”

मैं पियानो की ओर दौड़ी, आजकल सहायिका के कारण मैं हर दिशा में तेजी से ही चलती हूँ। मैं पियानो पर बैठ गई और बच्चों को गरमाने के लिए हमेशा की तरह

पहले दो एक गीत बजाए “अगर पता होता कि आप पधारेंगे तो पकवान बनाए होते” आदि। धुन सुनते ही बच्चे अपनी-अपनी जगह से ही मुड़कर गाने लगे। तब मैंने हुला धुन शुरू की “थोड़ा सा बस हुला-हुला, हे हा, हे...” कुछ ही क्षणों में सब बच्चे ताल दे रहे थे और नाचने वाले अपने नृत्य में पूरी तरह खो गए थे। काश कि आप भूरी जैनी के हाथ, माकरे का हिलता थुलथुल शरीर और ररेमोना की मटकती आंखें देख पाते। पर हमारी मुख्य कलाकार कहां थी ? कहां छुपी थी हमारी वाईवीनी? वाईवीनी एक सच्ची कलाकार तो बिना अपनी कमी का अहसास करवाए वह मंच पर उतरती कैसे भला ? मैंने उसे आवाज दी “वाईवीनी।” और तब वाईवीनी जीवंत गतिशीलता के साथ हुला नाचती हुई आगे बढ़ी। धीमे, धीमे, कमर लचकाते शरीर को लहराते वह हाथों से ताल देते बच्चों के घेरे के ठीक बीचों बीच आ खड़ी हुई। घेरे के सारे बच्चे तब नाचते गाते छोटे घेरे में सिमट आए। हरेक मुग्ध था।

उनके लौट जाने के बाद मन में यह विचार उठा कि न जाने मुझे यह करना भी चाहिए था या नहीं। आखिर वे सब शिक्षाबोर्ड के सम्माननीय सदस्य थे। ऐसे विशिष्ट अतिथियों के सामने बच्चों का ऐसा नृत्य।

पर मेरा भी तो सिद्धांत यह ही है न कि “पहले करो और तब उस पर सोचो।”

बुधवार को ट्वायफोर्ड के साथ बास्केटबाल मैच है। सब लड़कियां अपने अपने पीले स्वेटर खत्म करने में और कोट के पाकेट काढ़ कर सीने में जुटी हुई हैं। इन बारह वर्षों में मैं पहली बार इन टुकड़ियों के साथ जाऊंगी। जाना चाहूंगी। आखिर मैंने उनके साथ हर दिन क्या यों ही मशक्त की है ? मुझे खुद अपनी आंखों से सब देखना है। उनकी गलतियों पर ध्यान देना है, तब उन्हें सच-सच उनके बारे में बताना है। इसलिए ताकि जब उत्तरी हेवलॉक की टीम सप्ताह भर बाद अगले शुक्रे को आए तब तक वे अपने खेल को कुछ बेहतर बना सकें। लगता है मैं भी चंट होती जा रही हूं। सोचिए तो जरा कि बास्केटबाल के लिए भी मैं अब कैसी कैसी जुगत भिड़ाने लगी हूं।

पॉली : “श्रीमती हेंडरसन आपकी उम्र क्या है ?”

“क्यों ?”

“आज प्रश्नोत्तरी (क्विज) में सवाल पूछने की मेरी बारी है। मुझे लगता है कि यह सवाल बढ़िया रहेगा। पर जवाब तो मुझे पता होना चाहिए ना, पहले से।”

माटाव्हेरो स्कूल समिति के अध्यक्ष का पोता है। यह मानते हुए मुझे शर्म तो आती है पर एक स्त्री की दृष्टि से उनकी उपस्थिति का अहसास रहा है। आज तक मैंने जितने भी पुरुष देखे हैं, उनसे वे कहीं अधिक लंबे-चौड़े हैं। माटाव्हेरो उनके विपरीत बिलकुल

नन्हा सा है। पर एक साम्य दोनों में है। दोनों बड़ी सिफत से झूठ बोल लेते हैं। पर मुझे तो झूठ बोलना भी अच्छा लगता है। आखिर झूठ गढ़ने के लिए भी तो कल्पनाशीलता की जरूरत होती है। और फिर झूठ बोलने से साधारण उबाऊ स्थितियों के बदले उत्तेजक स्थितियां सामने आती हैं न।

माटाव्हेरो के पतन की दूसरी सुबह मैंने उसे स्कूल के दरवाजे तक आते देखा था। पर वह मुड़ा और घर लौट गया था। मैं उस समय अपने कमरे में आइने के सामने खड़ी थी, मुझे उसकी झलक दिखी थी। वैसे तो मैं सिद्धांततः किसी बच्चे के पीछे दौड़ती ही नहीं पर आखिर माटाव्हेरो समिति अध्यक्ष का पोता था, जिनकी उपस्थिति का मुझे अहसास भी था लिखा था न उनके बारे में मैंने ...?

मैंने माटाव्हेरो को अपने रबर के जूते और कोट पहने घर की ओर लौटते देखा, ठीक क्रिस्टोफर रॉबिन की तरह। मैंने पीछे से हांक लगाई, “माटाव्हेरो! स्कूल आ जाओ भई। तुम तो अच्छे बच्चे हो ना।”

वह मुड़ा उसने बड़ी तटस्थता से मुझे देखा। उसकी नजर में मैं शायद झुर्रियों से भरी बुढ़िया डायन ही रही होगी, उस वक्त। “लौट आओ भई”, पर इस बार मेरी आवाज में आत्मविश्वास कम हो चला था।

कुछ देर उसने खड़े-खड़े इस पर विचार किया, तब वह घर का ओर चला गया। कुछ देर बाद मैं स्कूल में थी। अचानक सांड की तरह हेकडते अध्यक्ष महोदय आ पहुंचे। “मैं शहर जा रहा था। माटाव्हेरो आज फिर वापस घर लौटता मिला। उसने बताया कि कल उसे फिर डांट पड़ी थी। और आज भी जब सुबह वह स्कूल आया तो श्रीमती हेंडरसन ने उसे वापस भेज दिया। यह भी कहा कि फिर कभी स्कूल न आना।”

“यह तो एक बच्चे की गद्दी हुई कहानी है।” शांति दूत के. ने कहा।

“श्रीमती हेंडरसन ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा होगा।”

“खैर मुझे तो उसने यही बताया। मैं तो बस में जाने ही वाला था कि वह मुझे दिख गया।”

“पर पीटर वह तो एक नन्हा सा बच्चा ही है न, उसकी कही बात को शब्दशः मानना ठीक नहीं होगा।”

“उसने यह भी तो कहा कि कल उसे डांट पड़ी थी।”

“हां, कल जरूर पड़ी थी डांट। क्योंकि उसने अपनी कक्षा में बेहद घृष्टता की थी। मैंने ही तो झाड़ा था उसे।”

बाद में बच्चों ने बताया “पीटर दरवाजे पर खड़े हैं।”

उन्हें अंदर आने को कहा। पर वे आए नहीं। बस यही कहलवाया कि वे श्रीमती हेंडरसन से मिलना चाहते हैं। मैं उठी। लकड़ी के ब्लाक से मकान बनाते बच्चों के ऊपर

उन्हें देखा। उनके चेहरे को देख एक बारगी सकते में आ गई। उनका वजन ज्यादा है और दिल के मरीज भी हैं वे। माटाव्हेरो के खाने का डब्बा उनके हाथ में था।

“मुझे माटाव्हेरो से मिलना है।” उन्होंने गंभीर आवाज में कहा।

“वह यहीं तो है।”

“उसका डब्बा देना है मुझे।”

मैं यह अटकल लगाती रही कि अपने पोते को बुलाने के बदले उन्होंने मुझे क्यों बुलाया होगा। उस रात सोने से पहले मुझे उनका लाचारी से पुता चेहरा याद आता रहा। उनकी पत्नी का देहावसान तो काफी पहले हो चुका है।

इस घटना के कुछेक दिन बाद ही वे समिति के बैठक के बाद काफी देर तक बैठे रहे। उनकी यही अकेली माओरी आदत है जो वे हमारे सामने जाहिर करते हैं। “बड़ी देर कर दी ना मैंने ?” उन्होंने कहा।

“कोई बात नहीं, सुबह आराम से उठ जाइयेगा।”

“भई सुबह उठकर मुझे अपने पोते का नाश्ता जो बनाना पड़ता है।”

“माटाव्हेरो का ? पर उसकी मां नहीं उठती है क्या ? या उसके पिता ?”

“वह तो मेरे हाथ की सेंकी डबल रोटियां ही खाता है। मैं वैसी बना सकता हूँ जैसी वह पसंद करता है। उसकी मां तो उसकी पसंद का नाश्ता बना ही नहीं पाती।”

कुछ ही दिनों में नए सीखे जाने वाले शब्दों में एक शब्द और आ जुड़ा ‘गुरांना—इस शब्द का प्रयोग बच्चे ‘डांटने’ की जगह करते हैं। शब्द उन्होंने अपनी माओरी पाठमाला से सीखा। किसी भी सम्मानजनक ठंडी, उबाऊ और द्विआमी अंग्रेजी किताब में कहां मिलता यह शब्द। माटाव्हेरो ने डांट खाने के अपने अनुभव के बाद उसे एक ही बार देखा, और तब वह उसे कभी नहीं भूला।

आज काहू स्कूल आया। हमने उससे अनुरोध किया था कि वह हमारे बच्चों को ‘वाई आता’ (एक खास तरह का माओरी गीत) और ‘हाका’ (माओरी युद्ध नृत्य) सिखा दे। यह भी उत्तरी हेवलॉक स्कूल के आने की तैयारी थी। वह नफासत भरे नए फैशन के कपड़े पहने ठीक ढाई बजे आ पहुंचा। मैं अभ्यास के लिए रुकी। वैसे मैं रुकती नहीं हूँ क्योंकि अभ्यास करते समय बारबार गीत की पंक्तियों को दोहराते सुनना मुझे कतई अच्छा नहीं लगता। बल्कि इन गीतों को दोहराते जाने पर एक नशा सा चढ़ने लगता है। मोहक होता है यह नशा भी। सरल स्वरों और माओरी कंठ के युगल प्रभाव के कारण बारबार एक ही धुन को सुनते सुनते मैं भी मानों झीमने ही लगी। बोर्ड पर लिखे शब्दों को काहू के गिटार के स्वरों के साथ गाते गाते मैं यह सोच रही थी कि यह बात भी माओरी सामुदायिक मस्तिष्क के बचे होने का एक अद्भुत प्रमाण है।

रुकी तो मैं इसलिए थी कि गीत सीख लूं। कभी काहू न आए और मुझे अभ्यास करवाना पड़े तो सुविधा रहेगी। पर मैंने जान लिया कि मेरा यह सोचना ही भूल थी। मैं उनसे कभी भी वह संगीत नहीं निकलवा सकूंगी जो काहू इस सहजता के साथ निकलवा रहा था।

बात सीधी सी है। मैं माओरी जो नहीं हूं। यानी अब मुझे अभ्यास के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है।

पहली प्रवेशिका का पठन फरवरी में नए आए बच्चों की प्रगति

हैरी (कई बार अनुपस्थित रहा)	3 शब्द
पैची (हमने अभी कुछ ही दिनों पहले जाना कि वह बहरा है)	12 शब्द
ब्लॉसम (बच्ची का शैशव लंबा खिंच रहा है)	10 शब्द
वीकी (मंद बुद्धि)	12 शब्द
मार्क (साधारण यूरोपीय बच्ची, पर उपस्थिति अच्छी है)	46 शब्द
टेम (प्रखर, शुद्ध माओरी)	68 शब्द

मैंने अब तय किया है कि मैं यूरोपीय बच्चों को अंग्रेजी की किताबों और माओरी बच्चों को इहाका किताबों से ही पढ़ाना शुरू करवाऊंगी। यानी इससे हमारी प्रवेशिकाओं की संख्या भी दुगनी हो जाएगी। पर दूसरा विकल्प है ही नहीं। गोरे बच्चों को गोरी और भूरे बच्चों को भूरी किताबें ही पसंद आती हैं। यह वे भी बताते हैं। पर अगर न भी बताते तो भी बात की पुष्टि का प्रमाण तो मुझे हर दिन मिलता ही है।

मुझे लगने लगा है कि जितनी हम बच्चों के हाथ में असली 'किताब' थमाते हैं उतनी ही तेजी से उनकी शब्दावली भी बढ़ती जाती है। पन्नों को स्वयं छूना, उन्हें पलटकर चित्रों को देखना तब लिखित शब्दों के अर्थ को समझना—यह सब सीखने में सहायक बन उठते हैं। अपने भूरे बच्चों को मैंने हाल में ही तैयार होकर आई 'इहाका' पुस्तकें दी हैं। पर तुरंत ही प्रगति की अपेक्षा मन में है। जानती हूं कि अब तक शब्दावली के विस्तार की जो गति थी, वह अब बेहद तेजी से बढ़ेगी।

मुझे यह देख कर ही बेहद अफसोस हो रहा है कि अगर मार्क को मैंने भूरी के बदले गोरी किताबें पकड़ाई होतीं तो उसकी शब्दावली भी कहीं अधिक होती। काश उसे स्वयं गोरी किताबों से जूझने दिया होता।

हमारी 'ए' टुकड़ी शिशुमाला में बिछी चटाइयों पर बैठी थी। शांत और गंभीर। ना जाने क्यों ?

“मुझे अफसोस है” मैंने कहा “कि मुझे हेलने को सजा देनी पड़ेगी...।” हेलेन बेहद ढीठ, वाचाल और दंभी बच्ची है। मुझे यह कहता सुन वह अचानक पीछे की ओर झुकी, उसके चेहरे पर ललाई फैलने लगी थी। मैंने बात आगे बढ़ाई “सजा इसलिए कि उसने ट्वायफोर्ड में बेहद बुरा बर्ताव किया। उसने मुंह फुलाया, बात नहीं मानी। यही कारण था कि खेल के आखिरी हिस्से में तुम लोग कोई गोल नहीं कर पाए, बल्कि हारते हारते बचे। रोने का मैं बुरा नहीं लगाती। जब हमें कुछ बुरा लगता है, हम सब रोते ही हैं। और खेलते समय अपनी जगह भूल जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो फिर से सीखा जा सकता है। पर मुंह फुलाकर कुप्पा बना लेना नहीं चलेगा। हेवर्लॉक के खेल में टीम के साथ तुम नहीं खेलोगी। मैं यह भी कर सकती थी कि तुम्हें टीम से ही बाहर निकाल दूं, पर तुम पूरे साल अच्छा व्यवहार करती रही हो। तुमने हर तरह की मदद भी मेरी की है। और इसलिए तुम्हें एक दूसरा मौका भी मिल रहा है। तुम अब हेवर्लॉक के बाद होने वाले पाकी-पाकी खेल में फिर खेलोगी। पर तब मैं फिर से तुम्हारे व्यवहार को देखूंगी।”

मैं इस बात को लेकर पहले आशंकित थी। क्योंकि यह तो संभव था ही कि हेलेन अपनी तेज तर्रार जुबान चलाने लगे और बदमिजाजी दिखाए। मैंने तो सपने में भी यह कल्पना नहीं की थी कि विपक्ष इस तरह भरभरा कर टूट जाएगा।

जब मैं ‘बी’ टुकड़ी को बॉल एक दूसरे को फेंकने का अभ्यास करवा रही थी तब जेन हैमंड अचानक खेलते-खेलते रुक गई। इसलिए क्योंकि वह अच्छा खेल ही नहीं पा रही थी। असल में हैमंड जैसे बच्चों को न केवल सभी सुविधाएं पा लेने की आदत बल्कि उन्हें यह भी नापसंद है कि कोई दूसरा उनसे बेहतर सिद्ध हो। मैंने पूरी कोशिश की कि मैं मुंह फुलाए खड़ी जेन को नजरअंदाज कर दूं। आशा थी कि वह थोड़ी देर में खुद को संभाल लेगी। और मैं एक नाटक से बच जाऊंगी। पर अचानक लिलि जोर से बोली “जेन तुम खेलती क्यों नहीं ?” अब चारा न था। मुझे जेन की ओर ध्यान देना पड़ा। मैंने सीटी बजाई।

“जेन, अंदर जाओ। खेलना बंद करो। मुंह सुजाने से नहीं चलेगा।”

हैमंड हिली तक नहीं। वह वहीं खड़ी जोर से चीखने लगी। पगलाकर रोने लगी, आंसुओं की बौछार लगा दी उसने।

“अंदर जाओ !”

जेन फिर भी डांट खाने के लिए “तैयार” मुद्रा में खड़ी रही।

“लोटस, हेंडरसन साब को बुलाना तो जरा।”

“जब के. सीढियों से उतर कर हमारी ओर आए तब तक आंसुओं और आरोपों की झड़ी अपने चरम पर थी।”

“हेंडरसन साब, यह लड़की मुंह सुजाए खड़ी है।”

“लिली, तुम्हें मुझे ऐसे नहीं कहना चाहिए। मुझसे बोलने का यह तो कोई तरीका ही नहीं है...।”

के. ने कहा “अंदर जाओ।”

किसी हैमंड बच्ची ने शायद पहली बार अपने मन माफिक होता न पाया। जेन ध मधमाती हुई अंदर गई। हमने अपना अभ्यास जारी रखा।

“जिन बच्चियों ने बुनाई शुरू की थी वे अपने हाथ ऊपर करें,” मैंने के. की कक्षा में जाकर कहा।

कुछ हाथ उठे। कुछेक ने समय रहते भांप लिया कि शायद दाल में कुछ काला है। सो चतुराई से उन्होंने हाथ नहीं उठाए। और सच बताऊं तो ऐसा करने वाले हैमंड बच्चे ही थे।

“विनी, तुम्हारी बुनाई कहां है ?”

“घर पर।”

“जीन तुम्हारी ?”

“घर पर श्रीमती हेंडरसन।”

रोंडा इस बीच बात को अरुचिकर जान किताब पढ़ने में मशगूल हो गई।

“सुनो” के. ने कहा “जब श्रीमती हेंडरसन तुमसे बात करे तो उन्हें सुनोगी तुम, हां। किताब उठाकर पढ़ना नहीं शुरू करोगी तुम।” फटकार रोंडा ने ठीक से ही झेल ली। माओरी बच्चों की चमड़ी मोटी होती है यानी, अधिकांश माओरी बच्चों की। और फिर डांट-फटकार सुनने की आदत उन्हें घर पर भी होती है। बड़ों की फटकार सह लेना उनके लिए बड़ों के प्रति आदर जताने के समान ही होता है। ऐसी कई आदतें आज भी माओरियों में बरकरार हैं। पर उस समय मैं आगे बोलती गई। मेरा जुकाम बढ़ रहा था और मैं हर तरफ से आजिज आ चुकी थी।

“हेलेन तुम्हारी बुनाई कहां है ?”

“मैं बास्केटबाल मैदान में बुन रही थी, एक लड़का टकरा गया मुझसे। कांटा छूट गया हाथ से और फंदे गिर गए।”

“बुनाई है कहां ?”

“घर पर।”

“रेचल, तुमने भी बुनाई ली है। तुम अपना हाथ क्यों नहीं उठाती ?”

सुस्ती से उसका हाथ ऊपर उठा।

“कहां है तुम्हारी बुनाई?”

“घर पर श्रीमती हेंडरसन।”

“और रोंडा तुम्हारी ?”

“घर पर।”

“नेट्टा तुम्हारी ?”

“स्कूल में।”

मैं पास खड़े उस व्यक्ति की ओर मुड़ी जो इस समय मेरे पति नहीं बल्कि इस स्कूल के हेडमास्टर थे। “हेंडरसन साब, इन लड़कियों को खूब अच्छी तरह से पता है कि हर दिन दोपहर ढाई बजे इनकी बुनाई की कक्षा लगती है। पर न तो ये वहां आती ही हैं, न ही अपना काम करके दिखाती हैं। इनमें से कई ऐसी हैं जिन्होंने मई की छुट्टियों के पहले अपना काम शुरू किया, पर खत्म एक ने भी नहीं किया है। जो कोई आज ढाई बजे बुनाई लेकर न आए उससे आप कृपया बात करें।”

“जरूर करूंगा।” सबके नाम तब लिख लिए गए।

मेरा पारा चढ़ रहा था। “ऊन आप लोगों को दे दिया जाता है, और सलाइयां भी यहीं से मिलती हैं। उधर उस कमरे में एक शिक्षिका भी बैठी है जो बुनाई के बारे में बहुत कुछ जानती है। पर तब भी आप लोग अपना काम पूरा नहीं कर सकते ? एक भी लड़की ने अपना स्वेटर पूरा नहीं किया है। आप सब...” मैंने अपने लंबे अनुभव में उस शब्द को तलाशने की कोशिश की जो उन्हें सबसे अधिक चुभें... “आप सब बेहद मूर्ख हैं।”

मेरा दिमागी वातावरण अब पूरी तरह अस्तव्यस्त हो चुका था। मुझे अपने आपको किसी भी तरह रोकना था।

“शुक्रवार तक सबकी बुनाई खत्म हो जानी चाहिए, नहीं तो आप सब इस बारे में और भी बहुत कुछ सुनेंगे।” इस समय तक मेरी आवाज घराने लगी थी। गुस्सा भी चूक गया था, सो मैं भी लौट गई।

शुक्र को हेवलॉक टीम के साथ हमारी ‘ए’ टीम को खेलना था। अभ्यास की बात हमने पहले ही तय कर रखी थी। पर मैं अभ्यास करवाने गई नहीं। घर लौट गई। अपने को किसी तरह खुश करने के लिए मैं खाने की टांडों की ओर बढ़ी। वैसे मैंने अपने मध्य आयु के कारण मोटापे को रोकने के प्रयास में अपने खने पर सख्त पाबंदियां लगाई हुई हैं। पर इस समय तो जो मेरे जी में आया वह सब मैंने खाया और अपने लिए चाय बनाई। इस सबके बाद, जिस नस्ली पूर्वग्रह का विरोध मैं ताउम्र करती आई थी, उस विरोध को भूल, अपनी आवाज में पूर्वग्रह की घृणा को घोल मैंने अपने आप से कहा “माओरी।”

पर जो भी हो वह केक था बड़ा स्वादिष्ट। टिकिया भी। और वह चाय, उसका तो कहना ही क्या, ढेर सी मलाई के साथ। मानो अमृत ही रहा हो।

“बेचारे माओरी।”

पर अगली सुबह मैंने के. से कहा, जो फिर से मेरे पति नहीं, बल्कि हेडमास्टर बन

उठे थे। “दो लड़कियां और थीं, बड़ी चंटई से उन्होंने हाथ नहीं उठाया था। जेन और क्रिस्टल हैमंड।”

आज मैं स्कूल गई ही नहीं। शिक्षकशा को कोलीन के ही भरोसे छोड़ा। दोपहर हेड साहब खाने खने घर आए। उन्होंने मुझे धीमे से बताया।

“आज तो स्कूल में हर ओर खूब बुनाई हो रही है।”

कितने अच्छे हैं हमारे हेडमास्टर

यह कल्पना से गढ़ी कोई गल्प-कथा तो है नहीं। यह है मेरी डायरी। सच का बयान करना यहां बेहद जरूरी है। यानी चाहे लिखते हुए मुझे कितना ही बुरा क्यों न लगे, लिखना तो पड़ेगा ही। आज सुबह मैंने ‘ए’ टीम की कप्तान मेरिआन को बुलवा भेजा। “तुम्हारी टीम की कुछ लड़कियों से मैंने कहा था कि वे अपना स्वेटर शुक्र तक तैयार कर लें। पर मुझे लगता है कि यह संभव नहीं होगा। डैला से कहना मैं उसे अगले बुध तक का समय देती हूं। और जेन तो और भी पीछे है, उसे शुक्र के बाद पूरा एक सप्ताह और मिले। यह उनको बता देना।”

यह जो कुछ भी हो, यही था वह जिसे मैंने उस दिन क्लास में धमकी भरे स्वर में “इस बारे में और भी बहुत कुछ सुनेंगे” कह परिभाषित किया था।

पर मैं अपने आप से बेहद प्रभावित हूं।

पर सच, ये सारे बच्चे अद्भुत हैं। नहीं तो क्या मैं उनको लेकर इतना सोचती विचारती? यह सब लिखने की जहमत उठाती ? काहू आज फिर बिलकुल सही समय पर आया और सामूहिक गीतों की तैयारी करवा गया। अच्छी तैयारी कर रहे हैं बच्चे। मैंने इससे पहले न तो इतने सुरीले कंठ सुने थे न ही इतना अच्छा संगीत शिक्षक देखा था। बड़े बच्चों का गायन और वादन भी हर दिन निखर रहा है किसी दिन डेला को ‘हैरीलाइम थीम’ बजाते सुनकर तो देखिए या पॉली को ‘द अंब्रेला मैन’ (छतरी वाला आदमी) या जार्ज को ‘सांग एट ट्वाइलाइट (संध्या गीत)। और बुनाई ? वह भी जोर शोर से चल रही है। और बी. के मेरे पत्र पर कोई प्रतिक्रिया न करने के बावजूद मुझे हर दिन बच्चे बड़ी संख्या में सर्दियों की पोशाक पहने दिखने लगे हैं।

छपते-छपते

कल जब हेवर्लॉक नार्थ सशरीर यहां उपस्थिति थे, ठीक उसी समय अचानक श्री लॉपडेल और न्यूजीलैंड के प्राथमिक शालाओं के उच्च निरीक्षक ट्रेमेइन साहब भी आ गए, मेरी माओरी प्रवेशिकाओं को देखने। पूरी दोपहर वे मेरे साथ थे। और इधर भड़कीले पीले स्वेटर और नई खेल पोशाकों में मेरी बच्चियां अपनी लड़ाई मेरे बिना ही लड़ती रहीं।

अगले सप्ताह ये दोनो सज्जन फर्नहिल में शिक्षा निदेशक को लेकर आने वाले हैं। मेरी नन्हीं माओरी किताबों को देखने। बृहस्पतिवार को। मैं तो बेहद घबरा रही हूँ। ट्रेमेइन साब ने सोम को वेलिंगडन ले जाने के लिए इन पुस्तकों का एक पूरा सेट भी चाहा। फिलहाल इस ही काम में जुटी हुई हूँ।

यानी यह होगा चौथा संस्करण। ट्रेमेइन साब ने अपने लिए भी एक सेट चाहा था। मैंने कहा “आपको कहने की जरूरत नहीं है ट्रेमेइन साब। मैं तो खुद काफी दिनों से यही योजना बनाए बैठी हूँ।”

“धन्यवाद, श्रीमती हेंडरसन।” कितने बड़े हैं ना वे, कितने उदार।

हमारा संवाद बेहद रोचक था पर फिलहाल उसे पूरी तरह यहाँ उतारने का समय नहीं है। सो यही लिख सकूंगी।

“हम अगले सप्ताह निदेशक महोदय को साथ लाएंगे।”

“ना, ना, उन्हें मत लाइएगा।”

“पर वे भी बेहद भले और संवेदनशील व्यक्ति हैं।”

“पर मुझे तो निदेशक साहब से डर लगता है।”

“आप मिल चुकी हैं क्या उनसे ?”

“नहीं।”

“फिर, डरने की क्या बात है ? वे तो उन लोगों में से हैं जो हर छोटे से छोटे प्रयास की महत्ता पहचानते हैं, उसकी कद्र करना जानते हैं।”

“पर मुझे महत्वपूर्ण बनना पसंद नहीं है।”

फिर मेरा ध्यान गया कि ट्रेमेइन साब बिलकुल चुप हो गए हैं। अब तक तो वे माओरी प्रवेशिकाओं की योजना पर उत्साह के साथ किसी तेज चलते जहाज की तरह बढ़ रहे थे और अब लग रहा था मानो किसी ने सभी पाल उतार दिए हों। मुझे उत्साह और प्रेरणा को खत्म करने से बड़ी घृणा है। और अपने छोटे छोटे प्रतिवादों से मैं यही करती चली जा रही थी। अचानक मन किया कि सामने खड़े इस लंबे-चौड़े व्यक्ति पर पूरी आस्था टिका दूँ। हाथ जोड़ मैंने तब उनसे कहा “ट्रेमेइन साब, आप जो कुछ भी कहेंगे मैं जरूर करूंगी।”

“धन्यवाद, श्रीमती हेंडरसन।”

उस ही दिन रात को, यानी शुक्रवार की ही रात को, के. के साथ बाजार करते समय मुझे सलेटी टोपी और कोट में एक लंबे से सज्जन दिखे। क्षण भर को सोचा कि वे ही हैं। पर ना, वे न थे।

ईश्वर का लाख लाख शुक्र है कि निदेशक महोदय नहीं आए। पर उस आपाध गपी में मैंने और कोलीन ने मिलकर अपनी कक्षा को बहुत ही सुंदर ढंग से सजा दिया।

मैंने उससे कहा भी “कमरे की सफाई और सजावट के लिए निदेशक साहब की जरूरत पड़ती है।”

बोर्ड के दफ्तर में जाकर मैं उस अद्भुत टाइपराइटर को ले आई। वही, जिससे शिशुओं वाले मोटे अक्षर छपते हैं। मुझे ट्रेमेइन साहब के लिए इहाका पहली पुस्तक जो तैयार करनी है। टाइपराइटर उन्हें देना ही पड़ा, नहीं तो निदेशक जी के लिए प्रति मिलती कैसे ? शनि, रवि और सोम को टाइप करते करते मैंने अपने पूरे जीवन के तीन सबसे अच्छे दिन और रातें बिताई।

हेलेन जिसे मैंने रुठने के कारण हेवलोक के साथ होने वाले खेल में से निकाल दिया था, तबसे ही स्कूल नहीं आ रही है। दूसरों ने आकर बताया कि “उसने तो कहा है कि वह अब कभी भी बास्केटबाल नहीं खेलेगी और स्कूल भी नहीं आएगी।” मैं बरबस हंस पड़ी।

कोलीन बड़े बच्चों को लेकर सैर को गई थी। रास्ते में हेलेन मिल गई “मैं तो अब कभी स्कूल नहीं आऊंगी। मेरी मां ने भी कह दिया है।”

कोलीन की उम्र इन स्कूल की बच्चियों से कुछ ज्यादा है, उसके पास इस तरह के वक्तव्यों का बेहतरीन जवाब था। उसने सिफत से पूछा “अरे, तुम्हें क्या मंगल को सेंट्रल के साथ नहीं खेलना ?”

“सेंट्रल के साथ क्या मंगल को स्पर्धा हो रही है ?”

“और क्या। श्रीमती हेंडरसन तो चाहती थीं कि तुम रक्षा पंक्ति में खेलो।”

“अरे खिलवाएंगी कैसे? पहले मुझे खेल मैदान पर तो लाकर दिखाएं।” सच, हेलेन के बिना कितना अमन-चैन है।

शुक्र को हुए खेल में मेरी दोनों ही टीमों हेवलॉक से जीत गई। बेहतरीन संयोजन था उस दिन उनका।

सारे निरीक्षक भी तो उस ही दिन आए थे। सभी ने हमारे समूह गीत भी सुने। बच्चों ने गाया भी बहुत ही अच्छा।

‘पा’ के व्यवहार में जो अस्तव्यस्तता है, आंतरिक अनुशासन तक का वहां अभाव है, उसे मैं बेहद पसंद करती हूं। यही तो वह अमूर्तता है जिसे प्रशंसा की नजरों से देखती हूं। पर गुप-चुप मन में रखती हूं यह बात। लोगों को उनकी यही अस्तव्यस्तता नापसंद है। तभी तो बारबार यह सोचने पर बाध्य होती हूं कि आगे क्या होगा। अनुपालना ? आज्ञा का पालन ? वह तो हमारे ‘पा’ के बच्चों ने सीखा ही नहीं। कभी कभी दिखती है व्यवहार में अनुपालना, पर सिर्फ स्कूल में ही। और वहां भी हमेशा नहीं। सच, आश्चर्यजनक बात है यह।

जानती हूं कि आज जो कुछ भी लिखा है वह सब बेतरतीब है। पर लिख डाला

यही बहुत है। अब तक मैं उस 'निदेशक सप्ताह' की थकान उतार नहीं पाई हूँ। मैंने 'पुसीविलो' गीत के लिए ब्लैक बोर्ड पर पुसीविलो फूलों की बेल बनाई थी। और इसके लिए घंटों खड़े रहना पड़ता है। हर कली में से निकलती एक सलेटी बिलौटी जिसकी आंखे हल्की हरे रंग की थीं। और नीचे को लुढ़क जाती हुई थी। और फिर लगातार तीन दिन और तीन रात तक इहाका पहली पुस्तक भी तो तैयार की थी।

आज हमारे ही बैठक घर में नए प्रोजेक्टर पर फिल्म दिखाई जा रही है। प्रोजेक्टर जलसे से इकट्ठी हुई राशि से खरीदा गया है। और सच यह मेरे जीवन में आए सबसे सुखदाई उपकरणों में है। बिल्कुल उस अद्भुत टाइपराइटर जैसा, जो मैं ट्रेमेइन साहब से मांग लाई थी। कितने सुंदर मोटे अक्षर छापे जा सकते हैं उससे जो शिशुओं के लिए पढ़ने में आसान हों। बैठक में कुछ बच्चों के माता-पिता भी हैं। वे लोग जो हमेशा हमारी सहायता करते रहे हैं। और समिति के अध्यक्ष पीटर भी। अपनी ही बैठक में जलते अलाव के पास बैठे बैठे ही तमाम दुनिया की फिल्में देख पाना इतना आनंद दे रहा है कि उसे अंदर ही अंदर रख पाना भ्रूणी कठिन लग रहा है। न पिछली सीटों में च्यूंगम चबाते झुंड हैं न ही बतियाते छोकरे, न प्रारंभिक दृश्यों में आइसक्रीम के कागज की फड़फड़ाहट सुननी पड़ रही है और न फिल्म खत्म होने पर ठंडक में वापस लौटना पड़ेगा। और मुझ जैसे तुनकमिजाज और छुईमुई इनसान के लिए यह मुक्ति सच में अतुलनीय आनंद का कारण बन उठती है। लगता है जलसे के लिए की गई सारी मेहनत मानो सफल हो गई।

और आज पूरे ढाई घंटे तक उसका पुरस्कार मिलता रहा।

आजकल अकसर ही शाम तक थक जाती हूँ। नए माओरी बच्चों की तो मानो बाढ़ ही आ गई है। वे ही उन्हें झेलने का अर्थ समझ सकते हैं जिन्होंने इन नन्हों को पढ़ाया हो। उनके एक एक जूते का वजन करीब टन भर का होता है, ध्यान देने की सीमा दस मिनट में पार हो जाती है, जंगली भैंसों की तरह डकार सकते हैं वे। उनको कुछ भी पढ़ा पाना विलक्षण चमत्कार कर पाने के ही समान होता है। कई हफ्ते तो इस बात को सिखाने में ही लग जाते हैं कि वे बात सुनें और तब उसे मानें। और पढ़ाई? वह तो इन प्रारंभिक हफ्तों में नहीं के बराबर ही हो पाती। और जब तक यूरोपीय अनुशासन का जामा वे नहीं ओढ़ लेते तब तक ये बच्चे हमें इस बात को इंगित करते रहते हैं कि गुजरे जमाने के माओरी योद्धा कैसे हुआ करते होंगे। यह तो सच है कि हरेक बच्चा ऐसा नहीं होता, पर अगर झेलने को वाईवीनी का भाई, माटाव्हेरो का भाई, लैला का भाई, पुइआ का बेटा, बेब का चचेरा भाई, छोटी बेटा, नन्हों मार्ली हों तो ? अरे हां, वह छुटका तामाती लैरी तो छूट ही चला था। सच यह छुटका लैरी!

बेब के चचेरी भाई को सब सेवेन नाम से पुकारते हैं। इन सभी छोटे छोटे जंतुओं

को कमरे से बाहर ही किया था कि पैची अचानक पलट कर आया।

“श्रीमती हेनसन सेवन ने मेरे पेट में घूसा मारा।” वाईवीनी का भाई असली वाईवीनी शैली में चीखा।

“पॉली” मैं पॉली से कहती हूँ जो मेरे पास बैठी अपने कोट को तैयार करने में लगी हुई थी, “जरा बाहर जाकर देखना तो हुआ क्या है?”

पैमी भागी हुई आई “श्रीमती हेनसन माटाव्हेरो का भाई है ना वह बेल के चचेरे भाई सेवेन से लड़ रहा है।”

“अच्छा है।”

इतने में देखती हूँ कि ब्रूस कुल्हाड़ी लेकर कमरे आता है “श्रीमती हेंडरसन यह कुल्हाड़ी यहां छुपा जाऊँ? सेवन बी को इससे काटे ही डालना चाहता था।”

दरवाजे के पीछे से ठीक से छुपा दो ब्रूस। कोलीन जरा बाहर जाकर देखना तो हमारे ये नए संबंधी कर क्या रहे हैं।

माटाव्हेरो और उसका भाई दोनों चकमक हरे रंग के कोट पहने प्रकट होते हैं। माटाव्हेरो को मालूम है कि स्कूल की पोशाक का रंग भूरा है, वह कुछ झिझक रहा है। पर इसके बावजूद उससे या उसके अध्यक्ष दादाजी से इस विषय पर बात छेड़ना कठिन हो रहा है।

“श्रीमती हेनसन, अपने स्कूल की यूनीफार्म का रंग बदल कर हरा कर दें तो कैसा रहे?”

हेलेन आखिरकार सोम को स्कूल वापस आई। और अचानक कोलीन के सामने पड़ी। “मिस बर्न्स मुझे क्या मंगल को सेंट्रल के साथ वाले मैच में खेलना है।”

कोलीन फिर मेरे लिए एक अंक कमा लेती है, पर सेंट्रल के साथ खेल ही टल जाता है। और अब शुक्र को पिछले साल के विजेता पाकी-पाकी के साथ खेलना पड़ेगा। काश आप देख पाते कि के. के मुंह से यह घोषणा सुनकर कैसी सिहरन हमारे सभी खिलाड़ियों में दौड़ी थी। यही होगा हमारा वाटरलू। डर तो असल में मैं भी रही हूँ सोचा था कि अच्छी तरह अभ्यास करने के कई मौके मिलेंगे पर ऐसा हुआ ही नहीं यह तो सच है कि हमारी बच्चियां अब तक हर खेल में जीती हैं। पर पाकी-पाकी की बात और है। वहां के तो सभी बच्चे लंबे-चौड़े हैं। उन्हें तो बेहतरीन तकनीक, बढ़िया समायोजना और जुगत से ही जीता जा सकता है। और गति से। ‘ए’ टीम खेतली अच्छा है पर उसका मध्य कमजोर है ... मैं सच इस बात से खुश हूँ कि हेलेन इस लड़ाई में साथ देने को लौट आई है। आज के. ने उससे बात भी की थी। कहा क्या यह तो पता नहीं पर वह तो उसके बाद से निरी छौने सी पालतू, आज्ञाकारी और शांत हो गई।

सच ऐसे बदली कि पचनानना ही मुश्किल हो गया।

कल शहर में आरोहा दिखी। कुछ ऐसे सजीधजी थी मानो पेरिस की किसी बगिया का फूल हो। सामान्य माओरियों से कहीं साफ है, उसका रंग। बेहद सुंदर लग रही थी। और यह भी साफ दिख रहा था कि वह मां बनने वाली है। कपड़े भी सजीले पहने थे। सोचिए जरा, यह थी हमारे स्कूल की एक तेरह वर्षीय बच्ची। अकेली नहीं थी आरोहा, उसके साथ एक ओर बच्चा गाड़ी टेलती एक भद्र महिला थीं, शायद उसकी मां, और दूसरी ओर एक छबीला नौजवान। जरूर भद्रमहिला का जमाई ही रहा होगा वह। हमारे यहां ऐसी घटनाएं अकसर दिखती हैं। इस पहेली को आप ही सुलझाते रहिए।

“मैं तुम्हें चुनौती देती हूं,” मैंने कोलीन से आज सुबह कहा “तुम आज हमारे नए संबंधियों को एक पाठ तो पढ़ा कर दिखाओ।”

“तो फिर बताइए, क्या पढ़ाऊं मैं ?” उसने अपने सोलह वर्षीय उत्साह और आत्मविश्वास के साथ कहा।

“‘घर’, ‘ट्रक’ और ‘डैडी’ शब्दों में आने वाले सभी अक्षर सिखाओ उन्हें। इन नए संबंधियों ने कल मेरे तो मानो प्राण ही पी डाले हैं। सो, कल रात मैंने यह सोचा कि मैं अपने इन सारे नए संबंधियों को कोलीन को सौंप दित्ती हूं। एक बात और, मैं इस गतिविधि में लगने वाला समय भी नोट करूंगी कोलीन।”

घंटी कुछ देर पहले ही बज चुकी थी। पर जाहिर था कि हमारे नए संबंधियों ने उसे अनसुना कर दिया था। कोलीन ने घड़ी देखी, “दो बजकर बीस मिनट हो चले हैं।”

“हां। और घंटी बजी थी दो दस पर, कहां है भई वे सब ? पर यह पहले ही बता दूं कि उनको घेर-घार कर लाना बेईमानी मानी जाएगी।”

पर कोलीन जरा भी घबराई नहीं, ‘रांगी’ उसने हमारी पिछले समूह की सुस्त बच्ची से कहा “बाहर जाना तो जरा। जाकर उन सभी नए छोटे बच्चों को बुलाना। कहना अब पाठ का समय हो गया है, अंदर चलना है। ठीक ?”

रांगी को तो ‘पाठ’ का मतलब भी शायद पता नहीं है, और उसकी अंग्रेजी बेहद सीमित है। यानी कही गई बात वह शायद ही समझी हो। और फिर मैं तो यह भी जानती हूं कि किसी छोटे बच्चे को बाहर भेजना बिलकुल निरर्थक है। पर समस्या कोलीन की है, मैं चुप ही रही। हां, थोड़ा सा हंसी जरूर, साथ ही जोड़ा “देख लो दो बीस हो चुके हैं।”

जाहिर था कोई आया नहीं। सो मैंने सिलाई करती जीन और पॉली को दिखा कर कोलीन से कहा “तुम चाहो तो इनमें से किसी को भेज सकती हो।”

“पॉली !” कोलीन ने गर्मजोशी के साथ कहा “उन छोटे बच्चों को बुला लाना जरा। कहना मुझे उनको पाठ पढ़ाना है।

कुछ समय बीतने पर वे अपनी ही सुस्त चाल से आए। और उनके पहले आई उनके जूतों और बातचीत की आवाजें। कोलीन उन्हें बिठाना ही चाहती थी कि मैंने टोका “जूते उतरवा दो इनके। और यह भी कह दो कि अपनी अपनी तख्तियां, चाँक और झाड़न साथ लेकर बैठें। ध्यान रहे कि उनकी मदद करना या ऐसे मत करो कहना भी नियम के विरुद्ध होगा।”

“सब अपने अपने जूते उतार दो”, वह जोर से बोली “अपनी तख्तियां उठाओ, चाक और झाड़न भी ले लो और तब बैठ जाओ।” और इतना सुनने के बाद मैं आराम से एक कोने में तमाशा देखने बैठ गई।

सच बड़ा ही मजा आया मुझे। कई बार मैं पाठ के दौरान जोर से हंसी। और हर बार इस चुनौती से कोलीन की आवाज कुछ और ऊंची हो जाती थी। सोलह साल की लड़की होने पर भी सच में उसने पाठ अच्छी तरह से करवाया। हर बच्चा काम में जुटा था। एक बार भी उसका धीरज नहीं टूटा। “पर सुनो भाई,” मैंने उसका ध्यान बंटया “माटाव्हेरो का भाई कल तो मेरे पास पाठ के समय आया था। आज वह यहां नहीं है।”

“पर माटाव्हेरो का भाई तो मेरी हर बात हमेशा मानता है। जो कुछ भी कहती हूं वही करता है।”

“तो ठीक है। पर इस बेब के चचेरे भाई सेवन को तो देखो। वह तो सो ही गया है। लगता है तुमने उसे इतना उबाया कि उसे नींद ही आ गई।”

“गलत, वह तो खेलने जाने के पहले से ही जम्हाई ले रहा था। मैंने थोड़े ही सुलाया है उसे।”

“हां, यह तो मैंने भी देखा था।”

“वाई, सेवेन को जगाना तो।”

“ना, ना, जगाना मत”, मैंने रोका “अब आगे से कभी सेवेन को सुलाने की शिकायत नहीं करूंगी। मेरी तो इच्छा करती है कि इनमें से दो-चार और सो जाएं।”

“उनके सारे अक्षर वे दोहरा चुके हैं श्रीमती हेंडरसन।”

मैंने घड़ी देखी “बीस मिनट। अब उनको जूते पहनने हैं, सारी चीजें जगह पर रखनी है और तब इस दरवाजे से बाहर जाना है।”

सच इतनी सिफत से काम करते किसी को देखा न था मैंने। “कोलीन मैं तुम्हें अपने सारे संबंधी सौंपती हूं। और मैं? मैं तो भद्र महिलाओं और भद्रपुरुषों को ही पढ़ाऊंगी।”

“ठीक है। पर मैं भी कल आपका समय नोट करूंगी।”

कल के बारे में मैं अभी से आशंकित हूं। अभी याद आया कि वाईवीनी का भाई तो आज नहीं था। “आज बच्चों ने मेहनत से काम किया, है ना,” कोलीन ने कहा।

“हां, थोड़ी लगाम लगाने की कोशिश करने को तो मैंने पहले से ही कही थी ना।”
पर कल, कल तो बाईवीनी का भाई भी होगा, माटाव्हेरो का भी और बेब का चचेरा भाई सेवन भी जगा हुआ होगा। खैर.... न।

“कोलीन मैं घर जा रही हूं। बेहद थक गई हूं। आज साढ़े चार बजे ‘पा’ की टीम हमारी ‘ए’ टुकड़ी से खेलने आएगी। तुम यहां का काम निपटा लेना।”

पॉली तब अपना कोट लिए बैठी थी, लोटस पॉकेट काढ़ रही थी, फ्रांसिस नेट्टा को पियानो का अभ्यास करवा रही थी ररेमोना और एडना चित्र बना रहे थे, हमारी शिशुकक्षा के बड़े बच्चे अपनी कहानी लिखने में व्यस्त थे। और हां, मार्क को तो गिना ही नहीं, वह भी तो था। अपनी ताई को खत लिख रहा था, और पैची...।

पाकी-पाकी के साथ खेलने के पहले अपनी टीमों को अंतिम बार अभ्यास करवाने के लिए मैंने ‘पा’ के युवा मंडल के बच्चों के साथ एक मैच तय किया। एक ही दिन की सूचना उनके लिए काफी थी। आशा करती हूं कि जिन लड़कों को वे चुनकर भेजें उनमें ‘हॉक बे’ के लिए खेलने वाले दो खिलाड़ी-काहू और टीटी न हों।

‘पा’ का युवा मंडल मुझे सच में बड़ा ही अच्छा लगता है। पर समिति अध्यक्ष पीटर का कहना है कि ‘पा’ की सोलह साल की अविवाहित माताओं का स्रोत भी युवामंडल ही है।

“बताइए तो, कि आखिर इस युवा मंडल के पीछे उद्देश्य क्या है ?” मैं उनसे पूछती हूं।

अपनी गंभीर आवाज में उनका उत्तर है “जवान लड़के-लड़कियों को मिलने-जुलने के अवसर देने के लिए है युवा मंडल।”

अचानक मुझे गेल टमाटी का सोलह वर्ष की उम्र में शादी के अवसर पर फूट-फूट कर रोना याद आने लगता है। कब्रिस्तान में दफन व्हारेपारिता के जुड़वां बच्चे याद आते हैं। और साथ ही कल शाम शहर में दिखी आरोहा भी जो बिलकुल कुंवारी मारिआ ही लग रही थी।

“मिलने जुलने के लिए।” मैं उनके पीछे दोहराती हूं।

पिछले कुछ समय से मैं यह माने बैठी थी कि मैं यहां प्रायः सन्यास ही लिए बैठी हूं। पर अभी ‘पा’ युवा मंडल के साथ हुए खेल में रेफरी बनने के बाद, फिर से सोचने पर बाध्य हुई हूं। अगर यह जीना नहीं है जो फिर जीवन किसे कहूं ? यह समझ नहीं आता। इस स्कूल के माहौल में अगर जिन्दगी का सामना ही नहीं होता, अगर यही सन्यास है ... तो जीवन आखिर है क्या ?

अगर जिंदगी जीने का अर्थ अपने आप को पूरी तरह भूल जाना है तो मैंने अभी अभी ही आधा घंटे तक उसे जिया है।

शुरू में तो मुझे सीटी पाने के लिए ही लड़ना पड़ा। कैरोलीन पास खड़ी थी और उसने तय कर रखा था कि वह ही रेफरी बनेगी। पर मैच तो मैंने ही शुरुवार के पहले अभ्यास करवाने के लिए रखवाया था। मैंने उसे खेल शुरू तो करवाने दिया, पर जल्दी ही खिलाड़ियों की सी ही ऊंची आवाज में उत्साह के साथ उससे सीटी मांग ली। वह तुरंत ही रूठ गई। बड़बड़ाई भी। पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। जिन दो लड़कों को भेजने पर मजबूर हो युवा मंडल ने हमसे क्षमा चाही थी, वे तो दोनों पूरे आदमी ही निकले। और तो और खिलाड़ियों में काहू भी था जो 'हॉक्स बे' का प्रतिनिधित्व करता है। जैसा मालूम था अंतिम अंक 9-2 के रहे। उनकी रफ्तार और तेजी बिजली की सी थी। सच गेंद का ऐसा फेंकना और झेलना मैंने पहले देखा तक न था।

कैरोलीन मध्यांतर में औपचारिक रूप से शिकायत करने आई। कहने लगी कि खेल-नियमों का पालन नहीं हो रहा है। मैं तक ऐसे अमरीकी जुमले इस्तेमाल नहीं करती। खैर उससे तो यही कहा कि मैं देख लूंगी। और तब खेल के तीसरे भाग में कोई गड़बड़ नहीं कर पाया।

काश, आप उन लड़कों को, मेरा मतलब है उन पुरुषों को हमारी लड़कियों के ऊपर छलांगे लगाते देख पाते।

मैंने बाद में उनकी बहुत-बहुत तारीफ की। कैसी माओरी नौजवानों की प्यारी टोली थी यह। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि शराब उन पर हावी न हो। प्रेम के चक्कर में फंसे तो कोई बात नहीं, पर शराब से बचे रहें, बस।

कैसे प्यारे, बलिष्ठ, लंबे-चौड़े, तेज, शिष्ट और आत्मसम्मानी नौजवान हैं ये। और कितने सुंदर भी।

मैं स्कूल में जा शिक्षकशा को झेलने की तैयारी में चाय का आखिरी प्याला पी रही थी कि पाउलेट, जेन की चिट्ठी लेकर आई।

“प्रिय श्रीमती हेंडरसन, मैं आज पाकी-पाकी के खेल में नहीं आ सकूंगी। मुझे दोहरा निमोनिया हो गया है।”

दरवाजे पर दस्तक सुनने के पहले तो मैं निजी उलझनों में ही फंसी थी पर अब मेरा सरोकार पूरी तरह जेन की बीमारी से था। पर जिस डबल निमोनिया से मैं परिचित हूँ, उसकी गिरफ्त में आने के बाद तो कोई भी इतनी सधी चिट्ठी लिख नहीं सकता। संभव है यह किसी दूसरी ही तरह का निमोनिया है।

पाकी-पाकी के साथ जिस दिन मैच तय था वह दिन बरसाती और बूँदाबांदी वाला निकला। बारह बजे तक बादल साफ होने के आसार न देख के, ने फोन कर मैच टाल दिया। पर एक बजे जोरदार बरसात में एक बड़ी सी बस को स्कूल में घुसते देख सब स्तब्ध रह गए।

अध्यापक

हमने

पाकी-पाकी

को हराया !

पाकी-पाकी की इस बास्केटबाल टीम को इतिहास में किसी दूसरी टीम ने इससे पहले कभी हराया नहीं था। वे तो हमेशा-हमेशा से पूरे हेस्टिंग्स इलाके के चैंपियन रहे थे।

और अब चैंपियन हैं, मेरी पीली जर्सी वाली लड़कियां।

कभी-कभी सपने भी तो सच्चाई में बदल जाते हैं।

पर मेहनत के बिना नहीं।

पाकी-पाकी टीम के चले जाने के बाद पीली जर्सी पहने लड़कियों ने मुझे घेर लिया। नौ भूरे हाथों ने मुझसे हाथ मिलाया, नौ भूरे चेहरों को मैंने उल्लास की नई आभा से दमकते देखा, और नौ भूरे कंठों ने मुझे, अपनी प्रशिक्षिका का-बधाई दीं। “हमें पता चल गया है श्रीमती हेंडरसन कि आप सच में अच्छी प्रशिक्षिका हैं। हम हमेशा आपकी बात मानेंगे।”

मेरी तो खुशी का ठिकाना ही न था।

उस शाम बाजार करते समय मुझे हर ओर बस पीला ही रंग दिख रहा था। और मेरी निहायत निजी पीड़ाएं हर बार उसे देख परास्त हो रहीं थीं।

सच मुझे पीला रंग बेहद पसंद है।

पठन अब फिर मुझे उलझा रहा है। और जब तक मैं इसको लेकर पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो जाती मैंने लेखन में अपनी रुचि को ताक पर धर दिया है। मैं अपनी कक्षा के शिशुओं के साथ अब भी उन्हीं शब्दों के साथ प्रयोग कर रही हूँ जो किसी बच्चे के लिए निहायत गहरे अर्थ रखते हैं। और अब आश्चर्यजनक स्पष्टता के साथ यह देख पा रही हूँ कि इन शब्दों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है : भय और यौन।

इसका अंदेशा तो मुझे तब से ही होने लगा था जब मैंने पहली बार ‘चुम्मी’ (चुंबन, किस) शब्द का इस्तेमाल किया था। मैंने पाया कि सभी माओरी बच्चे उत्तेजित हो इसकी चर्चा करते रहे थे। वे किताबों को उठाकर बारबार इसी शब्द को ढूँढते और देखते रहे थे। और तब अगली सुबह आकर मुझे बारबार यह बताते रहे थे कि उन्हें शब्द के हिज्जे अभी भी याद हैं।

सूत्र मैंने तभी पकड़ लिया था, और तब से ही मैंने सबसे बलवती और स्वाभाविक

मनोभाव-भय के भी शब्द ढूँढने शुरू कर दिए थे। पर उस समय तक मैं केवल एक ही शब्द 'डर गया' पा सकी थी। प्रारंभिक शब्द के रूप में यह था तो बड़ा, पर फिर भी उसे कई बार काम में ले चुकी थी। सो, उसका ही इस्तेमाल मैंने फिर किया। और तब पाया कि वह 'चुम्मी' से भी कहीं सफल सिद्ध हुआ। सभी नए बच्चों ने उसे तुरंत पकड़ा था। एक बात जिस पर अब तक ध्यान नहीं गया था, वह भी तब मेरी नजर में आई। मैंने देखा कि एक नया, महज पांच साल का, पर तेज, माओरी बच्चा बार-बार शब्द को दोहरा रहा था।

'रोया' इसी श्रेणी का तीसरा शब्द था।

मुझे लगता है कि 'डर गया' और 'रोया' में प्रकृति के दो पक्ष सिमट आते हैं। कारण और परिणाम। इसलिए सोचती हूँ कि जब "चुम्मी" इस तरह जेहन में बस गया है तो जरूर कोई इससे भी शक्तिशाली शब्द होगा जो इसके कारण का प्रतिनिधित्व करता होगा। संभव है वह शब्द 'प्यार' (लव) ही हो।

पर 'प्यार' शब्द का इस्तेमाल करते मैंने उन्हें कभी सुना ही नहीं है। और यही कारण है कि उसको काम में भी नहीं लिया है। पर सोचती हूँ कि इस सोम को एक बार काम में लेकर देखूंगी।

फरवरी में आए सुस्त बच्चे भी अब आखिरकार पढ़ने लगे हैं। वे नीचे दिए गए शब्दों के कार्ड पढ़ने लगे हैं।

ये सारे शब्द अभी भी दौड़ में हैं। उनके आगे लिखी संख्याएँ नौ के समूह में से उन बच्चों की संख्या है जो सूची बनाते समय शब्द को पढ़ कर पहचान सके थे।

पहली परीक्षा

फुटबाल	3
मारना	1
लड़ना	1
चूमना	7
रोया	5
हाका	6

'डर गया' से परिचय के बाद

दूसरी परीक्षा

चूमना	7
हाका	4
रोया	5
डर गया	9

प्रयोगात्मक नतीजे

1. क्रियाओं को बताते समय उनका भूतकाल में रखना ठीक होता है ताकि बच्चे अंग्रेजी में सरल वाक्य बिना सहायक शब्दों के इस्तेमाल से ही बना सकें। उदाहरण के तौर पर 'रोना' (क्रिया) को वर्तमान काल में रखने पर बच्चे को लिखना होगा 'रांगी विल क्राय'। और इस सहायक शब्द 'विल' के प्रयोग को समझना और सीखना बड़ा कठिन है। उसे बाद के चरणों के लिए छोड़ देना ही अच्छा रहता है। इसलिए 'रांगी क्राइड' (रांगी रोया)। और मम्मी विल किस मी (मां मुझे चूमेगी) के बदले 'मम्मी किस्ट मी' (मां ने मुझे चूमा) ही ठीक है।
2. इन शक्तिशाली शब्दों को चित्रों के साथ प्रस्तुत करना धृष्टता ही होगी। चित्र तो बच्चे के दिमाग में पहले से ही मौजूद हैं, सामान्य चित्र नहीं, बल्कि हर बच्चे के लिए निहायत निजी और भावनाओं से जुड़े हुए चित्र होते हैं ये। मैं तो इन शब्दों को सहायक चित्रों के बिना ही सिखाती हूँ।
3. आओ (कम) और (एंड) तथा देखो (लुक) जैसे शब्द जिनसे कोई भी सामान्य अंग्रेजी किताब शुरू की जाती है, शायद भाषा के सबसे ही कमजोर शब्द हैं। कम से कम शिशुओं की प्रारंभिक पाठमाला के लिए। यह बात 'जैनेट एंड जॉन' को फिर से याद करते हुए दोहरानी पड़ रही है।
4. मैंने एक बड़ी भूल तब कर डाली थी जब मैंने इन तथाकथित 'वैज्ञानिक किताबों' जैसे जैनेट एंड जॉन-का अंधानुकरण करते हुए अपनी पहली इहाका पाठमाला बनाई थी। उसमें मैंने आओ, देखो, और, जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया था। मैंने तो तब यह सोचा था ना कि इन 'वैज्ञानिक' किताबों के पीछे पर्याप्त सोच विचार होगा।
5. माओरी बच्चों को हमेशा से ही दूसरों की भूलों की कीमत अदा करनी पड़ती रही है। उनके जो दो-एक साल शिशुकक्षा में जाया होते हैं, उनकी प्रतिध्वनियां हम छठी कक्षा तक या द्वितीय फार्म तक सुन पाते हैं। और तब तक वे चौदह या पंद्रह वर्ष के हो चलते हैं और माध्यमिक कक्षाओं की कठिनाइयों के भंवर में जा उलझते हैं।
मैं नीचे एक पठन-कार्ड दे रही हूँ जिससे मेरे पास आने वाले एक पिछड़े माओरी बच्चे ने अंततः पढ़ना सीखा। यकीन मानिए वह इसे देखते ही पढ़ लिया और उसके चेहरे पर आई चमक ने मुझे यह भी बता दिया कि जो उसने पढ़ा उसे वह समझ भी गया है।

पिता (डैडी)

मां (मम्मी)

इहाका (माओरी नाम)
मारा (हिट)
रोया (क्राइड)
चुम्मी (किस)
विग ने इहाका को मारा (डैडी हिट इहाका)
इहाका रोया (इहाका क्राइड)
विग ने इहाका को चूमा (मम्मी किस्ट इहाका)
इहाका रोया (इहाका क्राइड)
मां इहाका को चूमो (किस इहाका मम्मी)

बच्चे से सवाल करते ही मुझे पता चल गया वह सब समझ गया है। और यही बच्चा पिछले छह सप्ताहों से 'आओ', 'और' तथा 'देखो' पर अटका हुआ था।

जिन शब्दों को हम सबसे पहले बच्चे को देते हैं उनमें मां (मम्मी) हो सकता है और मैं (आई) या मुझे (मी) भी।
इन्हीं चुने शब्दों के कार्ड बनते हैं।
क्रियाएं अपने आप में पूरे के पूरे वाक्य ही होते हैं।
साथ में सहायक चित्रों की आवश्यकता नहीं है।

बच्चों के आलेख

१. रिती

हाइन ने मुझे कहा
इधर देखो
उसने एक केक देखा । तब रोजी
ने हमें मारा।
मेरी ने कहा खाना
पक गया है
तब उसने कहा
जल्दी करो नहीं तो
तुम्हें देर हो जाएगी।

२. माकरे

मां और पापा
मुझे वैलिंगटन ले गए।
मैंने सड़क पर

दो सिपाही देखे। सड़क पर
एक दुर्घटना हुई थी।

३. माटाव्हेरो

कल मैं देर से
घर गया।
मेरे बड़े भाई ने
मेरी टुकाई की।
तब मैं रोया
तब मुझे सोने जाना है।
मैं लिखने से थक गया हूँ।
बस इतना ही।

४. इरीनी

मेरे बाबा को
नशा चढ़ा।
उसने खुद सारी बीयर
पी ली और
हमारे यहां दावत थी।

ये ही मेरी परीक्षा के बच्चे हैं। मतलब यह कि मैं आशा करती हूँ कि ये बच्चे मेरे इस विश्वास को प्रमाणित कर पाएँगे कि माओरी बच्चे भी तीन नहीं बल्कि दो ही वर्षों में शिशुकक्षा का पाठ्यक्रम पूरा कर सकते हैं। आज दोपहर के. हमारे साथ थे उन्हें इसकी संभावना कम लगी। बावजूद इसके कि रेरेमोना बिलकुल तैयार है। और वाईवीनी प्रायः तैयार है। और फिर अभी पूरे छह महीने और बचते हैं। असल में अब वे वाक्य सीख रहे हैं। और उन्हें यह भ्रांति है कि पंक्ति शेष हो तो पूर्ण विराम लगाना जरूरी है चाहे वाक्य शेष हुआ हो या नहीं।

रोंगो, जिसके पैरों में थिरकन बसी है, सच बेहद सुंदर नाचती है, दीवार बोर्ड पर ऐसे मोटे अक्षर बना रही है ताकि हरेक उसे पढ़ सके।

मां रो रही है
क्योंकि बाबा ने
उसे मुंह पर मारा। मां आज
धाय मां के पास जा रही है।
बाबा नाराज हैं।

रोंगों के सिर का हरेक रेशमी बाल करीने से अपनी जगह है। मैं उसे कागज थमा देना उचित समझती हूँ। कागज पर वह आगे लिखती है :

क्योंकि बाबा
बेहद नाराज थे
और मैं उनसे नाराज
थी क्योंकि बाबा नशे में थे।
तब उसने
रोंगों को मारा।

मैं तब तक यही माने बैठी थी कि शायद रोंगों पूरे माओरी प्रदेश की सबसे चहेती लड़की है। जब तक उसने कॉपी, पेंसिल और रबर लेकर यह न लिखा:

जब मैं उठी
तब मैं स्कूल
के लिए तैयार हुई
और मैंने जल्दी की
क्योंकि बाबा
नाराज थे
उनका चेहरा
गुस्सैल लगता था।

‘मुझे चिढ़ है (आई हेट)’ गोरा डेनिस खुद के लिए अपनी कॉपी में लिखता है :

ऊपर आकाश में जाने से।
मर जाने के बाद

मुझे आकाश से चिढ़ है
क्योंकि वह इतना ऊंचा है।

कल रात मुझे झाड़ पड़ी
क्योंकि मेरी चप्पलें गीलीं थीं।

‘कल रात’ (लास्ट नाइट) मेरा विशुद्ध माओरी टेम बेहद स्थिर और सुंदर अक्षरों में लिखता है :

मैं बिस्तर से गिर गया, सो
बाबा ने मां को सरकने को कहा

‘मेरी मां’ (माई मम्मी) ईरानी सुंग लिखती है (उसकी दृष्टि बराबर व्यस्क संबंधों पर रहती है) :

मेरी मां मामा के साथ मातम
पर जा रही है। वे आठ बजे की बस
से गए। मातम उटापेपी में है।
मुझे पता नहीं कि कौन मरा है। वह कल
आएगी। जब वह लौटेगी तब वह शहर
जाकर मॉस लाएगी।

मां ने बाबा से कहा
मुझे पैसे दो नहीं तो मैं पिटाई करूंगी।
बाबा ने मां को गाली बकी।
बाबा ने मां को पैसे दिए। हमारे
यहां दावत हुई। बाबा ने
सारी दारू पी ली। उन्हें नशा चढ गया।

‘मां’ (मम्मी) ईरीनी सुंग उस कॉपी पर लिखती है जो मैंने उसे खरीद दी है क्योंकि उसके घर की तो पूरी ही कमाई शराब में फूंक जाती है :

ने मेरी पिटाई की
और अखबार लाने को कहा।
मैं अखबार लाई और
मां को दिया। तब मैंने
बाबा को कहा अखबार
मां के पास है सो उन्होंने मुझे
अखबार लाने को कहा।

“श्रीमती हेंडरसन सेवेन के पास छुरा है। वह मेरे पेट में उसे भोंक रहा है।”
“कोलीन, जरा जाकर सेवेन को निरस्त्र तो कर आना।”

“वाईवीन। मैंने तो सोचा था कि तुम मुझे चिट्ठी लिखने वाली हो।”
 “आपको तो लिख ही नहीं सकती। आपका नाम कितना बड़ा है।”
 “श्रीमती हेंडरसन ‘बोको’ के हिज्जे क्या होंगे ?”
 “क्या लिखना चाह रहे हो यह तो बताओ ?”
 “उसने मुझे बोको पर मारा।”
 “कोलीन बोको का क्या मतलब होता है ?”
 “ईरीनी तुम पेंसिल के लिए चवन्नी लाई हो ?”
 “मेरी मां के पास चवन्नी है ही नहीं।”
 “कोलीन यह वही घर है जहां पिछले हफ्ते पूरे चौरासी पाउंड जुए और दारू में फुंके हैं। यह बच्चों की परवरिश वाली राशि और उनके बोनस की राशि थी। बच्चों तक की पाई-पाई उड़ा डाली।”
 “श्रीमती हेनसन मैं, लिखने से परेशान हो चुका।”
 “तो जाओ यही लिखो कि मैं लिखने से परेशान हो चुका हूं।”
 “श्रीमती हेंडरसन, जब मैं आई थी तब आपने कहा था कि मैं पियानो बजा सकती हूं।”
 “हां, ठीक कहती हो तुम।”
 “मैं अभी बजाऊं ?”
 “क्या तुमने अपनी लिखाई पूरी कर ली है।”
 “नहीं।”
 “तो पहले काम पूरा करो। तब बजाना पियानो।”
 “कोलीन, ये बच्चे आकर न जाने क्या कहते हैं और हमेशा यही कहते हैं कि मैंने उनसे कहा था।”
 “उनमें से काफी बातें आप कहती भी तो हैं।”
 “सारी नहीं ?”
 “ना, सारी की सारी नहीं।”
 “क्या तुमने मुझे कभी ऐसा कुछ भी कहते सुना है जिसके लिए मैं बाद में इनकार करूं ?”
 “ओ, हां।”
 “अभ्यास की मेरी बारी है श्रीमती हेंडरसन।”
 “तो जाओ बजाओ। पहले सभी स्वरों और गति का अभ्यास करो।”

“पर आपने तो कहा था कि काम खत्म होने पर मैं पियानो बजा सकती हूँ।”
“ऐसा कुछ भी नहीं कहा था मैंने।”

“हां, कहा था आपने।”
“कोलीन, यह कहा था क्या मैंने ?”
“आपको यह कहते सुना तो था मैंने भी।”

“सुनो, तुम सब छोटे बच्चे इधर मेरे पास आओ।”
“तुम लोगों को ब्लैक बोर्ड पर बना यह चित्र अभी भी चाहिए या मिटा दूँ मैं ?”
“श्रीमती हेनसन ब्लैक बोर्ड पर जो मैंने बनाया है वह तो देखिए।”
“मेरिऑन दोनों हाथों की उंगलियों से स्वर बजाओ।”
“आपने कहा था आज दोपहर को मैं रंग तैयार कर सकती हूँ।”
“तो ठीक है। जाओ, जाकर अपने रंग तैयार करो।”
“पर कागज तो नहीं है मेरे पास।”
“पर मैंने तो कहा था ना कि तुम कागज लेकर आना।”
“कोई कोई ने चोर लिया।”
“मेरिऑन उंगलियां गलत चला रही हो। एक, दो, तीन और तब अंगूठा।”
“बैटी रो रही है।”
“क्यों रो रही है भई बैटी ? जैन देखो सीवन मशीन से लगानी है और बिल्कुल किनारे किनारे सीना है।”
“सेवेन ने उसकी गर्दन में रेत डाल दी है।”
“कोलीन, सेवेन को अंदर बुलाना तो जरा।”
“यह शब्द क्या है ?”
“बिट्वीन” (दोनों के बीच)
“अट्वीन”
“ना, बिट्वीन”
“अरे छोटे बच्चों तुम लोगों से इधर आने को कहा था ना। वीकी, ब्लॉसम, इन छुटकों को मेरे पास लेकर तो आना।”

“मेरी पेंसिल ही नहीं मिल रही है ...।”

“कोलीन, तुमने इन लोगों को कभी ऐसी बातें गढ़ते सुना है जो मैंने इनसे कभी कही ही न हों।”

“हां, कभी-कभी।”

“कोई कोई ने मेरी पेंसिल ले ली है।”

“देखो, यह मत कहो कि ‘किसी ने मेरी पेंसिल ले ली है’ कहो, मेरी पेंसिल खो गई है।”

“अगले खेलों के लिए ‘बी’ टीम की कप्तान कौन हैं श्रीमती हेंडरसन ?”

“मेरी पेंसिल खो गई है।”

“मैंने तो आज सुबह ही तुम्हें दी थी ना।”

“खेलों के लिए ‘बी’ टीम का कप्तान कौन है—श्रीमती हेंडरसन ?”

“अभी चुना नहीं है किसी को मैंने।”

“पर, आपने तो हिरानी को चुना था।”

“बिलकुल नहीं चुना था उसे मैंने।”

“खैर, कप्तान कौन है ?”

“बाद में चुनूंगी। कोलीन जरा जीन की सीवन का खयाल रखना।”

“मेरी पेंसिल खो गई है।”

“बहुत अच्छे, मेरिऑन। वह मंद्र बिलकुल सही लगाया तुमने।”

“क्या हम अपने आप किसी को कप्तान चुन लें ?”

“नहीं कप्तान मैं ही चुनूंगी। और उसे चुनूंगी जो नियमित रूप से अभ्यास के लिए आया हो, और जो हर बात पर मुंह नहीं सुजाता हो।”

“आपने हिरानी को चुना था।”

“मैंने इन खेलों के लिए किसी को नहीं चुना था। चुना था क्या कोलीनी”

“आपने हिरानी को चुना था।”

“श्रीमती हेंडरसन सेवेन यह रहा।”

“ना, यह सच नहीं हो सकता।”

“मैंने तो आपको हिरानी को चुनते सुना था।”

“सेवेन को यहां क्यों बुलाया था ?”

“मेरे पास पेंसिल ही नहीं है।”

“भई, कौन ईरीनी को अपनी पेंसिल दे सकता है ?”

“लो ईरीनी।”

“खेलों में ‘ए’ टीम का कप्तान कौन होगा ?”

“क्या तुम लोग तब तक इंतजार भी नहीं कर सकते, जब तक मैं किसी को चुन न लूं ?”

“नाम हेंडरसन साब ने अभी मंगवाया है, उन्हें भर कर भेजना है।”

“कोलीन, यही है वह परिवार जहां दारू पर एक ही सप्ताह में चौरासी पाउंड उड़ सकते हैं पर चवन्नी की पेंसिल नहीं खरीदी जा सकती है।”

“मैंने अपना काम कर लिया है, अब मैं पियानो बजाऊं ?”

“कप्तान कौन है श्रीमती हेंडरसन।”

“सेवेन आ गया है श्रीमती हेंडरसन।”

“बैटी रो रही है श्रीमती हेंडरसन।”

“मैंने रंग मिला लिया है पर कागज मेरे पास नहीं है।”

“जब तुम सब छोटे बच्चे अपनी तख्तियां चॉक, और झाड़न लेकर मेरे पास आओ। यहां चटाई पर बैठो...।”

“आप ब्लैकबोर्ड पर मेरा काम नहीं देखेंगी ?”

“इस बिलौटी फूल वाले चित्र का क्या करूं ? श्रीमती हेंडरसन ?”

“श्रीमती हेंडरसन ?”

“श्रीमती हेंडरसन ?”

श्रीमती लोपडैल और ट्रेमेइन साब जब पिछली बार यहां आए थे तो मैंने उनसे कहा था कि “हमारी शिशुकक्षा में कोलीन सहजबुद्धि जोड़ती है जिसकी अब तक सच में कमी थी। उसके आने से हम संतुलन पा सके हैं।”

“और आपका योगदान क्या रहता है ?” उनमें से एक ने पूछा था। हे ईश्वर। अब मेरी लाज एक सोलह वर्ष की छोरी के हाथों थी। मैंने पलटकर कोलीन से ही पूछा “कोलीन मैं अपनी कक्षा को क्या देती हूं ?”

कोलीन मुझसे भी लंबी है। उसने क्षण भर को सोचा और तब अपनी ऊंचाई से बोली।

“ओह!” उसने कैशोर्य के आत्मविश्वास भरी उमंग के साथ कहा “ये, ये धीरज देती हैं।”

समिति के अध्यक्ष पीटर माटाव्हेरो के दादा हैं। वे बुद्धिजीवी हैं। वे कल शाम हमारे घर चाय पर आए। काफी थके हुए लगे। उनका वजन सौ किलो से ऊपर है, पैंसठ साल की उम्र है और बिलकुल गंजे हैं वे। अच्छे माओरियों में भी वे सबसे अच्छे हैं। सिद्धांतों और गिरजे के इंसान।

कुछ चिंतित हो मैंने उनसे पूछा “कैसे हैं आप ?”

“मोड़ के लिए पूरी तरह तैयारी है।” मोड़ पर स्थानीय कब्रिस्तान है।

“ऐसा क्यों कह रहे हैं आप।”

“कोई दम ही नहीं रहा शरीर में।”

“पिछली बार डाक्टर ने क्या कहा था ?”

“मैं तो तीन सप्ताह से मिलने ही नहीं गया।”

“बहुत बेचैनी हो रही है क्या ?”

“अरे यह जुकाम है ना, ठीक ही नहीं होता।”

“अश्चर्य है,” मैंने के. से कहा “खाने-पीने की इतनी परहेज के बावजूद जुकाम से जूझ नहीं पा रहा है शरीर।”

“आलू क्यों नहीं ले रहे हैं, लीजिए न पीटर।”

“असल में मुझे लगता है कि आपका मन उचाट हो रहा है।” मैंने कहा।

“आपको हमारे पास आते रहना चाहिए।”

“आया था न, पिछले रवि को। आप लोग ही घर पर नहीं मिले।”

“पर हमारे लिए तो हर दिन ही रविवार होता है न।”

“सच, मोड़ पर ही पहुंचने की तैयारी है। पर शरीर अब इतना बेदम है कि अपनी कब्र भी खुद नहीं खोद सकता। खैर लकड़ी की ढेरी और थोड़े घासलेट से भी काम बन जाएगा। मैं उसके ऊपर बैठ जाऊंगा।”

मैंने उन्हें बढिया चाय का प्याला पिलाया।

फिलहाल मन में सिर्फ मार्क कटर ही घूम रहा है। आज वह स्कूल आया ही नहीं। उसकी मां हमें सख्त नापसंद करती है। उन्होंने मार्क को नई किताब तक खरीद देने से इनकार कर दिया। कहा, इतनी रफ्तार से आगे बढ़ने का कोई फायदा नहीं है।

उन्हें मेरे पढ़ाने की विधि में तमाम कमियां नजर आती हैं। उनकी आलोचना से मैं इतना उकता गई कि जब मार्क को लिखना सिखाने की बारी आई तो मैंने उसे कागज और पेंसिल नहीं दी। कहा कि उसकी मां फिर आपत्ति करेगी, कहेगी—वह बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। “तुम तख्ती पर चॉक से लिखो मार्क।” मैंने उससे कहा था, जबकि पास बैठे टेम के पास कागज और पेंसिल थी।

“मैं मां से पूछ लूंगा,” उसने चिरौरी की “शायद वह खरीद दे।”

“शायद न भी खरीदे।”

उसे बहुत ही बुरा लगा। इस पर मैंने उसे समझाने की कोशिश की। तब वह फिर से खुश हो गया था। पर आज वह नहीं आया। मैं बहुत दुखी और शर्मिदा हूँ। कितनी भयानक शिक्षिका हूँ मैं। उस दिन दोपहर के खाने के बाद सोचा था कि उससे बात करूंगी। कहूंगी मार्क, तुम्हारी मां ठीक कहती है। अभी नई किताब शायद नहीं खरीदनी चाहिए। ताकि उसे अपनी मां और शिक्षिका के बीच बंटने की पीड़ा से मैं उसे बचा सकूँ। चाहा तो था पर भूल गई। बेचारा प्यारा सा बच्चा मार्क।

“हेलेन, अगले हफ्ते जब हम बास्केटबाल प्रतियोगिताओं के लिए जाएं तब मैं तुम्हें भूरी स्कर्ट में देखना चाहती हूँ। या तो एक खरीदो, या सिओ, या फिर उधार लो किसी से। मैं हरेक को अगले सप्ताह भूरी पोशाक में ही देखना चाहती हूँ।”

पिछले दो सालों में हेलेन के लिए कोई कपड़ा नहीं खरीदा गया है। यूनिफार्म तक को नजरअंदाज किया है उसके परिवार ने।

“कोलीन, हेंडरसन साब से कह देना कि अब मैं तुम्हें एक से दो के बीच शिक्षकता से तब तक नहीं जाने दे सकती जब तक हम अपने इन नए जंगली संबंधियों को कुछ सभ्य नहीं बना लेते।”

“सुनो,” मैंने हेडमास्टर साब से दोपहर को खाना खाते समय कहा “क्या तुम उस कुल्हाड़ी को कहीं तालाबंदी में नहीं रखवा सकते ?”

“कुल्हाड़ी!”

“सेवेन हमेशा सबको उससे काटे डालना चाहता है।”

“श्रीमती हेंडरसन, सेवेन कुल्हाड़ी से हम सबका कत्ल करे डाल रहा है।”

“कोलीन! कुल्हाड़ी! सेवेन!”

पिछले सप्ताह बसंत शुरू हो गया था। मन में आज अचानक शूर्बर्ट की रचना

“अग्नि गीत” (लार्क थीम) बजाने की इच्छा हुई। बच्चे उस समय बातचीत करते हुए अपनी-अपनी कहानियां लिख रहे थे। एकाएक बसंती हवा के स्पर्श ने कहीं कुछ छुआ, खिड़कियों से छूटकर कर फैलती किरणों ने भी कुछ और उकसाया। मैं पियानो की ओर भागी। बैठकर “सुनो, सुनो, अग्नि पाखी को” (हार्क हार्क द लार्क) बजाने लगी। और इसके बाद कुछ ऐसा घटा जिसे शब्दों की कमी के कारण शिक्षण की उपलब्धि ही कहने पर बाध्य हूं।

यह नहीं जानती कि यह शूबर्ट का जादू था जो शताब्दियों को उलांघ कर उसके संगीत में बोल रहा था, या फिर मेरे ही मन का उल्लास था जो उसके संगीत को नया रस दे रहा था, या कि भयानक शीत लहरों के बाद हवा में बसंत के आगमन की सूचना थी, या महज यही कि जो हुआ उसके घटने का समय अब आ चुका था।

इधर मैंने बजाना शुरू किया, उधर देखती हूं कि मेरे दाहिने ओर कुछ पीला सा चमका, मैं मुड़ी, देखा ट्वीनी नाच रही है। उत्तेजना की एक सिहरन मेरे पूरे शरीर में फैल गई। यह हूला या कोई देसरी तरह का आदिम या अपरिष्कृत नृत्य न था। यह तो मनोभावों की ऐसी अभिव्यक्ति थी जिसे आजकल ‘आधुनिक नृत्य’ नाम के तहत बाकायदा सिखाया जाता है, पर जो असल में अनादि काल से, कला के भी पहले से चला आ रहा है। संगीत की लय से जुड़ा, संगीत के भावों को अभिव्यक्ति करता हुआ नृत्य। और तब दूसरी ट्वीनी ने भी एक छोटी सी उड़ान सी भरी। वे दोनों तन्मय हो एक दूसरे के लिए, एक दूसरे के साथ नाचने लगीं। उनका हरेक अंग, उनके छोटे-छोटे हाथ, पूरा शरीर ही संगीत को अभिव्यक्ति देने लगा। दो नन्हीं आत्माएं, अपने पीले स्वेटरों में बिलकुल पीत पाखियों सी नाच रहीं थीं।

और सच कभी-कभी समय भी साथ देता है। ठीक मेज पर फिल्म से भरा एक कैमरा रखा था।

“कोलीन, इसे तुरंत उतारो फिल्म पर।”

पर जल्दी की जरूरत न थी। क्योंकि अब अचानक रोनाल्ड उठा, तब माटाव्हेरो। उसके बाद नन्हीं तामाती बच्चियां रीति और हिने। अद्भुत दृश्य था कभी देखा न हो वैसा। शूबर्ट के बसंत संगीत के साथ मटकते, लचकते चमरी घूमते नन्हें बच्चे।

उन्होंने यह धुन पहले कभी नहीं सुनी थी। न ही ऐसा अद्भुत नृत्य ही किया था। पूरी तरह स्वतःस्फूर्त और स्वाभाविक। नितांत सहज मैंने सारे श्रद्धा सुमन शूबर्ट को चढ़ा डाले। पर उनमें से एक बचा लिया। अपने लिए।

अब याद आया कि कैमरा तो जिस तरह रखा था उसमें किसी भी बदलाव के बिना ही चित्र खींचे गए। शायद चित्र अस्पष्ट आए। पर फिर भी कुछ नहीं बिगड़ा। कोलीन

आज अपने साथ कैमरा टाराडेल ले गई है। मतलब फिल्म ले गई है, धुलवाने के लिए।

कल मैंने हेड साब से दोपहर खाने के समय कहा “टॉम ने मेरे टामाटी बच्चे को पीटा।”

“किसलिए।”

“उसकी बात नहीं मानने के कारण। जरा सोचो, टामाटी, बच्चे क्या किसी का भी कहना मानते हैं ? बचपन से ही उनमें कुछ ऐसे संस्कार डाले जाते हैं कि अनुपालन उन्हें नापसंद हो जाता है। यह बात तो उनकी मानसिक बनावट और व्यवहार से ही स्पष्ट हो जाती है ना। मैं इतने दिनों की मेहनत के बाद उनका विश्वास जीत पाई थी। उसे एक अस्थाई अनुपालन तक ला पाई थी। वह जितना जंगली नजर आता है उतना ही शर्मिला भी है। बिलकुल किसी ओपॉसम (चूहे सा जानवर) सा। पर कितना प्यारा और कोमल भी है वह।”

“कल टॉम ने खुद भी मुझसे इस ही बात का जिक्र किया था।”

“कोई भी टामाटी” मैंने अपने भावनाओं पर पर्दा डालते हुए आगे कहा “किसी का कहा नहीं मानता। इंसान छोड़ भगवान तक का नहीं, फिर शिक्षक की भला क्या ओकात है ?” इस बीच मेरा पारा इतना चढ़ गया कि मैंने विषय ही बदल डाला।

“टॉम ने तो माटाव्हेरो को भी पीटा था, ‘बेईमान’ कहने पर। यह शब्द स्कूल में वर्जित है। पर मैं अपने नन्हे-मुन्नों को शब्द वर्जनाओं की बात अब तक समझा ही नहीं सकी थी। और उस पिटाई के बाद से माटाव्हेरो कुछ ज्यादा ही ‘अच्छा’ हो गया है। वह उन सब बातों पर भी ध्यान दे रहा है जो उसके लिए बेहद कठिन हैं। मैं खुद ही इस बच्चे के साथ पहले से कुछ गलतियां कर चुकी हूँ। उनकी बात तो पहले बता ही चुकी हूँ, और अब यह। पर एक बात जरूर है जो कहानियां वह लिखता है उससे यह तो पता चलता ही है कि वह पिटने से वाकिफ है, उसका आदी है।”

श्रीमती कटर के अरुचिकर विषय को बंद करने के पहले एक बात और बता दूँ। हमारे दो गोरे बच्चे-डेनिस और मार्क स्कूल से कोई मीलेक भर दूरी पर एक ही सड़क पर आसपास बने घरों में रहते हैं। दिन में चार बार कटर के परिवार की गाड़ी मार्क को छोड़ने या लेने स्कूल के दरवाजे तक आती है और दिन में दो बार वुड परिवार की। पर इन दोनों गोरे परिवारों के बच्चे कभी भी एक गाड़ी में आ या लौट नहीं सकते। और इसमें आपत्ति डेनिस के परिवार को नहीं है।

आज सुबह मैंने बच्चों को सुनो, सुनो अगिन पाखी को, गीत के शब्द सिखाने शुरू किए।

“हार्क, हार्क, द लार्क” मैंने शुरू किया।

मार्क जूतों की आवाज करता घूम रहा था। पर बाकी बच्चों ने शब्द दोहराए।

“क्लक-क्लक द लार्क, और हार्क-हार्क द क्लार्क”

कोलीन के नाम लिखी नोट

कोलीन, आज नहीं आ सकूंगी। टेम को तुम वह पुरानी नीली माओरी किताब देना। भंडारघर के ऊपर की टांड के नीले डब्बे में रखी है। किताब जरूर देना जिससे वह दुखी न हो। और हां, आज हाका नृत्य न करवाना, उससे ये सारे बच्चे बेहद उत्तेजित हो जाते हैं और फिर हाका है भी तो खास मौकों के लिए। मैं शुक्रवार को शुरू किए सभी बच्चों के आलेख लौटा रही हूँ। शायद उन्हें अभी भी याद हो कि वे क्या लिखना चाह रहे थे। और फिर कागज की कमी तो है ही न। खेल घंटे में ‘सी’ टोली से मिल कर बुधवार की प्रतियोगिता के लिए पीले स्वेटरों की बात जरूर करना। खाने की छुट्टी के बाद कहानी और चित्रकारी का सत्र रखो तो अच्छा रहे। विषय अभी क्लक, क्लक, अगिन पाखी ही है। बहुत-बहुत शुक्रिया।

कल से हेस्टिंग्स क्षेत्र की प्राथमिक शालाओं का प्रांतीय बास्केटबाल प्रतियोगिता है। जिसमें दर्जनों टोलियां हिस्सा लेंगी। पिछले साल के विजेता पाकी-पाकी को हराने के बाद से ही मैं खाट पकड़े रही हूँ। कोई अभ्यास, कोई तैयारी नहीं करवा पाई हूँ। पर चिंतित फिर भी नहीं थी। इसलिए कि मुझे यह लग रहा था कि हमारी टोलियां अभी भी चौकन्नी और जीवंत हैं, उन्हें अपने संगठन और व्यवस्था का ध्यान है। फिर भी आज स्कूल गई। सिर्फ कल की प्रतियोगिता के कारण। एक बार फिर अभ्यास करवाया। इस बीच वे अपने आप ‘पा’ में खेलते रहे थे। तकनीक, बारीकी और गति के बारे में जो कुछ मैंने उन्हें सिखाया था, वह सब वे बाकायदा नष्ट करते रहे।

आज के परिणाम को देख मुझे तो गश ही आ गया। स्लेट बिलकुल साफ है।

दुखी हो, स्कूल के बाद मैंने सभी साथियों से कह दिया “मैंने सोचा था कि कल की प्रतियोगिता के लिए हमारी तैयारी बेहतरीन है। पर अभी से सुन लो कि ऐसा कुछ भी नहीं है। सब खो गया है, इस बीच।”

प्रतियोगिताओं में

हम

विजयी रहे

चौथाई मील के इलाके में छितरे बास्केटबॉल कोर्टों पर हजारों उम्दा नीली पोशाकें दिख रही थीं, इन्हीं के बीच मैंने चकमक पीले स्वेटर और गहरे भूरे रोम्पर्स पहने अपने सत्ताईस माओरी बच्चों को छोड़ा। पिघले सोने की तरह पैवेलियन से निकले और भीड़ में से बहते हुए दूसरे किनारे पर स्थित तीसरे और चौथे कोर्ट में पहुंचे। और इन सत्ताईस में नौ वे भी थे जो क्रमशः एक से दूसरे कोर्ट में खेलते हुए, दूसरी टोलियों को हराते हुए अंततः पेविलियन के पास के अंतिम कोर्ट में अपना आखिरी खेल भी जीतने वाले थे।

हर जगह एक ही सवाल सुनाई पड़ रहा था। “ये पीले कौन हैं ?” यह थी मेरी सीधी सादी ‘ए’ टोली।

मेरी आवाज तो मानो रुंध ही गई थी। “रॉन्डा” मैंने फुसफुसा कर उससे कहा “जरा जोर से कहना तो बढ़ो, फर्नहिल बढ़ो।”

“बढ़ो फर्नहिल” वह चीखी।

“नैट्ट, पॉली, लोटस तुम सब भी मेरे लिए कहो न, बढ़ो फर्नहिल बढ़ो।” पुकारें! पुकारें! पुकारें! “बढ़ो फर्नहिल बढ़ो !”

अब मेरी ‘ए’ टोली बिना सुस्ताए अपना पांचवा मैच खेल रही थी। बिलकुल थक चुके थे वे और निखलिस “पा” शैली में उन सबका पारा चढ़ रहा था, और वे खेल हारने लगे थे। मैं कोर्ट के पास दौड़ी जहां यह आखिरी युद्ध लड़ा जा रहा था। “डेला” मैं फुसफुसाई “इतनी दूर मत फेंको बॉल।”

मैं बॉल के पीछे-पीछे गोल तक पहुंची “टाटू, रुको, साधकर फेंको।” जैसे ही वह बास्केट में बॉल फेंकने को तैयार हुई, मैंने कहा।

अब वे कुछ-कुछ सम्हलने लगे थे। दिमाग में कहीं दूर से यह ध्यान भी आ रहा था कि कोर्ट के किनारे से खेल निर्देश देने के विरुद्ध कोई नियम भी है। पर मैं तो जन्मी ही शायद कायदे कानूनों को तोड़ने के लिए हूँ। कोर्ट के बाहर से क्या मैं तो प्रायः कोर्ट में तो घुसकर ही निर्देश दे, रही थी। “जीन, टाटू, रॉन्डा को छोड़ो। अपने गोल खुद करो।” जरूर उन्होंने मेरी फुसफुसाहट सुनी होगी।

अब खेल खत्म हुआ ही चाहता था। रैफरी बराबर दूसरी टीम के साथ पक्षपात करता रहा था। हम अब भी पीछे ही थे। इतने में अचानक काहू प्रकट हुआ। उन्होंने

उसे देखा। उसकी बात भी सुनी। “पाउलेट, बॉल ध्यान से साधकर बास्केट में डालो,” उन्होंने उसे कहते सुना।

तीन गोल, एक के बाद एक जल्दी-जल्दी हुए। एक फेंकता एक झेलता और इतने में सीटी बजी।

विजय शायद इससे कहीं अधिक आसान होती पर कठिनाई के दो कारण थे।

एक तो हमारी सबसे अच्छी खिलाड़ी मेरिऑन के पांव में चोट थी सो वह खेल ही नहीं पाई।

दूसरे, एक को छोड़कर सभी रेफरी “इन भयानक माओरियों” के विरुद्ध थे।

मेरा विश्वास है कि अंतिम बाधा को पार करने में काहू के अचानक प्रकट होने का भी योगदान था।

मैं तो यह सोचते-सोचते घर लौटी थी कि जब तक पूरी तरह स्वस्थ न हो जाऊंगी घर पर ही रहूंगी, पर आते ही के. ने निरीक्षक महोदय का पत्र दिखाया। लिखा था, “13 अगस्त से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में किसी भी दिन हम निरीक्षण के लिए आपके विद्यालय में आ सकते हैं।”

यानी, अब मुझे अपनी पठन योजना फिर से तैयार करनी है। अपने प्रयोगों के ताजा परिणाम और प्रेक्षकों को जोड़ना है। लिख डालने के बाद उसे बाकायदा मढ़ना है और तब रंगीन कागज से उसे सजाना भी है। हां, अपनी माओरी पाठमाला इहाका तीसरी किताब-को पूरा कर चौथी किताब तक भी बढ़ना है।

सहज व्यवहार

स्वतः नाचना। लगता है इन बच्चों में जितनी अस्थि मज्जा है उससे कहीं अधिक संगीत है। और सच जब मैं अमूर्त सहज व्यवहार की बात करती हूँ तो मेरा तात्पर्य ऐसे ही व्यवहार-आचरण से होता है। सहज से मेरा मतलब ही बच्चे के उन रचनात्मक बीजों से हैं जो बाकी कमजोर पक्षों को पीछे धकेलते हुए सबसे ऊपर उठ आएँ। पेड़ों के एक ऐसे झुरमुट की कल्पना कीजिए जिसमें पेड़ बिलकुल पासपास उगे हों। उनमें जो सबसे मजबूत होंगे वे ही न ऊपर उठ सकेंगे। सबसे अधिक प्रकाश पा सकेंगे। बच्चों के मानसिक विकास के संबंध में भी ऐसी बात ही तो हम चाहेंगे। जो भी अंतःप्रेरणा या मनोवेग किसी एक समय उसके मस्तिष्क में सबसे शक्तिशाली हो वही ऊपर उठे। यह चाहेंगे। चाहे वह मनोवेग हमें एकबारगी अनुचित ही क्यों न लगे। हम चाहेंगे कि उसका व्यवहार नितान्त स्वाभाविक हो। पूरी तरह स्वतःस्फूर्त। और ऐसे ही व्यवहार को मैं उसकी आंतरिक अस्त-व्यस्त व्यवस्था कह कर पुकारती हूँ। क्योंकि बाहरी आरोपित

अनुपालना के न होने के कारण ही वह पूरी तरह स्वाभाविक होता है इसीलिए गडमड नजर आता है। और ऐसे व्यवहार का पूर्वानुमान लगा पाना असंभव है। यही कारण है कि अमूर्त (एब्जट्रेक्ट) और सहज (औरगेनिक) दोनों ही शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। अगर हम ऐसे आचरण को स्वाभाविक कहें तो ये दोनों पक्ष उसमें समाहित होते हैं।

उसी की तो चाहना है मुझे। पर फिर भी न जाने क्यों अकसर मुझे शंकाए घेरने लगती हैं। इंग्लैंड में नील नाम से एक सज्जन हैं, वे भी तो ऐ-ऐसा ही स्कूल चलाते हैं। वैसी स्थितियां मुझे नहीं चाहिए। उस दिन जब नन्हें अचानक उठकर नाचने लगे और अब भी जब जी आया नाचते ही हैं वे—तो मुझे एक दुर्लभ सपने की तरह उस अमूर्त और पूर्णतः सहज व्यवहार की झलक देखने को मिली थी। उसी की झलक तब भी मिलती है जब सेवेन अचानक कुल्हाड़ी उठा लेता है या वह नन्हा टामाटी किसी शिक्षक की बात मानने से साफ इनकार कर देता है। इतनी हलचल; बातचीत का कभी न खत्म होने वाला शोरगुल; और तब अचानक छा जाने वाले सन्नाटे; दस्तक सुन सभी बच्चों का दरवाजे की ओर भागना; जोर-जोर से बुक्के फाड़ कर रोना; अचानक खुशी से भर गा उठना; उनके अपने बारे में लिखे आलेख—इन सभी चीजों से बनता है वह अद्भुत अमूर्त नमूना। इसलिए क्योंकि उनका यही व्यवहार, यही आचरण सहज है, पूरी तरह स्वाभाविक।

निरीक्षकों को तो इस ही सप्ताह आना था। पर आज बुधवार को सुबह नौ बजने में बीस मिनट हो चुके हैं। मैं बेहद आर्शकित हो चली हूँ। सोम को मन आर्शकित न था, मंगल को भी हालत इतनी बुरी नहीं थी। पर अब सच में बेहद थक चली हूँ। आज भी अपनी सफेद जर्सी ही पहने हुए हूँ... पेचीदा स्थितियों का सामना करने के लिए मैं इसे पहना करती हूँ। तीन दिनों से हर सुबह अपने जूतों की सफेद एड़ियों को भी रगड़ कर साफ करती रही हूँ जो मैं सामान्यतः कभी नहीं करती। अपना माओरी कमरबंद भी मैं कस चुकी हूँ। और तो और किसी के यह दिलासा देने का भी अब कोई फायदा नहीं कि डरने की कोई बात नहीं है। यह तो मेरे अतीत का ही भूत है जो अब सता रहा है। मेरी पीढ़ी के सभी शिक्षक निरीक्षण के नाम से ही उन गुजरे क्षणों को फिर से जीने लगते हैं जब हम स्वयं पांच साल के नन्हे थे और हमारे शिक्षक निरीक्षकों के आगमन के तनाव से जड़ हो जाते थे। हम उस कच्ची उम्र में भी अपने शिक्षकों के तनावों को भांप लेते थे और खुद भी उससे त्रस्त हो जाया करते थे। अभी इस मूर्त में मुझे यह कतई याद नहीं आ रहा कि पिछले अठारह महीनों से ट्रेमेइन साब किस स्नेह के साथ मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं। मेरा विश्वास जीतने के कितने प्रयास उन्होंने किए हैं। पर अतीत के उस भूत के सामने सब कुछ छू हो गया है। काश, मुझमें एक

अच्छी शिक्षिका होने का आत्मविश्वास होता। असल में तो मैं उन अधपगले लोगों में से एक हूँ, जिसे संजोग से नन्हे बच्चों के बीच छोड़ दिया गया है। काश मैं भी कार्यपुस्तिकाएं रखतीं, उनसे अपनी योजनाएं बनाती और चुपचाप पढ़ती चलती। कम से कम बहुसंख्यक शिक्षकों के साथ चलने का विश्वास तो तब मेरे साथ होता ही। सच, अकेले चलने की क्या कीमत चुकानी पड़ती है। अगर आप मेरी इस पठन-योजना को नजर भर भी देखते तो आ समझ लेते कि मैं क्यों अकेले चलने की बात कह रही हूँ। पर इसे प्रस्तुत तो मुझे करना ही है। क्योंकि आखिर उसे तो करना ही होगा न जिसमें आस्था हो। और सच तो यह है कि जो कुछ मैं करती हूँ, उस सबमें मेरी आस्था है। पंक्ति से बाहर कदम रखने की कीमत तो चुकानी ही पड़ती है बराबर। और यही करते रहने के लिए अब मैं बुढ़ा चली हूँ। थक चली हूँ मैं। फिर भी जिसमें आस्था है, वही करने को मजबूर हूँ और कुछ कर ही नहीं सकती। कितनी छोटी है न आखिर जिंदगी, दूसरा कुछ करने के लिए। दूसरे शिक्षक समय सारिणी बनाया करते हैं पर मेरी सारिणी में गणित के विषय के बीच बच्चे उठकर नाचना शुरू कर देते हैं। और मैं अगर कड़ी नजर न रखूं तो यह भी संभव है कि माटव्हेरी हाका (माओरी युद्ध नृत्य) ही करने लगे। एडमंड बर्क, तुम तो कम से कम आज मेरे साथ रहना।

दोपहर एक बजे। बाज दफे ऐसे समय भी आते हैं जब मैं पढ़ाने में पूरी तरह असमर्थ हो जाती हूँ। आज ऐसा ही समय है। किसी भी प्रयास में अगर ऊंची चोटियां आती हैं तो साथ ही गहरे खड्डे भी। आज सामने गड्डे ही दिखे हैं। हर तरफ शोर है, ढेर सी रंगीन चाँक है, संगीत है, बच्चे पढ़ भी रहे हैं, हंस और गा भी रहे हैं। पर मैं फिर भी अपने सामने के गर्त में गहरे, और गहरे, गिरी जा रही हूँ।

मैं उन लोगों में से नहीं जो जिंदगी के मूल तत्व, उसकी मूल धारा से कटकर आंसूओं के पर्दे के पीछे से अतीत के क्षणों को देखते हैं। और तब कहते हैं कि जीना ही व्यर्थ है। मैं तो उन क्षणों का उपयोग करती हूँ। हर बार मैंने सही समय पर जीवन के सच्चे अर्थों को देखा है, उन्हें महसूस किया है। और यह भी पहचाना है कि मैं उन अर्थों को देख और समझ रही हूँ। मैंने तो यह भी बराबर जाना है कि भविष्य में आगे और भी अनेकों गर्त मुंह बाए मेरे सामने आएंगे। पर जब-जब मैं जीवन की ऊंचाइयों को छू पाई तब-तब मेरे मन ने कहा है कि 'इस क्षण के पहले और इसके बाद आने वाली पूरी जिंदगी का औचित्य इस क्षण के अद्भुत सौंदर्य में ही समाहित है।' ऐसे कई क्षण होंगे जिन्हें आज मैं भूल चुकी हूँ, पर उन क्षणों में जो मेरे मन ने कहा वह मुझे नहीं भूला है। मैं सच में, अपने आप पर विश्वास रखती हूँ। भविष्य मेरे लिए जो कुछ भी लाए, उसे जाने बिना भी मैं आज ही पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि मेरा अब तक का जीवन सार्थक रहा है। उन तमाम गर्तों के बावजूद।

पिछले सप्ताह ही तो मेरे एक प्यारे मित्र ने लिखा था “इन चालीस वर्षों में तो लड़ना ही होगा। इधर जीवन की समाप्ति का अध्याय प्रारंभ हो भी गया और उधर मैं जीवन का इंतजार ही करता रह गया। और जब मैं उन संभावनाओं पर विचार करने लगता हूँ कि मैं क्या कुछ कर सकता था, जब मैं तुरंत समझ जाता हूँ कि दवा की चम्मच पीने का समय हो गया है।”

पर मैं तो बखूबी जानती हूँ कि ऊंचाइयां मेरे इस मित्र के जीवन में भी आई थीं।

एक दूसरे मित्र ने बताया था कि क्योंकि अब अतीत की आभा, उसकी चमक जाती रही है, उसे लगता है कि वह सचमुच मर ही गया है “अगर वह ही नहीं रही” उसने कहा “तो फिर जीना ही क्यों ?”

फ्रॉयड’ ने भी कहा था कि “जीवन में बहुत कुछ सार्थक है तो नहीं, पर केवल वही तो है आखिर मनुष्य के पास।”

मैं भी जानती हूँ कि अतीत के साथ ही बहुत कुछ छूट चला है और आगे भी छूटता जाएगा। पर वह सब कुछ जीवन में घटा तो था न। कम से कम तब तो मेरे जीवन में वह था न। और तो और मैं तो उन क्षणों में भी यह निश्चित रूप से जानती थी कि उन क्षणों के अलावा जो कुछ भी मेरे जीवन में आया, जो कुछ दूसरा घटा, उन सबका औचित्य भी उन्हीं क्षणों में निहित था।

मुझे तो जीवन, कभी-कभी पूरा जीवन ही एक डरते हुए पाखी सा लगता है। मुझे लगता है कि आत्मा एक निरुद्देश्य झंझा का सामना करती उड़ती रहती है। वह आंधी जब भी थमती है तो वह पाखी धरती पर उतरता है, उतरकर सुस्ताने लगता है, एक बार फिर अंधड़ के थपेड़ों का सामना करने। उड़ान भरने के पहले ठोस धरती से स्पर्श के उन क्षणों में ही मैंने जीवन और उसके अर्थ को पहचाना था। यह सच है कि उन क्षणों के दरम्यान मैंने भी हरेक इन्सान की तरह अपने हिस्से में आए तूफानी थपेड़ों को झेला है। पर हर बार इन तूफानों से जूझते समय एक तथ्य ने मुझे आश्वस्त किया है कि नीचे कहीं धरती भी है, क्योंकि मैं उसे देख चुकी हूँ, उसे छू सकी हूँ। बराबर उड़ते रहने की प्रेरणा भी मिलती रही है मुझे क्योंकि आखिर जीवन के अर्थ को तो मैं खुद अपनी ही आंखों से देख चुकी हूँ न।

’ आस्ट्रियन स्नायुशास्त्री और मनोचिकित्सक, इनके विचारों ने कलासृजन और शिक्षा को प्रभावित किया।
‘मनोविश्लेषण’ उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है।

ऐसा नहीं है कि उम्र के बढ़ने के साथ ऊंचाइयों के ये क्षण भी कम होते जाते हों। बल्कि होता यह है कि उनका स्वरूप बदलने लगता है। परिपक्वता न केवल दूसरी आत्माओं के साथ विलय लाती है बल्कि उससे तो जीवन के साथ ही विलय हो जाता है। हर सुबह खिड़की के बाहर भोर के बादलों की वृहद कालिमा को देख यह अहसास करती हूँ कि मैं अभी भी जीवित हूँ। तब जो उल्लास मन में जगता है, वह प्रेम के क्षण से कम नहीं होता। पर हाँ, उससे अलग जरूर होता है। अहसास की तीव्रता यहां भी होती है, वैसा दर्द भी, वैसी प्रेरणा भी। जब मैं काफी छोटी थी तब भक्ति भाव मन में अधिक था, मेरा सोचना भी तब आज से कहीं अधिक प्रतीकात्मक था। तब मैं कहा करती थी कि मैंने “ईश्वर दर्शन किया है”। वह ईश्वर का चेहरा हो, या न हो, यह अवश्य जानती हूँ कि भोर के उन क्षणों में मैं कुछ देखती जरूर हूँ जो मन को आनंद और उल्लास से भर देता है। और यही है जो मेरे सांस लेते रहने को, मेरे जीवित रहने को भी औचित्य प्रदान करता है।

जब सुबह कीथ मुझे चाय का प्याला थमा जाते हैं तो मैं तकियों को ऊंचा कर उन पर सिर टिका लेती हूँ और सामने वाली खिड़की के पर्दों के फांक के बीच भोर के नए, कोमल आकाश की पृष्ठभूमि में काले पेड़ों के आकार देखती हूँ। तब मैं झटके से पिछली खिड़की का पर्दा हटा देती हूँ। तब अपना बाग, सामने की सड़क, उसके पार खेत, और सुदूर खड़े धुंध से घिरे उन पहाड़ों तक को देखती हूँ। सिर्फ इसलिए ताकि मैं अपने आपको यह विश्वास दिला सकूँ कि मैं अभी भी जीवित हूँ और मेरे भाग में एक और नया दिन भी है।

बृहस्पतिवार की सुबह। मुझे यह पता चल गया कि वे लोग अब तक आए क्यों नहीं। इसलिए नहीं आए थे वे लोग क्योंकि मेरी योजना अब तक अधूरी ही थी। कुछ ही मिनटों पहले मैं गर्म साबुन के पानी में पैर डाले मोपासां के सुंदर विचारों को गुन रही थी।

“शब्दों की आत्माएं होती हैं। पर वह आत्मा तब तक व्यक्त नहीं हो पाती जब तक शब्द स्वयं लालित्य में स्थापित न हो जाए।”

मोपासां के ये ही शब्द अब मेरी पठन योजना के प्रारंभ में हैं। और मैं दुश्चिंताओं के भंवर में उबर चली हूँ। हर चीज का कोई न कोई कारण होता है न। लगता है आज सुबह वे जरूर आएंगे।

अपने सफेद स्वेटर को मैं रात को धो चुकी हूँ। जूतों की एड़िया भी आज चौथी बार चमका ली हैं। के. जब स्कूल के लिए निकले तब उन्हें शुभेच्छाएं भी दे दी हैं।

“मेरे पास अभी तक स्वास्थ्य शिविर से वाईवीनी का कोई पत्र आया ही नहीं” कोलीन ने कहा। “उसने तो वायदा किया था कि वह जरूर पत्र डालेगी। चलते-चलते यही बात तो उसने मुझसे कही थी।”

“क्या तुम यह भी जानना चाहोगी कि मुझसे कहे उसके आखिरी शब्द क्या थे ?”

“क्या ?”

“उसने कहा था कि “आप की ठोड़ी बेहद लंबी है।”

विकी : मैं कॅकाल (व्स्कैलिंग्टन) से डरता हूँ। बहुत ढेर हड्डियां होती हैं उसकी।

सेवेन : मैं कीड़ों से डरता हूँ।

लैरी : मैं भूत से डरता हूँ।

बैटी : मैं भी भूत से डरती हूँ। सबको खा जाता है।

विकी : मैं भूत से डरता हूँ। भूत को मैंने गोली मार दी। वह मेरी पीठ पर कूदा।

रंगी : मैं पुलिस से डरता हूँ। वे कसाई के छूरे से मार डालेंगे मुझे।

मारे : मैं दमकल से डरता हूँ। दमकल जलाकर मार डालेगा।

बैटी : मैं भूत से डरती हूँ। हम सबको खाता है।

शुक्र की सुबह और सत्र का आखिरी दिन।

जब के. सुबह आठ बजे स्कूल जा रहे थे तो मैंने उनसे पूछा “क्या तुम्हें लगता है कि वे लोग आज जाएंगे ? सत्र के आखिरी दिन इतनी बरसात में ?”

“क्योंकि आने की बात उन्होंने स्वयं ही कही थी, सो उन्हें आना ही पड़ेगा। कम से कम मुझे तो यही लगता है।”

आज मैं अपने जूतों की एडियां रगड़कर साफ नहीं करने वाली हूँ। और मेरा सफेद स्वेटर भी अब सफेद नहीं रहा है। न ही घर से निकलने के पहले मैंने अपनी पठन योजना पर एक आखिरी नजर ही दौड़ाई है। इस हफ्ते के कपड़ों की इस्त्री भी मेरी अधूरी ही हो पाई है। और तो और जब के. सुबह स्कूल के लिए निकले तो मैंने उन्हें शुभेच्छाएं भी नहीं दीं। मैं लय के प्रति असंवेदनशील नहीं हूँ।

मैं ट्रेमेइन साब को स्कूल में इस अनावश्यक तनाव को पैदा करने के लिए, लगातार चार दिन तक अपने जूतों की एडियां रगड़कर साफ करने पर बाध्य करने के लिए, सप्ताह के अधबीच में स्वेटर धुलवाने के लिए माफ कर ही दूंगी। अपनी पठन योजना

को दबाव में पूरा करवाने के लिए भी माफ कर दूंगी। मैं निरीक्षकों के स्वाभाविक, सहज आचरण पर कैसे आपत्ति करूं, क्या प्रश्न उठाऊं ? आखिर मैं तो सहज आचरण का ही प्रचार करती फिरती हूँ ना ?

पर मेरे इस्त्री का काम अधूरा छुड़वाने के लिए मैं उन्हें कभी माफ नहीं कर सकती। और वह सफेद स्वेटर ? मैं उसे फिर कभी-भी नहीं पहनूंगी।

उस दिन विजय के नशे में 'ए' टोली को वादा कर दिया था कि मैं उन्हें सिनेमा दिखाने ले जाऊंगी। सो आज वह वादा पूरा करना है ईश्वर मेरी रक्षा करे। सुना है हम सब वॉर्नर ब्रदर्स का "रंगीन नजारा" देखने जा रहे हैं जिसका नाम है 'प्लेम एंड ऐरो' (लपट व तीर)। मैं सच्चे मन से एक बार फिर अपनी प्रार्थना दोहरा रही हूँ – हे कृपालु भगवन, इस परीक्षा की घड़ी में मेरी रक्षा करना।

छुट्टियां

मैं किसी दूसरी दिशा में बहकूँ उसके पहले मैं मन का एक बोझ हलका कर लूँ। कुछ दिनों पहले बाजार में मुझे श्रीमती कटर मिलीं। मिलीं यानी मैं तो दुकान के अंदर थी, उन्होंने मुझे बाहर से ही देखा था। उन्होंने तुरंत अपना मुंह फेर लिया। साथ ही मार्क का मुंह भी दूसरी ओर कर दिया ताकि वह मुझे देख न पाए। बात मुझे और अधिक इसलिए चुभी क्योंकि मेरे साथ एक माओरी मित्र भी थीं। बुरा हो उनका, उन्हें तो सरापने का जी चाहता है।

छुट्टियों से लौटने के बाद मार्क ने पहला काम जो किया था, वह था मेरे लिए रुककर सीढ़ियों पर इंतजार करना। (मुझे स्कूल पहुंचने में कुछ देर हो गई थी) जब हम अंदर पहुंचे तो वह देर तक मेरे दोनों हाथ थामे मेरे पास ही खड़ा रहा।

मैंने अपने हलके बादामी रंग के कोट के साथ पहनने के लिए एक भड़कीला माओरी कमरबंद बनाया था। ताकि मैं उसे वैलिंग्टन में पहन सकूँ। कमरबंद पर मैंने लाल, बादामी और काले धागों से एक सुंदर माओरी बेल काढ़ी थी। ठीक वैसी जैसी वाइओमातातीनी के सामुदायिक भवन-पोरोउरांगी में बनी हुई है। यह भवन सर आपिराना नागाता का चेहता भवन था। सच में पूरे न्यूजीलैंड का सबसे अनूठा भवन है यह। कमरबंद कुछ ऐसा बन पड़ा कि बरबस ही सबकी नजर उस पर खिंचे। और इस कारण उसे पहनना और भी कठिन हो गया था। पर इस कमरबंद की असली महत्ता बहुत कम

लाग ही समझ पाए। महत्ता इस बात में निहित थी कि न्यूजीलैंड की स्थानीय लोक संस्कृति का एक अंश अंततः यूरोपीय संस्कृति हो रहा था। सच बताऊं तो पूरी गर्मजोशी और आवेगों के साथ इसका स्वागत हुआ। एक स्तर पर तो मेरा कमरबंद केवल एक ऐसी चीज थी जो दुकानों में सजी चीजों के विपरीत भड़कीले रंगों में बनी थी। पर बंद दरवाजों के पीछे, जानने वालों के बीच उसकी असली वकत की भी कद्र की गई। यह एक वृहद नई शक्ति के जन्म का प्रतीक था। और यह नई शक्ति है सामासिक संस्कृति।

पर केवल सामासिक संस्कृति के प्रतीक के रूप में इसे पहचाना गया हो इतने भर पर बात रुकी न थी। बल्कि इसके अलावा भी, उसे अपने सौंदर्य के लिए भी

पर केवल सामासिक संस्कृति के प्रतीक के रूप में इसे पहचाना गया हो इतने भर पर बात रुकी न थी। बल्कि इसके अलावा भी, उसे अपने सौंदर्य के लिए भी पसंद किया गया। सच तो यह है कि इस तरह के संबल की मुझे बेहद जरूरत थी। क्योंकि जितने साहस की मुझे इस कमरबंद को बांधने के लिए जरूरत पड़ी, उतने साहस की जरूरत कभी किसी दूसरी चीज को पहनने के लिए नहीं पड़ी थी। न जाने वह कौन सा आकर्षण था, कौन सी शक्ति थी, जिसने मुझे वैलिंगटन जाते समय इसे पहनने पर बाध्य किया। पर साहस की यह कठिन परीक्षा भी आसान हो गई, जानना चाहेंगे क्यों? आसान हुई उन अचानक उड़ती सी कमरबंद पर पड़ती माओरी नजरों के कारण। और सच पूछें तो उनकी दृष्टि में मुझे अपने साहस का पुरस्कार भी मिल गया। सच, जिस तरह बुलवर्ध में खड़ी उस सहायिका ने उत्साह से भरकर मेरी मदद की वह देखने लायक था। काश आप उसकी नजरों में झांक पाते। ऐसी मुग्ध दृष्टि थी उसकी मानो मेरी जगह उसके सपनों का माओरी योद्धा राजकुमार ही खड़ा हो। मेरे साथ जो मित्र थीं वे तो अर्चभित ही रह गईं। और बाद में रेस्तरां में परोसगारी करती वह अधेड़ माओरी महिला तो बाकायदा अपने हाथ की ट्रे नीचे रख मुझे घूरती रही थी। और तो और सड़क के उस पार चलते दो माओरी नौजवानों ने सड़क पार की और मेरे पास ही कमरबंद को घूरते हुए निकल गए। सच बसंत की ये सुबहें इन घटनाओं से कितनी सुहानी बन उठीं थीं।

और अब मैं फिर से लौट आई हूँ, अपने ठौर पर। हमने टॉम को सुलेख का का निर्देशन देने बुलाया। निर्देशन के सभी सत्र बहुत अच्छे रहे। कोलीन और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा।

हमारा नन्हा गोरा डेनिस आजकल अस्पताल में है। मानसिक असंतुलन के कारण। बच्चे को पालने की प्लंकेट रीति*, एक युवा पर बेहद दबंग मां, जिसकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा धन कमाना ही है; इन सब के सामूहिक प्रभाव ने उसे मनोरोगी बना दिया

है। वह छड़ी से डेनिस की पिटाई करती है। जिस समय मैं शब्दों के प्रयोग कर रही थी तो डेनिस ने कहा था कि वह दुनिया में किसी भी चीज से नहीं डरता। बाद में उसकी मां ने बताया था कि वह तो निरीह चूजों से भी सहमता है। कभी कभी मन में एक आग सी सुलगने लगती है। जी करता है कि अपने गोरे बच्चों के मनोरोगी माता-पिता को भी पकड़ कर कुछ दिन वहीं अपने पास रख लूं। मेरी गोरी जून भी अभी तक छुट्टियों पर है। मेरी ही सलाह पर।

'प्लंकेट पद्धति : बच्चों को खड़ा करने की वह पद्धति जो शायद उसके शारीरिक विकास में सहायक होती होगी पर उसके मानसिक विकास के लिए तो घातक ही है। 1906 में लॉर्ड प्लंकेट न्यूजीलैंड के गवर्नर जनरल थे। उन्होंने ही इस पद्धति को अपना नाम दिया था।

उस दिन यातायात निरीक्षक आए। वे जानना चाहते थे कि आखिर हमारे बच्चे पुल के पैदल चलने वालों के रास्ते पर साइकिलें क्यों चलाते हैं जबकि सड़क पर वे पैदल टहला करते हैं। हमारे बच्चों को लेकर किए गए डेरों ऐसे सवाल हैं जिनके सामने हम सब लाजवाब हो जाते हैं।

उस दिन प्रोफेसर बेइली ने कहा “साफ सुथरापन शिक्षा को मार डालता है।” मैंने कहा, “जरा फिर से कहिए तो अपनी बात।” “साफ सुथरापन” उन्होंने मेरे लिए बात दोहराई “शिक्षा को मारता है। मैं स्वयं एक बेहद अव्यवस्थित व्यक्ति हूं।”

“और हमारे पास तो व्यवस्थित होने का करीने से सब कुछ ठीक ठिकाने रखने का समय ही नहीं रहता है। और व्यवस्था के नाम पर काम में ली जाने वाली सामग्री? जरूरत के समय उन चीजों को निकालने, तब उन्हें सहेज कर वापस धरने में कितना समय जाया हो जाता है। मुझे बस ब्लैक बोर्ड और चॉक ही पसंद आते हैं।”

कितने ही शिक्षक हैं जो बाहरी टीमटाम में ही इस कदर उलझे रह जाते हैं कि अर्थों का तो क्षय ही हो जाता है। मैंने तो बहुत कम यह पाया है कि कुशाग्र बुद्धि बच्चों का हस्तलेख सुंदर और स्वच्छ हो। असल में तो जो सुलेख लिख पाते हैं वे केवल दूसरों के लेखन की नकल ही करते हैं। जितने भी बच्चे मौलिक हैं, रचनात्मक कलाकार हैं, वे पेंसिल के साथ असफल ही दिखते हैं। हम माटाव्हेरो का उदाहरण ही ले लें। उसे तो मैं आज तक आए हुए कुशाग्र, चतुर और संवेदनशील बच्चों में एक मानती हूं।

हस्तलेख मुझे चिंतित नहीं करता। मुझे परेशान करते हैं बच्चों के लिखे परस्पर

असंबद्ध वाक्य। अकसर पाती हूँ कि इन असंबद्ध वाक्यों की रचना में बच्चे उन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं जो कक्षा में उस समय सीखे जा रहे हैं। यह बहुत ही बुरा लक्षण है। ये ही खंडन के प्रारंभिक पाठ हैं। लेखन तो पूरी तरह से संबद्ध ही होना चाहिए। हर वाक्य ही एक साफ और सुलझा विचार होना चाहिए न, जिसमें हर शब्द उस नमूने का ही हिस्सा हो। आवश्यक हिस्सा हो। हर सुबह मुक्त बातचीत के बाद मेरे बच्चे, पांच साल वाले भी, कुछ न कुछ जरूर लिखते हैं। वह लिखते हैं जो उनकी अपनी बात हो। तब जिन शब्दों को वे चुनते हैं वे भी उनके अपने होते हैं, जरूरी होते हैं, और विचार के दिमाग में पनपने की प्रक्रिया के ही हिस्से होते हैं। इस तरह जो कुछ भी वे लिखते हैं वह श्रृंखलाबद्ध होता है, उसका गहरा अर्थ भी होता है। क्योंकि आखिर हर बच्चा वही तो लिखता है न जो उसके मन की बात है। नहीं तो उसके लेखन में भी शिक्षक ही दिखता है ना। शिक्षा तो मूलतः अचेतन को सचेतन में परिवर्तित करने की ही प्रक्रिया है ना। यानी उसे भी ठीक एक बढ़ते विकसित होते विचार की तरह ही होना चाहिए। यह नई बात नहीं कह रही हूँ मैं। आज की शिक्षा में तो इसे स्वीकारा ही जा चुका है।

आज रात के खाने के पहले बसंत गीत की धुन हवा में उड़कर आते सुन मैंने 'पा' की ओर देखा। पाया कि सामुदायिक भवन के बरामदे में युवामंडल के कुछ सदस्य कुछ देर बाद होने वाली प्रतियोगिता के लिए अभ्यास कर रहे थे। बहुत अच्छा गा रहे थे वे। कितना फर्क था इस गायन में और उसमें जो हमने छुट्टियों में हॉकी की प्रतियोगिता के दौरान सुना था। यह था बीयर गायन। माईक पर। ऐसे माईक पर जिससे तीन भोंपू जुड़े थे। और आवाज दूर तक फैलाने के लिए वे भी सामुदायिक भवन की छत पर लगाए गए थे। पर आनंद और उल्लास के इन क्षणों में यह भी बुरा नहीं लग रहा था। पर यह थी प्रतियोगिता के पहले दिन की पहली शाम। आवाज का तीखापन उस पूरी रात, तब अगली सुबह और शाम तक भी झेलने में कठिनाई नहीं हुई। पर जब दूसरी रात, भी रातभर गायन चला तो लगा कि उसका स्तर गिरने लगा है। छत पर लगे भोंपूओं को अलग करना वे शायद भूल गए थे। लगातार तीसरे दिन की सुबह तक गायन सुनने पर जब यों बाध्य होना पड़ा तो मुझे इसमें कोई तुक नजर नहीं आ रहा था। फिर भी मैंने उसे स्वीकारा। आखिर 'जिओ और जीने दो' के सिद्धांत में मेरा विश्वास जो है। पर सच बताऊं तीसरे दिन मैं सहने की सीमा पार कर चुकी थी। और तब अचानक मुझे केवल 'पाखेहा' ही अपने आस-पास चाहिए थे।

हॉकी! उस खेल के साथ भी क्या मजाक होता है न। वह भी तो केवल साथ मिलने-जुलने का बहाना भर है। और जब मैं साथ कहती हूँ तो सच में वही अर्थ है

उस शब्द का। सिर्फ साथ-साथ। पूरी रात और पूरा दिन-आत्मा व शरीर का साथ होना। मेरे एक मित्र दो बार इन प्रतियोगिताओं के लिए गए थे जिन्हें मैं 'बीयर प्रतियोगिताओं' का नाम देती हूँ। वहाँ तो रात भर गाना और पीना चला करता है, भोर हो जाने तक। ऐसा नहीं है कि मैं इन रात भर गाने-पीने की दावतों से अपरिचित होऊँ। पहले जब हम भी सुदूर इलाकों में रहते थे तो हमने भी कई बार ऐसी दावतों की थीं जिनमें रात भर गाना-बजाना और पीना चला करता था। जैसी दावतें तब होती थीं वैसी तो मैंने बाद में कभी देखी भी नहीं। फर्क सिर्फ इतना भर था कि उन दिनों तीन भोंपुओं का इस्तेमाल नहीं होता था।

साथ-साथ होना। सच माओरी लोग एकता और घुलने-मिलने के बारे में सब कुछ जानते हैं। जिस नई सामासिक संस्कृति की बात मैंने पहले की थी उसने अब तक इन लोगों का सामुदायिक हृदय और मस्तिष्क खंडित नहीं किया है। सच बताऊँ तो मेरा इस सबसे कोई झगड़ा भी नहीं है। न पीने-पिलाने से, न उसके साथ जो कुछ भी इन दावतों में चला करता है उससे। पिपिरिकी में एक शराबी बुढ़िया ने मुझे से कहा था "मुझे अपनी तरह की मौज-मस्ती की जरूरत है।" सच कहती हूँ कि उसकी बात को मैं पूरी तरह समझ पाई थी।

और पुलिस, वे ही तो बीयर उपलब्ध कराते हैं। सच इस बात की पुष्टि मैं फिर से करती हूँ। वे ठीक यही करते हैं।

पर हरेक काली रात का एन एक सितारा भी तो होता है। लगातार चलने वाली संगीत की इन रातों में से एक रात, अचानक ही नींद के गहरे बादलों को बेधने वाले एक सुनहरे पुरुष कंठ को सुनकर मैं चेतनी। गायक का स्वर क्रमशः तीव्र होता गया, आवाज भी धीरे-धीरे और बुलंद। तब तक जब तक मैं पूरी तरह से जग न गई। गायक काहू था। वह 'पा' में गा रहा था। उसके कंठ से ही स्पष्ट था कि वह बहुसंख्यक श्रोताओं के लिए गा रहा है। भोर के आगमन के उन क्षणों में उसकी आवाज किसी उड़ान भरते सुनहरे पाखी सी लग रही थी। ऐसे पाखी सी जो ऊपर, और ऊपर, और ... और ऊपर को उड़ा जा रहा हो। गीत मैंने पहले कभी सुना ही न था। गीत अपने चरम तक उठा। उसका समापन काहू के गायन की विशेषता लिए था। एक खास तरह की गिटकारी, एक मुकरी और तब एक अंतिम तीव्र स्वर।

यह गीत था तो एक लंपट शराबी के बारे में। पर उसने मुझे वह क्षण दिया जिसे मैं उस समय याद करना न भूलूंगी जब यमदूत मुझे लिवा लेने आ चुके होंगे। और बेला में काहू का गायन।

अब क्योंकि बॉस्केटबाल प्रतियोगिताएं समाप्त हो गई हैं तो हम अपने वाद्यवृंद का अभ्यास शुरू कर सकेंगे। हमारे वाद्यवृंद का उद्देश्य सामाजिक अधिक है, संगीत कम। और यह बात समझ में आती है। पर कमोबेश मात्रा में संगीत तो फिर भी घुस ही आता है न। मुझे लगता है इस वर्ष पहले से कहीं बेहतर संगीत संभव हो सकेगा। हर चीज को कहीं न कहीं शुरू तो होना पड़ता है न। हमने भी तो शुरूआत ही की थी।

जिन बच्चों को मैं सिखाती पढ़ाती हूं, उन्हें मैं मानो ब्याह ही लेती हूं। इस तथ्य का अहसास मुझे पिछले साल हुआ था जब मैंने वाद्यवृंद की शुरूआत की थी। बच्चों से वह सच निकलवा पाने के लिए जिसकी मुझे अपेक्षा थी। यह जरूरी था कि वे मुझ जैसे बन उठें। बल्कि इतना भर ही नहीं। यह भी जरूरी था कि वे मेरे ही अंग बन जाएं। समय के साथ अभ्यास के ये घंटे मुझे भी शिक्षित करने लगे। मैंने सीखा कि अच्छा बजा पाने के लिए हम सबको एकमेक होना होगा। एक अंग का रूप ले लेना होगा। उन्हें स्थूल रूप से भी एक दूसरे के और मेरे पास होना ही पड़ता था। अभ्यास के समय हम सब पियानो के बिलकुल पास एक झुंड में खड़े हो जाते थे। मैंने ऊपर कहा है 'पड़ता था' पर बात असल में यह न थी। सच कहूं तो वे मेरी हर बात अनसुनी कर झुंड में ही आ खड़े होते थे। उन्हें श्रोताओं की ओर मुंह किए बैठाने की भी कोशिश की। पर इधर गीत खत्म होता और उधर वे चारों ओर से मुझे आ घेरते। प्रायः मेरे ऊपर, मुझे हर तरफ से घेरे हुए। एक दूसरे से और मुझसे ब्याहें हुए।

संगीत के कई नियम हमने पैरों तले कुचल दिए। जैसे यही नियम कि सही आवाज के लिए गायकों और वादकों को श्रोताओं की ओर मुंह किए गाना-बजाना जरूरी है। हालांकि मैं पहले इस बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। हुआ यों था कि व्हारेपारिता के जुड़वां बच्चों की मृत्यु पर युवामंडल की टोली को शोक गीत गाना था। वे श्रोताओं की ओर मुंह कर गाने में इतना शरामा रहे थे कि अंततः उन्होंने श्रोताओं की ओर पीठ कर एक घेरा बनाया। और तब एक दूसरे को देखते हुए ही गीत गाया। यह पाठ मैंने केवल एक ही बार पढ़ा था। पर मैं उसे पूरी तरह समझ गई हूं।

पर मैं कह क्या रही थी ? हां, मैं अपने वाद्यवृंद के बच्चों को ब्याह लेने की बात बता रही थी। यह बात संगीत को छोड़ किसी दूसरे माध्यम से नहीं सीखी जा सकती थी। यह तो निश्चित ही है। बच्चों को इतने सालों तक लगातार पढ़ाने के बावजूद इसका अहसास कभी हुआ ही नहीं था। पर अब इसे पहचानने और अनुभव कर लेने के बाद मुझे इसकी झलक कई बार, कई जगह दिखती है। कुछ ऐसा ही मेरी शिशुकक्षा में गुपचुप-गुपचुप घटा करता है। पर ब्याह नहीं! एक अद्भुत मंगनी। नन्हे मुन्नों से अगर वह करवाना हो जो मैं चाहूं तो उन्हें अपने पास, और पास, आने ही देना पड़ता है। बल्कि कहूं, पास बुलाना पड़ता है। शरीर से भी, आत्मा से भी। उन्हें इस बारे में पता

नहीं होता पर मुझे तो होता है न। वे बिलकुल से मेरे ही अंग बन उठते हैं—मानो मेरे प्रेमी ही हों। अंतर बस शुरूआत भर का होता है। मेरे नन्हें पहले पहल मुझे संदेह से भांपते हैं, तब स्वीकारते हैं और तब कुछ क्रमशः, कुछ तेज रफ्तार से, बढ़ आते हैं। और यह पास बढ़ना तब तक चलता रहता है, जब तक पूर्ण प्राप्ति न हो जाए। और उस प्राप्ति में समन्वय की आभा और शांति।

और इस ब्याह से जन्मता क्या है भला ? वाद्यवृंद में संगीत और शिशुकक्षा में काम। यह जन्म काल भी कितना लंबा खिंचता है, मानो अनंत ही हो और स्थाई भी। पर उसका स्वरूप बराबर बदलता रहता है। हर सुबह ही तो प्रसव वेदना प्रारंभ होती है और हर संध्या पीड़ा के बीच आने वाले विश्राम का क्षण बन कर आती है।

और अब जब मैं इसे यों मंगनी और ब्याह के रूप में देखने लगी हूं तो अब तक के टीले, कठिन और अनजान पथ, अनायास ही साफ होने लगे हैं। सब कुछ कितना सरल बन उठा है।

बड़े शब्द हैं न ये? अनियंत्रित भी, विराट भी। पर इनके तले जो अर्थ छिपा है वह और अधिक गहरा है। यह तो मेरे पूरे जीवन का ही समन्वयन है। और उन बच्चों के जीवन का भी।

इन आध्यात्मिक और बौद्धिक समेकनों, विलयों पर प्रेम के सारे नियम भी लागू होते हैं। उदाहरण के तौर पर यह बात कि इस संबंध में केवल दो व्यक्ति होने चाहिए। जैसे ही किसी भी पक्ष में नई निष्ठा पैदा होती है, पहला संबंध टूट जाता है। प्रेम हमेशा ही निष्ठा में बाधक बनता है। मैं किसी भी माध्यम पूरी ईमानदारी के साथ किसी बच्चे को तब कैसे पढ़ाऊं जब उसकी रुचि किसी दूसरे चेहरे में केंद्रित हो और वह मुझसे विमुख हो। पहले, जब आज की तरह इस बारे में कुछ जानती नहीं थी, तब इसकी कोशिश मैंने की थी। पर उसका फल हमेशा टकराव, अनबन, यहां तक कि घृणा ही रहा। अब जब कभी कोई संबंध टूटता है, प्रेम मरता है, तो मैं उस प्रेमी के पीछे नहीं भागती। प्रतिवाद भी नहीं करती। मैं चुप बैठकर उसकी पीड़ा को झेलती हूं। तब तक, जब तक नए चरणों की आहट न सुनाई पड़ने लगे।

इस सबके बारे में सोचते-सोचते मुझे अतीत के वे चमत्कार भी साफ दिखने लगते हैं जिनके घट जाने का मुझे अहसास तक न था। याद आता है कि कितना समय मैंने अपनी 'ए' टोली के साथ बतियाने में गुजारा था। उस पूरी सर्दियों में न जाने कितनी बार उन्हें अपने कमरे में बुलाकर, चटाइयों या छोटी मेज कुर्सियों पर बैठाकर चर्चाएं की थीं। हर तरह के छोटे बड़े मसलों पर। क्या, कैसे करना है इस पर, खेल के मैदान में पहले जाने वाले कपड़ों पर, उचित आचरण पर। तब तो यह जानती भी नहीं थी

कि मैं कर क्या रही हूँ। पता भी नहीं था कि मैं एक गहरे और सार्थक संबंध के बीच हूँ। तब भी यह समझ नहीं पाई थी कि जब वे खेलते-खेलते जिला स्तर के विजेता बन गए थे। पर आज? आज मैं जानती हूँ। सच, जानती हूँ मैं।

समन्वय। यह सांघातिक पर जीवंत शब्द अंतस की आंखों में उभरता है। शब्द को जिस रूप में मैं समझाती हूँ उसका अर्थ होगा अपने आस-पास के वातावरण आस-पास के जीवन से इस तरह घुल-मिल जाना मानो उसे ही ब्याह लिया हो। फिर चाहे वह समाज कितना ही विस्तृत या कितना ही संकीर्ण क्यों न हो क्योंकि मस्तिष्क और आत्मा के विकास को भला उपलब्ध वातावरण कहां रोक पाया है। यह कतई जरूरी नहीं है कि “हमारे रहने के स्थान का संयोग हमारी आत्मा को संकीर्ण कर डाले।” जीवन रूपी चेहरे की विशेषताएं हर जगह अंततः एक सी ही होती हैं। औदार्य-ईर्ष्या, दया-माया, सुख-दुख, जन्म-मरण, परिश्रम और विश्रांति हर समाज में ही तो मिलते हैं। एक संकड़े से कोने में भी उतनी ही पूर्णता के साथ जीवन जिया जा सकता है जितना दूर तक फैले आंगन में। संदर्भ से हटकर अचानक फ्लाबेयर* की याद मन में उठती है। शायद यही कारण भी हो जिससे वह अल्पायु में ही रक्ताघात से चल बसा था। उसका लेखन उसकी रचना, उसके छोटे से कस्बे के छोटे से घर की चौहदी लांघकर न जाने किस विस्तार तक पहुंच सकी थी। पर हो सकता है आप प्रत्युत्तर में “मादाम बोवारी” की बात उठाएं। इस पुस्तक का लेखन भी तो नारमेंडी (फ्रांस का एक जिला, फ्लाबेयर की जन्मस्थली) की बौद्धिक सीमाओं के परे ही था न। और तो और सलांबो (एक अन्य रचना) के लेखन में जो विखंडन दिखता है, उसे ही देखें। खैर ...।

मैं बेहद प्रसन्न हूँ क्योंकि कम से कम अब मैं यह जान तो सकी हूँ कि किसी को ठीक से कुछ सिखाने-पढ़ाने के लिए उसे अपनाना, उसे प्रायः ब्याहना जरूरी होता है। यह जान और समझ लेने के बाद मुझे पता चला है कि इस मान्यता में भी मेरे साथ ऐसी महान आत्माएं हैं जिनका साथ अवांछनीय नहीं है। मुझे बरबस आद्रे फ्रांसीसी लेखक की याद आती है, उन्होंने लिखा था : “जब भी मैं अकेला होता हूँ तो मुझे लगता है कि जीवन की गति कम हुई जा रही है, जीवन मानां थमा जा रहा है, मेरा अस्तित्व ही लुप्त होता जा रहा है। मेरा दिल तो केवल सहानुभूति में ही धड़कता है न, अपना जीवन तो मैं दूसरों में ही जीता हूँ—कहना चाहिए उन्हें ही पूर्णता से पाकर, उन्हें ब्याह कर। सच, अपने जीवन को जीने की तीव्र अनुभव भी मुझे तब ही होता है जब मैं अपने अस्तित्व को भुलाकर दूसरा व्यक्ति ही बन जाता हूँ फिर चाहे वह दूसरा व्यक्ति कोई भी क्यों न हो।”

और यीट्स ने जो कहा उसका सार भी कुछ ऐसा ही है। नवीन आयरलैंड की रचना में जुटे अपने एक साथी को उन्होंने लिखा था “सामंजस्य की शक्ति की परीक्षा तो इस

बात में ही निहित है न कि व्यक्ति वैविध्य को समेट ले और सामंजस्य ला सके। तुम संपूर्ण आयरलैंड को, उसकी त्रासदी को अपने आप में सहाहित करो, तुम स्वतः ही जनकवि बन उठोगे, नव-विद्रोह के कवि।”

यहां हम आसानी से समाहित शब्द की जगह ब्याहना भी रख सकते थे। और फिर जर्मनवासी वेबर तो शिक्षा “शैक्षिक संभोग” ही कहते हैं। इन विचारकों का सार एक ही सा है : मैं भी अपने बच्चों को ब्याह कर ही पढ़ा पाती हूं।

इतना कुछ इस विषय पर कहने को है मेरे पास, कि कहने की चेष्टा ही बंद करनी होगी। इस डायरी में अंतिम बार कुछ बातें लिख रही हूं। इसका स्तर अब तक मेरे सर से भी ऊपर उठ चला है।

’ उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी कलाकार जिनकी रचना ‘मादाम बोवारी’ काफी चर्चित रहीं। इसमें फ्रांस के बुर्जुवा समाज का यथार्थवादी चित्रण किया गया था।

जिस उद्देश्य को लेकर इसे शुरू किया था वह तो पूर्ण हो गया है। मैं व्यावसायिक रूप से पूरी तरह अकेली थी। इसलिए मुझे किसी प्रबुद्ध और निहायत निजी समझ की जरूरत थी। वह मुझे मिली। अब व्यावसायिक अकेलापन नहीं है।

पर रुकने के पहले मैं अपने व्यावसायिक जीवन के अंतिम हफ्तों के सहज अत्यावस्यक सहज नमूने को सामने रखने की कोशिश करूंगी। क्योंकि जब-जब कुछ घटता है, तब-तब हर बार उसे लिख पाने का समय ही कब मिलता है। पर चेष्टा यही करूंगी कि अंतदृष्टि में पकड़े उन सभी बिंबों को उतार डालूं जो इकट्ठे होते चले गए हैं। हां, यह जरूर संभव है कि इनका क्रम घटनाओं की तिथि का क्रम न होकर मेरे लिए उनके भावनात्मक महत्व का क्रम ही हो।

आंखों के पीछे छुपी इस दुनिया में सबसे सशक्त छवि ट्रेमेइन साब के पिछले सप्ताह एक बार फिर शिशुकक्षा में आने की है। उन्होंने आकर बहुत धीमे से कहा था “मैं आपको फिर से सुनना चाहता हूं।” और उनके ये शब्द मैं अंतस के कोलाहल के बीच अभी भी सुन पा रही हूं। गुरुवार की शाम को (जिस दिन वे आए थे) हुए बैले के संगीत और शोर के ऊपर से कानों तक तैर आ रहे हैं उनके शब्द। उनके साथ कोई प्रोफेसर साब भी थे और विश्वविद्यालय कॉलेज की किसी सम्मानित पीठिका पर बैठने वाले कोई डॉक्टर साब भी। पर मन में ट्रेमेइन साब के ही ये विनम्र शब्द बस गए हैं। वे ही सबसे सशक्त साबित हुए हैं।

उन्होंने पहले मुझे नहीं बताया कि अतिथि हैं कौन। वे मेरी प्रवेशिकाएं देखने आए थे। उन्होंने उकसाया और मैं बोलने पर बाध्य हुई। शुरू हुई तो पूरी गर्मजोशी और रफ्तार

से भाषण देने लगी। उस समय मूल शब्दावली के प्रयोगों के परिणाम मन में ताजा-ताजा बसे हुए थे। उन परिणामों को यहां नहीं लिखूंगी—पठन योजना में उनका उल्लेख कर चुकी हूँ। उस योजना को अब एक प्रकाशक की तलाश है।

अगली सुबह चाय पर मैंने ट्रेमेइन साब से शिकायत की “आप यहां आकर बेकार मुझे बोलने को उकसा देते हैं। और मैं तब किसी के भी सामने घंटे भर भाषण झाड़ने लगती हूँ। सच, बात में इतनी शर्म आती है अपनी वाचालता पर।”

वे मेरी शिकायत का रस लेते हुए मुस्कराते रहे। तब उन्होंने कहा कि “मैंने पाया है कि जब कभी चुप रहकर दूसरों को सुनता हूँ तो मैं बहुत कुछ सीख पाता हूँ।”

“आप लोग विशिष्ट अतिथि तो नहीं हैं न?” मैंने अतिथियों से पूछा था।

“ना, ना! नहीं तो।”

“जान लेना ठीक होता है ना। पता हो तो चाय का प्याला पहले आप ही को पकड़ाऊं। और फिर ट्रेमेइन साब की तो यह खास तरकीब है। वे तो चुपके-चुपके ना जाने कैसे-कैसे महत्वपूर्ण लोगों को लेकर अचानक प्रकट हो जाते हैं। सच तो यह है कि अगर मुझे पहले से पता हो कि ट्रेमेइन साब किसको ला रहे हैं तो मैं यहां से छू हो जाऊं।”

यह सुनकर ट्रेमेइन साब जोर से हंसे। मैं सोचती ही रह गई कि आखिर क्यों। शायद उन्होंने बात का अपना ही कोई अर्थ निकाला होगा। जब वे जाने के लिए विदा लेने लगे तो मैंने उनसे कहा “असल में मैं माओरी बाल अपराध वृत्ति से भी लड़ रही हूँ।”

“आप जो कुछ भी कर रही हैं, उस सबके लिए आपको बहुत धन्यवाद।” उन्होंने जवाब में कहा “और सच आपको सुनने में बेहद आनंद आया।”

यही वह दिन भी था जब मैंने माओरी शिशुओं के लिए तैयार की गई अपनी पठन-योजना की प्रति भी उन्हें थमाई थी। कड़ाके की सर्दी में वे बाहर खड़े थे, कितने लंबे और चौड़े। उन्होंने पन्ने पलटे, मोपासां के सुंदर शब्द पढ़े, उन पर विचार भी किया तब पहले पृष्ठ पर बने हाका चित्र पर उंगली फेरी। “अरे वाह!” उन्होंने कोमलता से कहा। और उस ठंडी सुबह अपने काम को किसी दूसरे को यों समझते देख मैं उपलब्धि के संतोष से भर उठी। मेरे श्रम यह का कैसा अवर्णनीय पुरस्कार था।

अतीत में झांकते हुए : एक कहानी

“क्या हुआ ? हुआ क्या मेरे नन्हे राजा ?”

मैं फर्श पर अपने घुटने टेक बच्चे की ठोड़ी ऊंची करती हूँ। बड़ी-बड़ी भूरी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकलती है।

“और इसीलिए तो मेरा किला कुछ लोगों ने बेकार में तोड़ डाला। कुछ लोगों ने।”
मैं शिशुकक्षा में रखी एक छोटी सी कुर्सी पर उसे अपनी गोद में लिए बैठी हूँ। काले बालों से भरे उस माथे को अपनी टुड्डी के नीचे दबाए।

“बस, बस...अरे देखो तो मेरे प्यारे बेटे को...।”

पर यह तो अब केवल एक स्मृति भर है न। एक साल पुरानी स्मृति।

“हैंडरसन साब हैं क्या ?” फोन के उस ओर से एक पुरुष-आवाज सवाल करती है।

“वे तो बाहर गए हैं। नौ बजे तक लौटेंगे। कोई संदेशा है ? आप चाहें तो मैं उन्हें बता सकती हूँ। मैं उनकी पत्नी बोल रही हूँ” मैं कहती हूँ।

“असल में मैं तो केवल नई शिशु कक्षा के कमरों के फर्श के बारे में चिंतित था श्रीमति हैंडरसन।”

“ओह, तो क्या आप वही हैं जिन्होंने नए कमरों के फर्श तैयार किए हैं ?”

“जी हां। मेरा नाम रैंडल है।”

“आज मैंने सुना था रैंडल साब कि फर्श अभी तक सूखा नहीं है। बच्चे आज भी अंदर नहीं जा पाए। हेड साब ने अनुमति ही नहीं दी। फर्श अभी तक चिपचिपा रहा है। लगता है जो अंतिम पर्त आपने लगाई थी वह सूखी ही नहीं है।”

“बच्चे जा ही नहीं सके ? फर्श सूखा ही नहीं ?”

“आज सुबह-सुबह छह बजे हेड साब ने दो नए स्टोव वहां जलवाए हैं। इस आशा से कि शायद गर्माहट से फर्श जल्दी सूख जाए। पर अभी तो सब गीला ही है। हां, कुछ शिक्षक आज जुराबिं पहने अंदर जरूर गए थे। जुराबिं पहन कर फर्श पर चलें तब तो कुछ नहीं बिगड़ेगा ना ?”

“ना, ना, जुराबिं पहने चलने से कुछ खराबी नहीं होगी। असल में यह मौसम ही ऐसा है। कुछ भी तो सूखता नहीं है इसमें। मेरे कारीगरों ने बताया कि वार्निश की परतें जो उन्होंने काफी पहले लगाई थीं वे भी नहीं सूखीं। कुछ भी नहीं सूखता ऐसे में। पर बच्चे कमरों में जा नहीं पा रहे इसका मुझे अफसोस है।”

“पर समस्या तो और भी टेढ़ी है। वृहस्पति और शुक्रवार को निरीक्षक आने वाले हैं। हमारे शिक्षक उसके पहले ही ठीक से सब कुछ जमा-जंचा लेना चाहते हैं। नए कमरों में सब कुछ करीने से जमा लो भी तो मुश्किल काम है न। और बच्चों से तो कोई मदद ली ही नहीं जा सकती। वे तो अंदर जा ही नहीं सकते।”

“क्या किया जाए श्रीमती हैंडरसन, मौसम ही खराब है। कुछ भी नहीं सूखता।”

“वह तो मुझे भी पता है। मेरे ही कपड़े राम जाने कब से तार पर टंगे रहे, पर सूखे ही नहीं। आखिरकार अंदर लाकर सुखाने पड़े।”

“असल में जब कुछ होता तो सब एक साथ ही सिर पर आ पड़ता है।”

“ठीक कहते हैं आप रेंडल साब। मुझे तो पता नहीं है कि हेडमास्टर साब ने व्यवस्था क्या की है, पर शायद यही तय किया गया था कि कल कम से कम शिक्षक कमरों में जाएंगे। हो सकता है कि आज दिन भर अलाव उन कमरों में जलेगा उससे कुछ फर्क पड़ ही जाए। शायद यह भी तय किया गया था कि बच्चे फिलहाल चटाइयों पर बैठें।”

“बच्चे भी तो जुर्राबों में अंदर जा सकते हैं।”

“जुर्राबें ? वही तो समस्या है। उन सबके बीच आधा दर्जन जुड़ाबों के जोड़ भी शायद न हो। सुनिए, क्या नंगे पैर अंदर जाने से फर्श खराब हो जाएगा ?”

“ना, नंगे पैरों से क्या बिगड़ेगा भला ?”

“आज वे मेज-कुर्सियां ले गए थे अंदर रखने को।”

“अरे, बच्चे तो कुर्सियों पर बैठकर बहुत खटर-पटर करते हैं। कुर्सियां घसीटते हैं।”

“पर बच्चे तो शायद चटाइयों पर ही बैठेंगे।”

“हां, चटाइयों पर वे जरूर बैठ सकते हैं।”

ऐसा कम ही होता है कि मैं आज की तरह सुबह-सुबह ही नायलॉन की जुर्राबें पैरों पर चढ़ा लूं। पर इस बात से मैंने समझौता कर लिया कि मैं केवल चप्पलें नहीं बल्कि जुर्राबें भी पहनूं। आज यही करती हूं मैं। अपना चेहरा ठीकठाक करती हूं। बालों को एक काले रिबन से पीछे बांध लेती हूं। ठीक वैसे ही निकलती हूं जैसे साल भर पहले हेडमास्टर साब के घर से निकलने के एक घंटे बाद उनकी मदद के लिए स्कूल पहुंचा करती थी। मैं अपने नन्हे-मुन्नों को नए बने कमरों में जाते देखना चाहती हूं। जुर्राबें पहने हुए या उनके बिना। मेरे साथ या मेरे बिना। वे सब प्रार्थना सभा में ही थे। मैं चुपचाप दरवाजे पर अपने जूते उतार कर जुर्राबें पहने उस अद्भुत फर्श पर कदम रखती हूं।

काश आप इन कमरों को देख सकते। ऐसे लगे मुझे ये कमरे मानो साल भर पहले मेरे नन्हे छात्र-छात्राओं के बनाए चित्रों में से ही उतर आए हों। पर चित्रों में बने कमरों के तो पैर होते नहीं हैं। विकी और मोही अपने बनाए कमरों में हमेशा पैर बनाया करते थे। और कैसे-कैसे रंग भरते थे उनमें। बाहरी दीवारों तक। कहीं पीला, तो उसके कुछ ऊपर नीला, तब लाल दरवाजे। क्या आपको लगता है कि स्कूल बनाने वाला कोई

वास्तुशिल्पी भी अपने अंधेरे दफ्तर में बैठा बाल मस्तिष्क को इस कदर समझने की लियाकत रख सकता है ? अंदर नन्हीं आलमारियों की कतारें हैं, उनके पट हर संभव रंग के हैं। सभी रंग जिनसे इनसान या भगवान परिचित या अपरिचित हों। दीवारों पर भित्तिचित्र हैं—लगता है मानो किसी पांच-साला माओरी बच्चे ने ही बनाए हों वे। ब्लैक बोर्ड के ऊपर और दीवार के उस कोने में भी जो दीवार-कागज चिपकाया गया है उस पर भी बाल कविताओं के छापे हैं। दूसरी ओर के दीवार-कागज पर कारु-बॉय और रेड इंडियन बने हुए हैं।

छत हलके पीले रंग की आभा से दमक रही है। उत्तर की ओर बनी पूरी दीवार ही कांच की है। उसके पार अखरोट का पेड़ दिख रहा है। जिसे काटने का उस वास्तुशिल्पी ने विरोध किया था। सच यही लगता है कि या तो उसने बच्चों के आंके चित्रों से प्रेरणा ली गई हो। मेरा मस्तिष्क श्रद्धा से स्तब्ध हो उठता है।

“बच्चों को ये कमरे पसंद हैं और मुझे भी”, उसने हेडमास्टर साब से कुछ ही दिनों पहले कहा था, “और इतना भर काफी है।”

पर फर्श ? क्या यह नीचे धरा आईना ही नहीं है ? जो कुछ हर ओर है, या ऊपर छत पर है वह सब इसमें प्रतिबिंबित हो रहा है। उन सैकड़ों रंगों को द्विगुणित कर रहा है। कल रात फोन करने वाला व्यक्ति कैसा अद्भुत कलाकार है। कितना प्यारा है उसका यह फर्श।

अब मैं छटपटाने लगी हूँ। चाहती हूँ कि मेरे नन्हें-मुन्ने तुरंत प्रार्थना सभा से लौटकर आएँ। कितना अरसा हो गया है उन्हें देखे हुए। उनका इंतजार करते-करते मैं फर्श पार कर साथ वाले दूसरे कमरे में जाती हूँ। कांच की बनी उस दीवार खिड़की से उस पुरानी जगह को देखती हूँ जहां पहले हमारी शिशुमाला थी। चारों ओर फैली घास में मिट्टी का एक आयत भर दिखता है अब।

मन में उस पुराने पथरीले और जर्जर कमरे को देख पाती हूँ जो बसंत के पिघलते कोहरों को काट खड़ा दिखता था। जहां सैमी घोंघा ऊपरी लकरी के खंभों से हम पर टपक पड़ता था। जहां अधकच्ची फर्श से उठी गर्द सूरज की किरणों में यों चमका करती थीं मानो उन्हें छू लेना ही संभव हो, जहां सतत चलायमान, सतत मुखर, नई नस्ल के नौनिहाल इस से उस कोने तक, इस से उस दीवार तक, फर्श और कुर्सियों पर बैठे, कमरे में जीवन भरा करते थे। विशाल चित्रकार पट्ट पर (जहां दस बच्चे एक साथ चित्र बना सकते थे) ऊंचे गगनचुंबी आकार और ढेरों रंग दिखा करते थे। जहां नन्हें मुन्ने नाचा करते थे। हर दिन माटी के नए आकार जन्म लेते थे। जहां नन्हें उंगलियां आवेश में भर रेत को कब्रिस्तान में बदल डालती थीं। पानी की नाली को बंदरगाह का

रूप दे देती थीं। जहां ब्लैक बोर्ड तेजी से उड़ते लड़ाकू हवाई जहाजों और विचित्र वर्तनी में लिखे नितान्त अमर्यादित कथनों से सज उठता था। जहां बच्चे जोर-शोर से लड़ते-झगड़ते थे, अकारण हंसते थे। और उनका हंसना छूत की बीमारी की तरह संक्रामक होता था। वे रोते थे, उनका रोना भी संक्रामक ही होता था। जहां वाईवीनी के नन्हें भाई ने सुबकते-सुबकते मुझे बताया था कि “किसी ने बेकार में ही उसका मिला तोड़ डाला।” जहां ब्लीडिंग हार्ट ऐसे हंसता था कि लगता था कि उसका सिर ही छिटक कर अलग जा गिरेगा। जहां यमारी का कुत्ता सबका प्यार पाने के लिए इधर-उधर जा चिपकता था। जहां बिलौटी तुनक के साथ घुस आती थी और जिंजर मुर्ग इधर-उधर चोंचें मार कुछ ढूंढ करता था। जहां ‘पा’ के सामुदायिक भवन के चित्र बना करते थे, और बना करते थे भूतों के चित्र, एक दूसरे को चूमते लोगों के चित्र। और जहां ऊन कटाई घर, बीयर, कब्रिस्तान, जंगली सूअर, मीठी गोलियों जैसे शब्द दोहराए जाते थे। जहां निजी लेखन को पढ़ते समय माओरी होंठ बुदबुदाया करते थे। जहां हर समय उल्लास के प्राचुर्य से, बहस करने के कारण, पढ़ने के कारण, हंसने, गाने, रोने के कारण या महज बैनी के हिज्जे पूछने के कारण, ही आवाजें ऊंची उठा करती थीं। और हमारा फर्श। देखा होता आपने उस फर्श को, उस बड़े चित्रकार पट्ट के चारों ओर असंख्य रंगों की गिरी बूंदों ने उसे ऐसा सजा दिया था। देखने पर लगता मानो अनमना सा पतझड़ अपनी कूची लिए उस ओर गुजरा होगा। और जाते-जाते इतने ढेर से असंयत रंग बिखेर गया होगा। और वह कोलाहल ... वह शोर। कुल मिलाकर ऐसा लगता था कि मानो समुद्रों के बीचोंबीच विशाल लहरों से जूझती कोई पुरानी जर्जर नौका ही हो।

कानों में एक बार फिर अपनी ही आवाज की गूंज सुन पा रही हूँ। क्या हुआ, हुआक्या मेरे नन्हें राजा ?

“और इसलिए तो मेरा किला न जाने किन, लोगों ने बेकार में तोड़ डाला। कुछ लोगों ने।”

बस,बस.... अरे देखो तो मेरे प्यारे बेटे को ...। लो आ गए वे। उनकी नौजवान शिक्षिका दरवाजे पर ही खड़ी है। उसकी अपनी बुद्धि है, अपने ही तरह का चेहरा है, अपनी ही शैली है, आवाज भी है। वह पूरी तरह वहां है, नियंत्रित, संयत। दरवाजों पर, चप्पलें पहने खड़ी है वह।

“अब, जिन बच्चों ने जूते पहने हैं वे जूते उतार दें”, वह कहती है “और चुपचाप, बिना शोर किए आएँ। कोई बच्चा मेज या कुर्सी नहीं घसीटेगा। घसीटने से फर्श पर खरोंचे पड़ जाएंगी। अपने बस्ते और जूते इधर बरामदे में ले आओ। मैं बताऊंगी कि उन्हें कहां रखना है।”

मैं नए स्टोव के पास खड़ी उन्हें आते देख रही हूँ। सब चेहरे अनजान हैं, नए बच्चे हैं ये, हेड साब ने इस बारे में आगाह ही नहीं किया। पुराने बच्चों में केवल वे ही इस समूह में बचे हैं जो आयातित किताबें नहीं पढ़ पाते—वन पिंट, ब्लॉसम, ब्लीडिंग हार्ट और नूकू। मैं उन्हें आते देख रही हूँ। पर, पूसी कहां रह गई ? उसे भी तो अब तक आ जाना चाहिए था। उसका तो नाम भी मानो रजिस्टर में लिखा ही हुआ था और टामाटी का कुत्ता ...? प्यार पाने कहीं दूसरी जगह तो नहीं चला गया ? जिंजर मुर्ग। .. यह न कहना कि उसने भी स्कूल छोड़ दिया है। सैमी घोंघा इस नई छत के बारे में क्या सोच रहा होगा भला ? मैं जुराबें पहने बच्चों के पीछे हो लेती हूँ। रात जिस भलेमानुस ने फोन किया था वह अगर हम सबको यों आहिस्ता-आहिस्ता चलते देखता तो गर्व से फूल उठता।

बाहरी बरामदे में शिक्षिका ने अलग-अलग कीलों पर प्यारे-प्यारे चित्र टांगे हुए हैं। मैं बेसब्री से उस ओर बढ़ती हूँ—बंद, नाविक, जानवर और गोरी चमड़ी, संवरे वाल, इस्त्री किये कपड़े पहन बच्चों के चित्र। मैं बेताबी से “पा” के चित्र, ढूँढने की कोशिश करती हूँ—सामुदायिक भवन, नैनी, जंगली सूअर के चित्र, नंगे पैरों और काले वालों वाले भूरे बच्चों के चित्र ...।

मैं चुपचाप आगे बढ़ती हूँ—मोही के भूत से भी कहीं शांत और चुप। उस कमरे में जाती हूँ जहां बड़े बच्चे हैं। देख रही हूँ कि अब बच्चों की जरूरतें दो कमरों और दो शिक्षिकाओं के बिना नहीं हो पाती हैं। ...यहां मिलेंगे ना, मुझे पिछले साल वाले बच्चे। अब दिखते हैं मुझे वे सारे के सारे। कितने बड़े हो गए हैं वे। पर यह क्या? वे भाग कर मेरे पास क्यों आते ? गलबहियां क्यों नहीं डालते ? मेरा कलमदान, मेरी चाँक क्यों नहीं उठाते ? और वाईवीनी का भाई रोता-रोता शिकायत क्यों नहीं करता कि “किसी ने बेकार में उसका किला तोड़ डाला है ? किसी ने।” वे तो संयम से खड़े होते हैं और शांत भाव से कहते हैं “नमस्कार, श्रीमती हेंडरसन।”

“विकी” उनकी सुंदर युवा शिक्षिका ने पहले से ही दीवार पर अक्षर तालियों की दीवार पोथियां टांग दी हैं। आयतित किताबों में छपे शब्दों को अक्षरक्रम के अनुसार लिखा गया है इन दीवार पोथियों में। मैं तेजी से नजर दौड़ाती हूँ। “पी” में मैं “पा” (माओरी’ गांव) शब्द ढूँढ रही हूँ। ना, इस सूची में वह नहीं है। दिमाग में एक बार फिर पिछले साल तक शिशुकक्षा में काम आने वाले शब्दों को खोजती हूँ। तब फिर से दीवार पोथी को देखती हूँ.. “एम”, अक्षर के आगे कहीं “मीटिंग हाउस” (सामुदायिक भवन) है क्या ? “एन” ? “एन की सूची में “नैनी” (धाय मां) भी नहीं मिलता। “जी”, “जी” कहां हैं ? उसमें क्या घोस्ट (भूत) शब्द आया है ? ना, वह भी नदारद है। पर आखिर खो कहां सकता है हमारा भूत ? वह तो सदा से माओरी

मस्तिष्क में माओरी देवताओं तक को पछाड़ कर हावी होता रहता है। उसे हमेशा अव्यवस्थित करता चलता है। पर सच इस सूची में भूत कहीं नहीं दिख रहा है। अब तक तो वनपिंट और ब्लीडिंग हार्ट को सहज शब्दावली पर काम शुरू कर देना चाहिए था ना ? अगर यह किया होता तो वे पिछड़े बच्चों में न होते—अब तक पढ़ने लगे होते। पर यह तो मानना होगा कि उनका सुलेख उमदा है। उससे कहीं अच्छा जैसा कि बच्चे खुद लिख पाते हैं।

एक आखिरी नजर इस कमरे पर डाल लेना चाहती हूँ—चुपचाप वापस बाहर निकल जाने के पहले। शिक्षिका अभी भी उन्हें कीलों पर टंगे चित्रों के बारे में बता रही है। जाने का समय हो चला है। मैं चमकीले फर्श के पास छत तक ऊंची खिड़कियों से, अखरोट के पेड़ के पार उस ओर वह जगह देखती हूँ जहां पहले हमारी शिशुकक्षा थी। पर वह कमरा तो अब सच में खत्म हो चुका है। वह निश्चित रूप से वहां नहीं है। पर वहीं तो उसी पथरीले बखार में, वाचाल साथियों के बीच ही तो मेरा किला बसा था, वहां काम आने वाला मूल शब्दावली का सिद्धांत भी उतना ही स्वाभाविक और स्वतःस्फूर्त था जितने मेरे नन्हें साथी। मेरा किला एक पर एक धरे पत्थरों से बना था, बुर्जियां पर बुर्जियां बनी थीं उसमें, कैसे-कैसे तोरण द्वार थे, ऊपर जाने की सीढ़ियां थी, यहां तक कि सुरक्षा के लिए तोपें तक थीं। पर अब इस क्षण इस आधुनिक खिड़की से मुझे सिर्फ घास और माटी ही नजर आ रही है।

एक ऐतिहासिक विश्वास के साथ मैं नजर वापस अंदर को मोड़ती हूँ। यहां तो हर ओर संतुलन है, शांति है और है चमचमाता फर्श। कुछ कहने की कोशिश करती हूँ। आखिरकार मैं हेडमास्टर साब की पत्नी हूँ, और इन बच्चों की पिछली शिक्षिका भी। सोचती हूँ कि कौन सी सटीक और उत्साहवर्द्धक बात मैं उनसे कहूँ। छोटे बच्चे अभी भी खड़े हैं चुपचाप। उनकी कुशल शिक्षिका अब भी उनसे कुछ कह रही है। सच, कुछ कहने की कोशिश मैं करती हूँ। पर गला कुछ यों रुंध आता है मानो मैंने अभी-अभी किसी के किले को अकारण तोड़े डालने की शिकायत सुनी हो। सो मैं यों ही मुड़ जाती हूँ। जूते पहनती हूँ, गीले मैदान को पार करती हूँ। पतझड़ की विनाशलीला के कारण मैदान बिल्कुल वैसा लग रहा है मानो मेरे नन्हें मुन्ने वहां रंग भर गए हों। लौटकर आदतन मैं बिजली की केतली का प्लग लगाकर रसोई में जाती हूँ। वहां लगे शीशे पर एक अनावश्यक नजर डालकर अपने बालों को देखती हूँ, जिन्हें मैं सुबह धो चुकी हूँ। पतझड़ के चेहरे पर अचानक पांच साला बच्चे के आंसू चमकते दिखते हैं।

“और इसीलिए कुछ लोगों ने मेरा किला बेकार में तोड़ डाला। किसी ने ...।”
(तुम्हारे तमाम आंसू उसका एक शब्द तक नहीं धो पाएंगे ...।)

सिल्विया एश्टन-वारनर (1908) का जन्म न्यूजीलैंड में हुआ। अपने माता-पिता की दस संतानों में वह एक थीं। ग्यारह साल की उम्र तक मां ने उनको घर में ही पढ़ाया। उसके बाद स्कूल और फिर कालेज से शिक्षण में उपाधि लेकर उन्होंने अध्यापकीय पेशा अपनाया था। इसके बाद कीथ हेंडरसन नाम के एक अध्यापक से उनका विवाह हुआ।

न्यूजीलैंड के सुदूर देहाती इलाके के एक माओरी स्कूल में काफी लंबे समय तक पति-पत्नि ने साथ-साथ अध्यापन कार्य किया। इसी दौर में उन्होंने 'सहज शिक्षण' आज बालकेंद्रित शिक्षण के नाम से जाना जाता है। उनकी 'अध्यापक' नाम की यह प्रसिद्ध पुस्तक 1963 में पहली बार अमरीका में प्रकाशित हुई थी। इसी एक पुस्तक ने उनको बीसवीं सदी के महान शिक्षाशास्त्रियों की पांठ में लाकर खड़ा कर दिया।

शिक्षिका के अलावा वे अत्यंत संवेदनशील कथाकार भी थीं। उनका पहला आत्मकथात्मक उपन्यास 'स्पिंस्टर' था जिसे सारे विश्व में सराहा गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने चार और उपन्यास लिखे। अपनी आत्मकथा भी उन्होंने लिखी।

उनके पति का 1969 में देहांत हो गया। इसके बाद लगभग दस वर्षों तक विदेशों में घूम-घूम कर उन्होंने शिक्षण कार्य किया। भारत, इसराइल, इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा में रह कर उन्होंने अध्यापन कार्य किया और अंततः 1979 में वे अपने प्रिय देश न्यूजीलैंड लौट आईं।

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक): कलकत्ता (1949) में जन्म। आरंभिक शिक्षा कलकत्ता में। 1961 में एम.ए.। 1971-75 राजस्थान विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य। लगभग डेढ़ साल तक टाइम्स ऑफ इंडिया, जयपुर संस्करण के लिए शिक्षा विषयक स्तंभ का लेखन। प्रौढ शिक्षा के राज्य संदर्भ केन्द्र में रहते हुए शिक्षा विषयक लेखों का अनुवाद। इसके अलावा शिक्षा की कई पुस्तकों के अनुवाद। 'तोतोचान', 'बच्चे असफल क्यों होते हैं', और 'अध्यापक' आदि पुस्तकों के अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद किए। संप्रति एक अंतर्राष्ट्रीय दाता संस्था में सलाहकार हैं।